CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

❀ श्रीः ❀

जयपुरराजसभाप्रधानपण्डितेन वेदरहस्योद्घाटनप्रवणेन
समीक्षाचक्रवर्तिना विद्यावाचस्पतिस्व० श्रीमधुसूदनशर्म्ममैथिलेन
प्रणीतम्

2 10 5 50

[ब्रह्मविज्ञानविभागे, आर्यहृदयसर्वस्वे]

❀ शारीरकविमर्शः ❀

यत्र प्रदर्श्या विषयाः पुरातना यत्र प्रकारोऽभिनवः प्रदर्शने ।
यत्र प्रमाणं श्रुतयः सयुक्तयस्तद् ब्रह्मविज्ञानमिदं विमृश्यताम् ॥

लखनऊविश्वविद्यालयसंस्कृताध्यापकेन श्रीमता आद्यादत्तठक्कुरेण सम्पादितः ।

ग्रन्थकर्तृसूनुना पण्डितश्रीप्रद्युम्नशर्म्मणा प्रकाशितः

—:०:—

प्रथमावृत्तिः] वि० सं० २००१ [मूल्यम् ४)

सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

❀ श्रीः ❀

* शारीरकविमर्श का सारांश *

स्वर्गीय विद्यावाचस्पति पं० श्रीमधुसूदनजी ओझा ने प्राचीन आचार्यों की तरह प्रस्थानत्रय पर भी व्याख्या और निबन्ध लिखे हैं। उनमें शारीरक दर्शन पर जो आपकी संक्षिप्त, किन्तु सारगर्भित व्याख्या है, वह शारीरक विज्ञान प्रथम भाग और द्वितीय भाग, दो भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकृत ग्रन्थ में स्वतन्त्र रूप से शारीरक दर्शन के विषयों पर आपने आलोचनात्मक प्रकाश डाला है, और उसका सार संकलन वैज्ञानिक ढंग से किया है। यह ग्रंथ बहुत महत्त्व का है। इसमें निम्न-लिखित विषयों का प्रतिपादन हुआ है—

१—प्रथम प्रकरण (पृ० १-१०) में ब्रह्ममीमांसा (शारीरक दर्शन) की आवश्यकता दिखाते हुए मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद के बहुत से ऐसे वचनों का संग्रह है, जिनमें जगत् के कारण दैव, रज, आप, प्रजापति, ब्रह्म आदि भिन्न भिन्न दिखाये गये हैं, और 'ब्रह्म का स्वरूप' तथा 'ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध' इत्यादि विषय भी परस्पर विरुद्ध भिन्न भिन्न रूपों से दिखाये गये हैं। इससे 'ब्रह्म ही जगत् का कारण है,' यह निश्चय नहीं होता, और वेद के प्रामाण्य पर भी संदेह हो जाता है, इसलिये वेद-प्रामाण्य-समर्थन और ब्रह्म की अविरुद्ध एकरूपता निश्चित कराने के लिये ब्रह्म मीमांसा शास्त्र की आवश्यकता दृढ़ की गई है।

२—द्वितीय प्रकरण (पृ० ११-१७) में ब्रह्म शब्दार्थ का अनेकधा निरूपण कर ब्रह्ममीमांसा' में आत्मारूप ब्रह्म और शास्त्ररूप ब्रह्म, दोनो की मीमांसा होती है, इस विषय को महत्त्व के साथ समझाया गया है, और आगे श्रुति, दर्शन और मीमांसा इन तीनो का अश्रुतपूर्व पार्थक्य करते हुए ब्रह्ममीमांसा और गीताशास्त्र को दर्शनों से पृथक् कर वैज्ञानिक शास्त्र-श्रेणी में रक्खा गया है। इस प्रकरण में भिन्न-भिन्न शास्त्रों के प्रतिपाद्य विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

३—तृतीय प्रकरण (पृ० १८-२६) इसमें 'वेद' क्या वस्तु है, इसका रहस्य बताया गया है। विज्ञानवेद और शब्दवेद नाम से वेद के दो विभाग हैं। विज्ञान वेद अग्निरूप है, और शब्दवेद ग्रंथरूप। परमाकाश, पुराणाकाश और भूताकाश नाम से आकाश के तीन विभाग दिखाये गये हैं। तीनो आकाशों में तीन ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेद व्याप्त हैं—अनन्तवेद, दिव्यवेद और पौरुषेयवेद। अथर्ववेदत्रयी से पृथक् क्यों माना जाता है, इस विषय को स्पष्ट समझाया गया है। यह भी प्रदर्शित हुआ है कि दोनो ही वेदों में शाखा-भेद है। विज्ञानवेद के शाखा-भेद के आधार पर ही ग्रंथरूप वेद का शाखा-भेद है। मंत्र, ब्राह्मण भेद भी दोनो में है। ब्राह्मण का अन्तिम भाग वेदान्त है।

४—चतुर्थ प्रकरण (पृ० २७) में पाँच प्रकार के वेदाध्ययन से विप्र, ऋषि, देव आदि उपाधि प्राप्ति का वर्णन है।

५—पञ्चम प्रकरण (पृ० २८-४१) इसमें विज्ञान वेद के शाखा-भेद का अद्भुत रहस्य है। उसे चित्र और कोष्ठों द्वारा भी अनेकधा समझाया गया है। अग्नि और सोम दो जगत् के मूल तत्त्व हैं, इनमें सोम के तीन स्थान हैं—अप्, वायु और सोम। अग्नि के भी तीन स्थान हैं—अग्नि, वायु, आदित्य। इनमें प्रथम स्थान में विकास नहीं होता, और तृतीय स्थान में सोम और अग्नि संयुक्त रहते हैं। इनमें सोम ह्रासशील होने से उसमें १ ऋण और अग्नि विकासशील होने से उसमें १ धन का प्रयोग होता है। यों संख्या के चार स्थान एक, दश, शत, सहस्र में ऋण-धन का उपयोग होकर १०—१=९, १०+१०+१=२१, १००+१=१०१, और १००० (अन्त में विकासक्रिया न होने से ऋण-धन कुछ नहीं) ये क्रम से अथर्व, ऋक्, यजुः और साम की शाखा होती हैं। इसी प्रकरण में प्रसङ्गागत शिव और शिवहृदयारूढ़ शक्ति का उपासनातत्त्व भी बृहज्जाबालोपनिषत् के प्रमाण से (पृ० ३६०-३७०) समझाया गया है। शिव अग्नितत्त्व है और शक्ति सोमतत्त्व। अग्नितत्त्व ऊर्ध्वमुख है और सोमतत्त्व अधोमुख। सोमतत्त्व ऊपर से आता हुआ अग्नितत्त्व के आधार पर प्रतिष्ठित होता है—यही तत्त्व समझाने को शिव के वक्षःस्थल पर आद्या शक्ति आरूढ़ दिखाई जाती है—इत्यादि। यह संपूर्ण प्रकरण अति रहस्यमय है।

६—षष्ठ प्रकरण (पृ० ४२-४३) में शब्दमय वेद का प्रादुर्भाव वर्णन करते हुए विश्वगुरु पुष्करस्थ ब्रह्मा को वेदों का प्रादुर्भावक बताया गया है, और आगे की परम्परा अत्रिपर्यन्त कही गई है।

७—सप्तम विस्तृत प्रकरण (पृ० ४४-८३) में वेदप्रादुर्भाव के सम्बन्ध में ६ प्रधान मत और ४२ अवान्तर मतों का सप्रमाण वर्णन है। इनमें अनादि वेदवादी मीमांसकों से लेकर आधुनिक विद्वान् मैक्समूलर और शोपनहार तक के मतों का विवरण हुआ है। अँगरेजों के मत उनकी अँगरेजी भाषा में ही दिखाये गये हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८—अष्टम प्रकरण (पृ० ८४-९२) में उपनिषत् पद का तात्पर्य। उपनिषदों का विस्तार आदि बताते हुए सब उपनिषदों के शान्तिपाठ के मन्त्र भी लिखे गये हैं। और, विशेषता यह है कि शारीरक दर्शन के अधिकरणों में जिन-जिन शब्दों पर विचार हुआ है, उनकी तालिका दी गई है। इससे संपूर्ण शारीरक दर्शन का विषय हस्तागत हो जाता है।

९—नवम प्रकरण (पृ० ९३-९८) में दर्शन शास्त्र के भेद दिखाये गये हैं। इनमें ६ दर्शन, १८ दर्शन, ३६ दर्शन आदि विचित्र विस्तार है। आगे ब्रह्ममीमांसा की आवश्यकता दिखाकर उसका विषय प्रदर्शन करते हुए श्रुति प्रत्यक्ष और स्मृति अनुमान है, इस विषय का बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। द्रष्टा का वाक्य होने से श्रुति को दृष्टि अथवा प्रत्यक्ष कहा जाता है, अतएव वह स्वतःप्रमाण है, और श्रोता का वाक्य होने के कारण स्मृति को परतःप्रमाण और अनुमान कहा जाता है। यह प्रकरण मनन योग्य है। कई शङ्काओं का समाधान इसमें हो जाता है।

१०—दशम प्रकरण (पृ० ९९-११४) में संक्षेप और विस्तार से ब्रह्ममीमांसा शास्त्र (वेदान्तसूत्र) का विषय प्रदशन है। इसमें वेदान्तसूत्र का सिद्धान्त यह बताया गया है कि जीव और ईश्वर का यद्यपि व्यष्टि-समष्टि संबन्ध है—यह वेदान्त के ग्रन्थों में बार-बार कहा गया है, किन्तु यह विलक्षणता अवश्य समझने योग्य है कि संसार में व्यष्टियों से समष्टि बनती है, एक-एक धान्यकण मिलकर धान्यराशि बनती है, एक-एक वृक्ष मिलकर वन बनता है, एक-एक मनुष्य इकट्ठा होकर सेना बनती है, किन्तु यहाँ ऐसा नहीं, यहाँ समष्टि से व्यष्टि बनी है। समष्टि रूप ईश्वर कारण है, और व्यष्टिभूत जीव उससे पार्थक्य प्राप्त कर आविर्भूत होता है, इसी रहस्य पर दृष्टि जमाने को शारीरक मीमांसा में पहले दो अध्यायों में ईश्वर का विवेचन है, और आगे के दो अध्यायों में जीव का। आगे चार अध्यायों के विषयों की विस्पष्ट तालिका दी गई है। इनमें तृतीय और चतुर्थ अध्याय का विषयविवेचन बड़ा मार्मिक और रहस्यपूर्ण है। जीव ईश्वर से क्यों पृथक् हुआ ? यह बताकर जीव की गति के भेद बड़ी मार्मिकता से समझाये गये हैं। और, पितृलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक आदि का स्थान निर्देशपूर्वक विस्पष्ट विवरण किया गया है। इससे सब शङ्का निवृत्त होकर पितृलोक आदि का तत्त्व समझ में आ जाता है। इस प्रकरण में पृथिवी से दक्षिण (अधो) भाग में चन्द्रमण्डल से शनिमण्डल तक तीन प्रकार के पितस्वर्ग, शनिमण्डल रूप यमलोक और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथिवी से उत्तर (ऊर्ध्व) भाग में तीन प्रकार के देवस्वर्गों का स्पष्टीकरण है, और सालोक्य, सामीप्य आदि अपरामुक्ति और परामुक्ति का भी स्पष्ट निरूपण किया गया है।

११—एकादश प्रकरण (पृ० ११५) में गीताशास्त्रनिरुक्ति। एक पृष्ठ के इस छोटे से प्रकरण में प्रसङ्गागत यह सार बताया गया है कि और सब दर्शन अक्षर पुरुष तक का ही निरूपण करके विश्रान्त हो जाते हैं, किन्तु गीताशास्त्र उनकी न्यूनता को पूरा कर अव्यय पुरुष का पता देता है, इसलिये गीता शास्त्र एक विज्ञान और सबसे महत्त्व का शास्त्र है।

१२—द्वादश प्रकरण आत्मब्रह्ममीमांसा (पृ० ११६-१२३) इस परम महत्त्व पूर्ण रहस्यमय प्रकरण में प्रथमतः यह बताया गया है कि विशुद्ध ज्ञानरूप निर्विकार ब्रह्म सृष्टि हुई कैसे ? इसी प्रसङ्ग में ब्रह्म के विश्व, विश्वचर और विश्वातीत, ये तीन रूप बताये गये हैं, और माया, कला, गुण, विकार, आवरण और अञ्जन नाम से छ प्रकार का ब्रह्म का परिग्रह बताया गया है। इनमें आदि के तीन आत्मा के पोषक हैं, और अन्त के तीन दोषजनक होने से 'पाप्मा' रूप हैं। आगे पाप्मा के आठ भेद बताये गये हैं, जो कि ईश्वर की अपेक्षा जीव की विलक्षणता है। परिग्रहतारतम्य से ही शुद्ध, ईश्वर, जीव, ये एक ही चैतन्य के ३ भेद हुए हैं, और इस परिग्रह के सम्बन्ध से ही आत्मा की सात संस्था भिन्न-भिन्न रूप बताई गई है। प्रकारान्तर से पाँच में सात का अन्तर्भाव भी कहा है, और इनमें से एक-एक संस्था को मुख्य मानकर निरूपण करने के कारण ही दर्शनशास्त्र में परस्पर मतभेद प्रतीत होता है—यह रहस्यमय तत्त्व विस्पष्ट समझाया है। वेद, उपनिषत्, दर्शन, मीमांसा और गीताशास्त्र का विषयभेद खूब स्पष्ट किया है। आगे कौन सा दर्शन किस आत्मसंस्था को लेकर चला है, यह बताते हुए दर्शनों के अविरोध पर खूब जोर दिया है। यह विशेष महत्त्व का प्रकरण है।

१३—त्रयोदश प्रकरण—उपनिषत् शास्त्रों का विरोधाभासनिरास (पृ० १२४-१३७) इस प्रकरण में पूर्व प्रकरणोक्त आत्मा की निर्विशेष, परात्पर, पुरुष आदि सात संस्थाओं का विस्तृत विवरण करते हुए उनमें ३ निर्गुण और ४ सगुण हैं, यह भेद स्पष्ट कर आगे बताया गया है कि मुख्य आत्मा निर्विशेष ही है, वही सब उपनिषदों का लक्ष्य है, किन्तु अन्य ६ संस्थाओं में भी अपेक्षाकृत आत्मव्यवहार किया जाता है। अतएव इन संस्थाओं को भी उपनिषदों में 'आत्मा' नाम से कहा गया है। माया के 'महामाया', 'योगमाया' आदि भेदों का इस प्रकरण में स्पष्टार्थ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बताया गया है। पुरुष के अव्यय, अक्षर, क्षर, इन तीन भेदों और उनकी सोलह कलाओं का निरूपण है। एक तत्त्व से सृष्टि कैसे हो जाती है—इस गूढ़ तत्त्व का हृदयंगम विवेचन है। काम, शुक्र आदि उपनिषदों के गूढ़ शब्दों का मनोरम स्पष्टीकरण है। सर्वहुत् यज्ञ आदि विषयों को समझाते हुए तीन प्रकार के प्रजापति बताये गये हैं। अन्त में उपनिषत् के कैसे-कैसे प्रकरणों में आत्मा की कौन सी संस्था का ग्रहण करने से उनका विरोध परिहार हो जाता है, इसका दिग्दर्शन किया गया है। यह प्रकरण बहुत गूढ़ार्थक है।

१४—चतुर्दश प्रकरण—दर्शन शास्त्रों का विरोधाभासनिरास (पृ०१३८-१४१) इसमें संक्षेपतः यह दिखाया गया है कि जो पूर्व प्रकरणों में आत्मा की सात संस्था बताई गई हैं, उनमें से एक-एक संस्था को मुख्यात्मा भिन्न-भिन्न दर्शनों ने माना है। एक उसी संख्या का निरूपण एक दर्शन में मिलता है, दूसरी संख्या का वह ज़िक्र नहीं करता। वह संस्था वैसी ही है, जैसी कि उस दर्शन में मानी गई है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में विराट् प्रजापति को आत्मा माना गया है। वह सगुण ही है, इसलिये वैशेषिक आत्मा को सगुण मानते हैं। किंतु सांख्य पुरुष को आत्मा कहता है, पुरुष जब तक प्रकृति का परिग्रह न करे, तब तक निर्गुण रहता है। इसलिये सांख्य में आत्मा को निर्गुण कहते हैं इत्यादि। यों दर्शनों में आपात दृष्टि से विरोध दीखता है, किन्तु सप्त संस्थाओं का पूर्ण भाव समझ लेने पर विरोध बिलकुल नहीं है। किस-किस दर्शन में कौन-सी संस्था निरूपित है—यह इस प्रकरण में बताया गया है।

१५—पञ्चदश प्रकरण—ईश्वरात्मनिरुक्ति (पृ० १४२-१८६) में इस महाप्रकरण में ईश्वर का निरूपण है। एक ही चिदात्मा तीन रूप ग्रहण करता है—१ परमेश्वर, २ ईश्वर, ३ जीव। इनमें परमेश्वर सीमारहित है, वह मन वाणी का आधेय है, उसका निरूपण हो नहीं सकता। ईश्वर एक बल्शा (शाखा) या एक ब्रह्माण्ड के अधिपति का नाम है। जीव उसकी ही उपासना कर सकता है। परमेश्वर की उपासना भी ईश्वर के द्वारा ही होती है। इस ईश्वर के शरीर में तीन त्रिलोकी और सात लोक हैं, उनका निरूपण इस प्रकरण में विस्तार से किया गया है। कई प्रकार की त्रिलोकी बताई गई हैं। किस-किस लोक में किस अक्षर पुरुष की प्रधानता है, कहाँ से क्या-क्या पदार्थ सब ब्रह्माण्ड में विस्तृत हुए हैं—इत्यादि अनेक ज्ञातव्य विषय इस प्रकरण में हैं, जो कि वेद के रहस्य कहे जा सकते हैं। वेद और स्तोम का निरूपण बड़ा सूक्ष्म है। अग्नि और सोम के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवान्तर भेद (भृगु, अङ्गिरा आदि) का स्पष्टीकरण है। हमारे शरीर की तरह ईश्वर-शरीर में मांस, अस्थि आदि क्या हैं ? उनके स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर क्या वस्तु हैं ? उनके शरीर में अक्षर पुरुष की कलाओं का समावेश किस प्रकार है ? पञ्चमहाभूतों में क्रम से अक्षरों की कैसी-कैसी प्रधानता है ? ईश्वर-शरीर में पञ्चकोश कौन-से हैं ? वेद क्या वस्तु है ? उसके भेद ऋग्, यजुः, साम क्या है ? अथर्व क्या है ? अक्षर, क्षर और अमृत, मृत्यु क्या हैं ? ऋत और सत्य क्या वस्तु हैं ? आधिकारिक ईश्वर कौन है ? ब्रह्मा वेदमय मूर्ति क्यों कहा जाता है ? विष्णु को समुद्रशायी किस आधार पर कहते हैं ? पृथ्वी, सूर्य आदि के भिन्न-भिन्न आठ-आठ उपसर्ग, तीन भृगु और तीन अङ्गिरा का स्वरूप, ब्रह्मा के मानसपुत्र भृगु, अङ्गिरा, प्रजापति की चार संस्था, इन्द्र और वरुण की प्रधानता का विवाद, सुदर्शन चक्र का निरूपण, आगे पुनः ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का विशद निरूपण, तेतीस देवताओं में महादेव की विचित्र प्रकार से व्याप्ति दक्षिणा मूर्ति शिव की उपासना का विचित्र रहस्य, अश्वत्थ का निरूपण, प्रत्यक्ष ईश्वर रूप अश्वत्थ को बताना इत्यादि शतशः ज्ञातव्य विषय इस प्रकरण में आये हैं। इसका अधिक भाग श्लोकबद्ध है, किन्तु मध्य-मध्य में नक़शे देकर विषयों को स्पष्ट समझाया गया है। इस एक प्रकरण के मनन से वेद का रहस्य करतलामलकवत् हो सकता है।

१६—षोडश प्रकरण—जीवात्माप्रतिपत्ति (पृ० १८७-१९५) में एक ही चित् के चिदघन, चिदंश, चिदाभास नाम से तीन भेद दिखाकर चिदाभास को जीव कहा गया है। चिदात्मा और कर्मात्मा का विस्पष्ट निरूपण है। जीव-ईश्वर के भेदाभेद का स्पष्टतर विवेचन है। वेदान्त शास्त्र के सुप्रसिद्ध अवच्छेदवाद और प्रतिबिम्बवाद का स्वरूप खूब समझाया गया है। सांख्य और वेदान्त में क्यों भेद पड़ गया—इसका कारण बताते हुए वेदान्त के अद्वैतवाद का सुन्दर निरूपण है। यह छोटा सा प्रकरण बहुत काम का है। अन्त में कर्मात्मा के भेदों का निरूपण करते हुए मनुस्मृति के द्वादशाध्याय के श्लोकों का तात्पर्य बताया गया है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि टीकाकार कैसी भ्रान्ति में रहे। शरीर में पाँच देवताओं का कर्तृत्व बताया गया है, एवं ज्ञान और कर्म दोनो की आवश्यकता स्पष्ट की है। अन्त में अति संक्षेप में गुणत्रयरहस्य कहते हुए शारीरक विमर्श की समाप्ति घोषित की है।

इस प्रकार यह 'शारीरकविमर्श' सब शास्त्रों का निचोड़ और वेद के रहस्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का प्रशस्त मार्गप्रदर्शक है । ग्रन्थकार की प्रतिभा और विद्या का यह समुज्ज्वल आदर्श है । आशा है, विद्वान् इससे लाभ उठावेंगे। इसमें नया विषय होने के कारण स्थान-स्थान पर टीका-टिप्पणी की आवश्यकता बहुत है—वह भी ईश्वर की कृपा से कभी परिपूर्ण होगी।

जयपुर
ता० ७—१०—४३

म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
प्रिन्सिपल संस्कृत-कॉलेज, जयपुर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शारीरकविमर्शग्रन्थस्येयं विषयतालिका प्रदर्श्यते ।

अत्र त्रीणि प्रकरणानि भवन्ति

विषयाः — पृष्ठाङ्काः

१—ब्रह्ममीमांसाप्रवृत्तिनिमित्तम् — १
२—शास्त्रब्रह्ममीमांसा — ११
३—आत्मब्रह्ममीमांसा चेति — ११६

१—ब्रह्ममीमांसाप्रवृत्तिनिमित्तम्

१—मीमांसाशास्त्रारम्भावश्यकता — १
२—आत्मशास्त्राणां परस्परविरोधाभासः — २
३—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वजनकत्वाख्यानम् — ४
४—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वाधारत्वाख्यानम् — ५
५—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वाधिष्ठातृत्वम् — ५
६—प्रजापतेः सृष्टिमूलत्वाख्यानम् — ६
७—पुरुषस्य सृष्टिमूलत्वाख्यानम् — ६
८—अन्नस्य सृष्टिमूलत्वाख्यानम् — ६
९—आनन्दो विज्ञानं मनः प्राणो वागिति पञ्चानां ब्रह्मणां सृष्टिमूलत्वाख्यानम् — ७
१०—ब्रह्मणो मूलकारणत्वाभावः — ७
११—ब्रह्मणः कारणान्तरजन्यत्वम् — ८
१२—श्रुतिवाक्यानां प्रत्यक्षविरुद्धार्थत्वम् — ८

२—अथ शास्त्रब्रह्ममीमांसा प्रारभ्यते

तत्र—

१—आत्मशास्त्रनिर्वचनोपक्रमः — ११
२—वेदतत्वनिरुक्तिः
३—उपनिषच्छास्त्रनिरुक्तिः
४—दर्शनशास्त्रनिरुक्तिः
५—षोडशीपदार्थनिरुक्तिः
६—गीताशास्त्रनिरुक्तिः

एतानि षट् (६) प्रकरणानि विज्ञेयानि

(१)—आत्मशास्त्रनिर्वचनोपक्रमः— — ११
१—आत्मब्रह्मशास्त्रब्रह्मभेदान्मीमांस्यब्रह्मणो द्वैविध्यम् — ११
२—आत्मशास्त्राणां पाञ्चविध्यम् — १२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—पञ्चानामात्मशास्त्राणां श्रुतिस्मृति विज्ञानभेदात् त्रैविध्येन विभागः १४
४—दर्शनशास्त्रमीमांसाशास्त्रयोः प्रतिपत्तिवैलक्षण्यान्मीमांसाशास्त्रस्य विज्ञान-
शास्त्रत्वम् १५
५—विषयभेदाद्गीताशास्त्रस्यापि विज्ञानशास्त्रत्वम् १६
६—श्रुतिदर्शनविज्ञानशास्त्राणामात्मसाक्षात्कारोपायत्वम् १७
(२)—वेदतत्त्वनिरुक्तिः
१ आत्मवदेवात्ममहिम्नो वेदस्य वाक्प्राणमनोमयत्वम् १८
२—वेदमयेश्वरस्याकाशत्रयमधिष्ठानम् १८
३—वैज्ञानिकः शाब्दिक इति द्विविधो वेद आत्मनो महिमा १९
४—विश्वविज्ञानं वेदशास्त्रम् २०
५—अग्नेः सोमस्य च विज्ञानं वेदः २०
६—अग्निवेदः २०
७—सोमवेदः २१
८—देवतारहस्यविज्ञानौदयिकत्वे शब्दश्च विद्या च मन्त्रः २१
९—अग्निदेवतारहस्यभेदाः षड्विधाः २२
१०—सोमदेवतारहस्यभेदाः षड्विधाः २२
११—वैज्ञानिकानामृग्यजुःसाम्नां रूपाणि २३
(वैज्ञानिकानां भृग्वङ्गिरसां रूपाणि) २४
१२—विज्ञानवेदस्यापौरुषेयत्वं शब्दवेदस्य पौरुषेयत्वम् २५
१३—मन्त्रब्राह्मणभेदाद् वेदप्रकरणद्वैविध्यम् २५
१४—ब्राह्मणभागे पर्वत्रयम् २५
१५—अथवेदसंस्थाभेदाध्यायिनामौपाधिकसंज्ञाभेदाः २७
(वेदशाखा विभागः) २८
१६—अथ विज्ञानवेदस्य शास्त्रवेदस्य च समं शाखाविभागः २८
१७—वैदिकशाखाविज्ञानसंक्षेपः ,,
१८—गर्भस्थाग्निवशादपां चतुर्धा विकासाः ३१
१९—चतुःस्थानसंख्यापरिलेखः ३२
२०—अथ अवैदिकविकासक्रमकल्पः ३३
मतान्तरेण संख्यास्थानानि ३४
२१—ग्रामीणसाधारणजनतामतेन संख्यास्थानानि ३५
२२—पृथिव्यामुत्तराधरयोरग्निसोमयोः पर्य्यायपरिवर्तनचक्रम् ३६
२३—अग्निवशादपां विकासरूपे अग्निसोमस्वभावाद् ऋणधनोपयोगः ३७
२४—विज्ञानवेदस्य ऋणधनसिद्धविकासक्रमरूपपरिलेखः ३८
२५—शब्दवेदस्यापि ऋणधनसिद्धविकासक्रमरूपपरिलेखः ३९
२६—वेदशास्त्रशाखाविभागः ४१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—अथ शब्दमयवेदनिरुक्तिः
१—वेदशास्त्रप्रसङ्गः । तत्रादौ वेदप्रवर्तकाचार्याः ४२
२—शब्दमयवेदानां पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वविमर्शे नानामतसमुच्चयः ४४
(१) मीमांसामतम् ,,
(२) सांख्यमतम् ,,
(३) नव्यन्यायमतम् ४५
(४) प्राचीनन्यायमतम् ४६
(५) वैशेषिकमतम् ,,
(६) नास्तिकमतम् ४७
३—अथैषां मतानामवान्तरविभागा द्वाचत्वारिंशत् (४२) ,,
(१) अकृतका नित्यसिद्धा वेदशास्त्रयोदशमतेषु ,,
(२) ईश्वरकृता वेदाः सप्तमतेषु ४८
(३) ईश्वरावतारकृता वेदाः पञ्चमतेषु ,,
(४) प्रकृतिसिद्धा वेदाः सप्तमतेषु ,,
(५) महर्षिकृता वेदाः सप्तमतेषु ४९
(६) ग्रामीणमनुष्यकृता वेदास्त्रिषु मतेषु ,,
१—प्रथमं मतम् ,,
२—द्वितीयं मतम् ५०
३—तृतीयं मतम् ५१
४—चतुर्थं मतम् ,,
५—पञ्चमं मतम् ५२
६—षष्ठं मतम् ,,
७—सप्तमं मतम् ५३
८—अष्टमं मतम् ,,
९—नवमं मतम् ५४
१०—दशमं मतम् ,,
११—एकादशं मतम् ,,
१२—द्वादशं मतम् ५५
१३—त्रयोदशं मतम् ५६
१४—चतुर्दशं मतम् ,,
१५—पञ्चदशं मतम् ५७
१६—षोडशं मतम् ,,
१७—सप्तदशं मतम् ५८
१८—अष्टादशं मतम् ,,
१९—ऊनविंशं मतम् ५९
२०—विंशं मतम् ,,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२१—एकविंशं मतम् ५९
२२—द्वाविंशं मतम् ६०
२३—त्रयोविंशं मतम् ,,
२४—चतुर्विंशं मतम् ६१
२५—पञ्चविंशं मतम् ,,
२६—षड्विंशं मतम् ,,
२७—सप्तविंशं मतम् ,,
२८—अष्टाविंशं मतम् ६२
२९—ऊनत्रिंशं मतम् ,,
३०—त्रिंशं मतम् ६३
३१—एकत्रिंशं मतम् ,,
३२—द्वात्रिंशं मतम् ६४
३३—त्रयस्त्रिंशं मतम् ,,
३४—चतुस्त्रिंशं मतम् ,,
३५—पञ्चत्रिंशं मतम् ,,
३६—षट्त्रिंशं मतम् ६६
३७—सप्तत्रिंशं मतम् ६७
३८—अष्टत्रिंशं मतम् ६८
३९—ऊनचत्वारिंशं मतम् ,,
४०—चत्वारिंशं मतम् ६९
४१—एकचत्वारिंशं मतम् ,,
४२—द्वाचत्वारिंशं मतम् ,,
४—वेदवेदान्तसंबन्धे पाश्चात्यवैदेशिकपंडितानुमतानि ७०
(३)—अथ उपनिषच्छास्त्रनिरुक्तिः ८४
१—अग्निवेदोपनिषदामार्षेयादेशाः ,,
२—उपनिषदां वेदान्तप्रकरणत्वम् ८५
३—षोडशोपनिषदां परिसंख्यानम् ,,
४—अष्टोत्तरशतोपनिषदां परिसंख्यानम् ८८
५—उपनिषदां शान्तिपाठमन्त्राः ८९
६—विवेचनीयचत्वारिंशच्छब्दतालिका ९१
(४) अथ दर्शनशास्त्रनिरुक्तिः ९३
१—अष्टादशदर्शनानि ,,
२—षट्त्रिंशद्दर्शनानि ,,
३—ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य द्विविधो निष्कर्षः ९६
४—दृष्टियुक्त्योरिव शब्दविषयोः श्रुतिस्मृत्योः प्रत्यक्षानुमानशब्दः ,,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) षोडशपदीपदार्थनिरुक्तिर्नाम ब्रह्ममीमांसापरिष्कारप्रकरणम् ९६
१—शब्दसमन्वयलक्षणः शब्दविमर्शाध्यायः प्रथमः १०१
(१) निरूढशब्दपादः ,,
(२) विशेषणशब्दपादः ,,
(३) पराश्रयशब्दपादः ,,
(४) प्रधानपरशब्दपादः १०२
२—जगत्कर्तृनिर्णयलक्षणो मतविमर्शाध्यायो द्वितीयः ,,
(१) परकृताक्षेपनिरासपादः ,,
(२) परमतनिरासपादः १०३
(३) भूतकरणजीवविषयः स्वगतविरोधाभासनिरासपादः ,,
(४) प्राणविषयः स्वगतविरोधाभासनिरासपादः ,,
३—जीवनिर्णयलक्षणो जीवस्वरूपधर्मविवेकाध्यायस्तृतीयः १०४
४० विद्यानिरुक्तिः १०७
४—जीवयात्राभेदनिरुक्तिः ११०
१—निर्गुणोपासनारूपाया विद्यायाः स्वरूपम् ,,
२—अथ द्वितीये पादे उत्क्रान्तिक्रमः ,,
३—अथ तृतीये पादे आत्मगतिः ,,
४—अथ चतुर्थपादे मुक्तिनानात्वविमर्शः १११
५—शारीरकजीवयात्रालोकनिरुक्तिः ,,
(६) गीताशास्त्रनिरुक्तिः ११५
३—अथ आत्मब्रह्ममीमांसा प्रारभ्यते ११६
१—केवलात्मनिरुक्तिः
२—ईश्वरात्मनिरुक्तिः
३—जीवात्मप्रतिपत्तिः
एतानि त्रीणि प्रकरणानि विज्ञेयानि
१—अथ केवलात्मनिरुक्तिः ११६
१—विशुद्धात्मनिरुक्तिः ,,
२—विश्वातीतम् (विश्वात्मा) ११७
३—एकस्यैवात्मनः सप्तसंस्थाप्रदर्शनम् ११९
४—सप्तसंस्था स्वात्मनः संक्षिप्तस्वरूपसंज्ञा १२०
५—दृष्टिभेदेनात्मनः पञ्चसंस्थोपपादनम् ,,
६—पञ्चानामात्मशास्त्राणां सप्तात्मसंस्था संविभक्तिविषयकत्वम् १२१
७—संस्थाभेदात्मभेदोपपादनेऽप्यैकात्म्यसिद्धान्तः ,,
८—ऐकात्म्य सिद्धान्तेपि संस्थाभेदादात्मनानात्वदर्शने प्रक्रमभेदात् सामञ्जस्यम् १२२
१—विराट् प्रजापतिरात्मा ,,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—यज्ञप्रजापतिरात्मा १२२
३—सत्यप्रजापतिरात्मा ,,
४—चित्पुरुष आत्मा ,,
५— अव्यय पुरुष आत्मा १२३
२—उपनिषच्छास्त्राणां विरोधाभासनिरासो ब्रह्ममीमांसा १२४
१—ब्रह्ममीमांसायां मीमांस्यब्रह्मपदार्थ आत्मा ,,
२—त्रयो निर्गुणाश्चत्वारः सगुणा इत्येवमात्मनःसप्तसंस्थाः ,,
३—निर्विशेष आत्मा प्रथम संस्था ,,
४—परात्पर आत्मा द्वितीय संस्था १२५
५—पुरुष आत्मा १२६
६—पुरुषस्य षोडशकलत्वम् १२७
७—सत्यप्रजापतिरात्मा १२८
८—यज्ञप्रजापतिरात्मा १२९
९—विराट् प्रजापतिरात्मा ,,
अथात्मनः पञ्चसंस्थायाम्—
१—विराडात्मा १३०
२—यज्ञात्मा ईश्वरः १३१
यज्ञात्मा जीवः १३२
३—सत्यात्मा ईश्वरः १३३
सत्यात्मा जीवः ,,
सत्यात्मा जीवेश्वरसाधारणः १३४
४—षोडशी पुरुष आत्मा ईश्वरः ,,
,, ,, ,, जीवः ,,
,, ,, ,, जीवेश्वरसाधारणः ,,
५—परात्पर आत्मा १३५
(१) पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरात्मत्वम् ,,
१—विराडात्मा ,,
२—यज्ञः आत्मा १३६
३—सत्यः आत्मा ,,
४—षोडशीपुरुष आत्मा ,,
५—परात्परः ,,
(२) परात्परपुरुषयोः सृष्टिकर्तृत्वाभावः ,,
३—दर्शनशास्त्राणां विरोधाभासनिरासो ब्रह्ममीमांसा १३८
१—दर्शनशास्त्राणां परस्परविरोधपरिहारः ,,
१—निर्विशेष आत्मा वेदान्तदर्शने ,,
२—महेश्वरः पुरुष आत्मा सेश्वरसांख्यदर्शने ,,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—ईश्वरः पुरुष आत्मा सेश्वरसांख्यदर्शने १३८
४—विभुरेकः पुरुषो जीवात्मा वेदान्तदर्शने १३९
५—प्रतिशरीरभिन्नोऽनेकः पुरुषो जीवात्मा सांख्यदर्शने १४०
६—सगुण आत्मा प्रजापतिर्वैशेषिकदर्शने १४०
७ सत्यः प्रजापतिरात्मा शैवोपासनायां माहेश्वरदर्शने १४०
८—यज्ञप्रजापतिरात्मा वैष्णवोपासनायां भागवतदर्शने १४०
९—विराट् प्रजापतिरात्मा लौकायतिकदर्शने १४१
१०—मुख्यात्मतत्त्वाविरोधात् सर्वदर्शनानां सामञ्जस्य सिद्धिः १४१
२—अथेश्वरात्मनिरुक्तिः १४२
१—ईश्वरनिरूपणोपक्रमः १४२
२—अथेश्वरानुवाकः प्रारभ्यते १४२
१—अनन्तलोकालम्बनस्य त्रिपुरुषस्येश्वरात्मत्वम् १४४
२—ईश्वरविग्रहे प्रजापतिशब्दः १४४
३—त्रैलोक्यत्रयात्मकसप्तलोक्या ईश्वरशरीरैकशाखात्वम् १४५
४—ईश्वरशरीरम् १४७
५—पिण्डानां चतुर्जातिकत्वम् १४७
६—सप्तलोकान्तर्गतानां तिसृणां त्रिलोकीनां परस्परोतप्रोतत्वम् १४९
७—ईश्वरशरीरस्याश्वत्थानुरूपत्वम् १५०
८—ईश्वरात्मसंबन्धिनः पञ्चाक्षराः १५२
९—ईश्वरसम्बन्धे क्षरात्मानः १५३
१०—ईश्वरस्य क्षेत्रज्ञ आत्मा पञ्चकोशोऽव्ययो नाम १५४
११—ईश्वरस्य महानात्माऽयमक्षरो नाम १५५
१२—ब्रह्मवेदत्रयी वाक् १५५
१३—ब्रह्मा प्रतिष्ठावाक् १५६
१४—ब्रह्मा अमृतमर्त्या वाक् १५७
१५—ऋतसत्यविवेकः १५७
१६—उपसर्गाष्टकं (पृथ्वीमहिमा) १६०
१७—अष्टोपसर्गः (सूर्यमहिमा) १६१
१८—आपोमयं त्रैलोक्यम् (भृग्वङ्गिरो भेदाः) १६२
१९—भूर्भुवः स्वर्भेदाः १६४
२०—वैज्ञानिकजगदारम्भः १६४
२१—वारुणप्रेङ्खः १६४
२२—परिचरक्रमः १६५
२३—आनन्दमयं त्रैलोक्यम् १६६
२४—परिचरक्रमः १६६
२५—प्रजापतेः संस्थाचतुष्टयी १६७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सप्तलोकसंस्थानधर्म्माः १६९
(देवासुरमतविरोधः) १७२
२६—बृहस्पत्यादिनानात्वम् १७४
२७—सर्वसमन्वयः १७५
३—आधिकारिकेश्वरनिरूपणम् १७६
१—ईश्वरशारीराग्निविवर्तभूतं सुदर्शनं चक्रम् १७७
२—ईश्वरस्याश्वत्थैकवलशाशरीरस्य रूपभेदा आधिकारिकेश्वराः १७७
३—ईश्वरमूर्द्धा स्वयंभूः ब्रह्मा । स प्राणनाथो लोकपतिः १७७
४—ईश्वरहृदयं हिरण्यगर्भो विष्णुः स देवनाथो यज्ञपतिः १७८
५—ईश्वरनाभिर्महादेवः शिवः । स भूतनाथः पशुपतिः १७८
६—मनोधर्माश्रयो दिव्याग्निर्दक्षिणामूर्तिः ज्ञानतन्त्रोद्बोधकवायुसखः १७९
७—इत्थं त्रिमूर्तिरेकः पुरुषः सर्वभूतान्तरात्मा १८२
८—संवत्सराग्निः स्थाणुः पुरुषः ईश्वरो द्रष्टव्यः १८३
९—ईश्वरसाक्षात्कारे विप्रतिपत्तिनिरासः १८३
३—अथ जीवात्मप्रतिपत्तिः १८७
१—शारीरकजीवात्माप्रत्यगात्मा १८७
२—चिदात्मा १८७
३—चिदंशः १८७
१—प्रत्यगात्मा चिदंशः १८८
२—शारीरकात्मा चिदाभासः १८८
४—जीवेश्वरयोर्भेदाभेदव्यवस्था १८८
१—शारीरकजीवात्माचिदाभासः १९०
४—शारीरकात्मनो गतिहेतौ कर्मणि स्वातन्त्र्यम् १९३

* इति शारीरकमीमांसाविमर्शस्य विषयतालिका सम्पूर्णा *

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

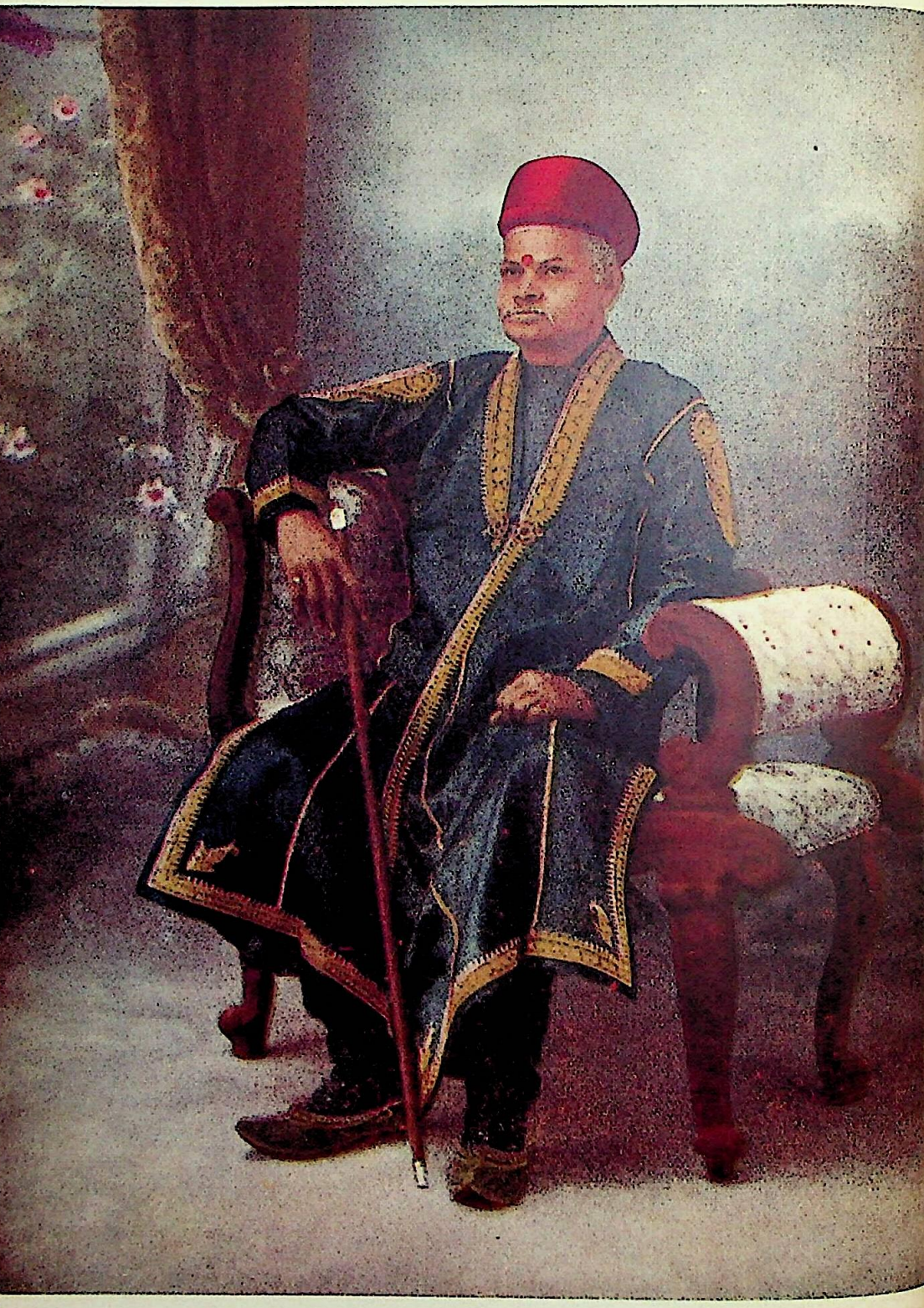

वेद विद्यासमुद्धारकस्वर्गीयपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलाः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ ब्रह्ममीमांसाप्रवृत्तिनिमित्तम् ।

१—मीमांसाशास्त्रारम्भावश्यकता ।

१—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इत्यारभ्य ब्रह्ममीमांसाशास्त्रमारभ्यते । तत्र कोऽयं ब्रह्म पदार्थो यस्येयं मीमांसा क्रियते—इति जिज्ञासायामुच्यते । "जन्माद्यस्य यतः" इति । अयं भावः । "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म" इति वचनादात्मा ब्रह्मेति गम्यते । "उक्थं ब्रह्म साम तदेतत्त्रयं तदेकमयमात्मा । आत्मा एकः सन्नेतत्त्रयम्" इति च श्रूयते । तथा चात्मन एवेयं ब्रह्मणो मीमांसा विधीयते इत्युक्तं भवति ।

२—अत्रेदमाशङ्क्यते । यद्यात्मनो मीमांसार्थमयं प्रयत्नः क्रियते तत्तर्हि नारब्धव्यमिदं मीमांसाशास्त्रम् । शास्त्रान्तरैरेवात्मनिरूपणस्य कृतार्थत्वात् । तथा हि—प्रसिध्यन्ति खलु पञ्चात्मनिरूपणशास्त्राणि । वेदाः[1], उपनिषदः[2], दर्शनानि[3], मीमांसा[4], गीता[5] चेति । तत्र वेदोपनिषदः श्रुतयः । दर्शनानि स्मृतयः । श्रुतिस्मृतिप्रामाण्याच्चोपपन्नेऽस्मिन्नात्मपदार्थे नास्त्यवसरः संशयस्येति मीमांसा नापेक्ष्यते इति चेत् अत्रोच्यते—

३—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः" इति प्रतिज्ञासूत्रदर्शनादवश्यं तावदात्मन एवेयं मीमांसा अस्तीति परामृश्यते । किन्तु यथायमात्मा ब्रह्मपदार्थः तथेहात्मशास्त्रं वेदोऽपि ब्रह्मपदार्थोऽभ्युपगन्तव्यः । अवश्यं चैतस्यापीह ब्रह्मणो वेदस्य मीमांसा चिकीर्ष्यते ह्यात्मनः शास्त्रयोनित्वाच्छास्त्रार्थनिर्णयसहकारेणैवात्मनिर्णयस्येह विवक्षितत्वात् ।

४—नात्र ब्रह्ममीमांसानिबन्धे स्वातन्त्र्येणात्मब्रह्ममीमांसा चिकीर्षिता वेदवेदान्तोपनिषद्दर्शनशास्त्रैरात्मनिरूपणस्य कृतार्थत्वादस्यात्मनः पुनर्निरूपणायैतन्मीमांसाशास्त्रारम्भस्य वैयर्थ्यात् ।

५—ननु "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः" इति प्रतिज्ञासूत्रादात्मनिरूपणायैवेदं शास्त्रं प्रवर्तते इत्युक्तम् इति चेत् सत्यं तावदात्मनिरूपणायैवेदं मीमांसाशास्त्रं प्रवृत्तमस्तीति विज्ञायते । तथाप्येष आत्मा वेदशास्त्रे वेदान्तोपनिषच्छास्त्रे च सपरिकरं प्रागेव निरूपित इति नेह मीमांसायां स्वातन्त्र्येणात्मनिरूपणमत्यन्तायोपयुज्यते । पिष्टपेषणापत्तेः । कृतस्य करणं नास्तीति लोकसिद्धान्तात् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मादात्मब्रह्ममीमांसायाः शास्त्रयोनित्वाद् वेदवेदान्तोपनिषच्छास्त्रद्वारेणात्मब्रह्ममीमांसा प्रकृते कर्तुमिष्यते। तेषामेव च वेदवेदान्तोपनिषच्छास्त्रवचनानामिहात्मनिरूपणे प्रामाण्यमास्थीयते। यथा तु खलु तेषु वेदवेदान्तोपनिषच्छास्त्रेष्वेष आत्मा परोक्षाथद्रष्टृभिर्महर्षिभिर्निरूपितः स तथैवेह तच्छास्त्रवचनप्रामाण्येनैव पुनर्दृढीक्रियते इति भाव्यम्॥ ननु तर्हि वैयर्थ्यं स्यादिति चेन्न। श्रुतिस्मृतिभ्योऽत्र मीमांसायामात्मसम्बन्धिकतिपयविशेषार्थनिरूपणस्य प्रक्रान्तत्वात्। अपि च—सन्तु तावदिमानि वेदवेदान्तदर्शनानि च शास्त्राण्यात्मनिरूपणानि किन्तु नात्यन्तं तत्रात्मनिरूपणं संतोषायोपयुज्यते—त्रयाणामप्येषामात्मशास्त्राणां बहुविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन सन्देहजनकत्वात्। तथा हि—

२—आत्मशास्त्राणां परस्परविरोधाभासाः।

यदिदं क्वचित् किंचित् परिपश्यामः—किं तत् कुतो जातं कुत्र प्रतिष्ठितं कोऽस्याधिष्ठाता, एवं नानाविधा जिज्ञासन्ते सर्वे लोकाः—तत्समाधानार्थं प्रवर्तमानानां वेदब्राह्मणोपनिषद्दर्शनशास्त्राणां मिथो बहवो विरोधा दृश्यन्ते तथा हि—वेदेषु तावत्—कुतो जातमिति प्रश्ने—

१—"विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा अद्याममार स ह्यः समानः॥" ऋक्। १०। ४। ५६

एतावता दैवाधीनं जगत् सर्वम्। स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिविनाशकारणं दैवमेवेति केचित्॥ अथाऽपि—

२—"आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्।
भयंते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु। ऋक्। १।२३। १६६। ४
अचिकित्वां चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
यस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि अजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्॥" ऋ० १। २२। १६४। ६

इत्यादिवचनप्रामाण्यात् विश्वस्यास्यारम्भणं तत्त्वं रज एव। ऋषिपितृदेवासुरगन्धर्वमनुष्याणां भेदे निमित्तं रज एव। रजसां संयोगवियोग एव जगद्वैचित्र्ये हेतुः। उक्तमपि—

"कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतुः।"

३—अपि च—

आप एवेदमग्र आसुः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या रोचने परस्तात् सूर्य्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ।
तास्वेवायं जायमानोऽग्निरूपः सूर्य्यस्ताभिर्विश्वमेतद् व्यधत्त ॥
आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापोभृग्वङ्गिरोमयम् ।
सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयम् ।
अन्तरे ते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः (अथर्व)

इत्यादिश्रुतिबलाद्—अद्भ्य एव स्थावरजङ्गमात्मकमिदं विश्वमुत्पद्यते—केचिदित्थं प्रवदन्ति—

(४) परे पुनः—

"अथो वागेवेदं सर्वम् । वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता ।"
"अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवो पर एता पृथिव्या एतावती महिना संबभूव ।"

इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात्—वाच एव विश्वं जज्ञे इत्थं सिद्धान्तयन्ति ।

(५) अन्ये तु—

"अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद् देवा प्राप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठन् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

इति वचनात्—व्योम्न एव सर्वाणि भूतानि भूत्वा व्योम्न्येव सर्वेऽपियन्ति तस्माद्—व्योम एव विश्वस्यास्य प्रभवः प्रतिष्ठा परायणमिति निगदन्ति ।

(६) अपरे तु—

"असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे
अग्निर्हि नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं आयुनि वृषभश्च धेनुः" ॥ १० । १ । ५ । ७

इति मन्त्रबलाद् सत् च असत् च, सदसत् चेति त्रीणि तत्त्वानि सृष्टेर्मूलभूतानीत्युद्घोषयन्ति ।

(७) अथवा—

"अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् ।
मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति ।"

एतावता—अमृतं मृत्युरिति द्वयमेतद् विश्वस्य मूलमिति केचित् कथयन्ति—

(८) इत्थं कतिचिन्मनीषिणः विश्वस्यास्योत्पत्तिविषये परस्परव्याहतभाषितानीमानि नानाश्रुतिवाक्यानि प्रसमीक्ष्य—

"न तं विदाथ य इमा जजान अन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीहारेण प्रावृता जल्पा चासुतृपदुक्थशास्त्रश्चरन्ति ॥"

"आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति ।

आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।"

समस्तं संशयितम्—इति प्रवदन्ति ।

३—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वजनकत्वाख्यानम्—

१—अथ परमेष्ठिब्रह्मणा—

"किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।

मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद् यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्" ॥

इति जिज्ञासामवतार्य्य समाधत्ते—ब्रह्मत एवेदं विश्वमसृज्यतेति सिद्धान्तः ।

"ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।

मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥"

२—किं तद् ब्रह्मेति जिज्ञासायामाह—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति सिद्धान्तः ॥"

३—अथ विश्वकारणस्यैतस्य ब्रह्मणः किंतावद् विश्वरूपमेवास्य रूपमथवा विश्वविलक्षणं किञ्चिद् रूपमिति जिज्ञासायामाह—

"यदमृतं तद् ब्रह्म । अभयं वै ब्रह्म । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म । अयमात्मा ब्रह्म ।" इति ।

तथा चैवं विश्वविलक्षणरूपोयमात्मा तद् ब्रह्मेति सिद्धान्तः ॥

४—अथैतद्ब्रह्मैकमनेकं वेति जिज्ञासायामाह—

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव । तत् सर्वमभवत् ।" इति ।

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।" इति ।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्दक्षिणतश्चोत्तरेणेति ।

तथा चेदं ब्रह्मैकमेवेति सिद्धान्तः ॥ ४ ॥

५—अथ विश्वं सृजदिदं ब्रह्म पितापुत्रवत् पृथगिदं विश्वं सृजति । आहोस्विद् दुग्धं दधिवदात्मन्येवेदं विश्वं सृजतीति जिज्ञासायामाह । आत्मन्नेवेदं प्रजापतिमधत्तेति नास्य पृथक्सृष्टिरस्तीति सिद्धान्तः ॥ ५ ॥

६—अथेदं ब्रह्म कुतश्चिदन्यतः सृष्टं वा तदकृतकं वेति जिज्ञासायामाह— *

(७)—अथास्य ब्रह्मणस्तावदद्वितीयत्वे निर्विकारत्वे च स्थिते किं तत् साधनं

* अत्र पाठस्त्रुटितः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किं चोपादानं येनेदं विश्वमसृजतेति जिज्ञासायामाह—

"को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।

अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेऽनाथाः को वेद यत आबभूवेति" ॥ ऋक् ।३।५।५४

तस्मादचिन्त्यमनिर्वचनीयमिदं विश्वोत्पादनमिति सिद्धान्तः ॥ ७

(८)—अथ किं तद्दिनं कः समयो यत्रैतद् ब्रह्म सर्वतः प्रथमं विश्वं स्रष्टुं प्रारभत इति जिज्ञासायामाह—

"को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्रवोचत् ।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्य नॄन्" ॥ ऋक् । १० । १ । १० । ६

एषु च ब्रह्मणः कारणत्वं स्थितम् ॥

४—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वाधारत्वाख्यानम् ।

अथ कुत्रेदं विश्वं प्रतिष्ठितमित्यत्राप्याहुः—

१ ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा ।

२ प्रतिष्ठा ह्येषा यद् ब्रह्म ।

३ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा सर्वानुभूः सर्वमन्राविवेश ॥

४ अन्तरस्मिन्निमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ।

ब्रह्मैव भूतानां ज्येष्ठं तेन कोऽर्हति स्पर्द्धितुम् ॥

५ ब्रह्मन् देवास्त्रयस्त्रिंशद् ब्रह्मन्निन्द्रप्रजापती ॥

ब्रह्मन् ह विश्वा भूतानि नाविवान्तः समाहिता ॥

स वेदैतत् परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ॥ इति ॥

एतेन ब्रह्मण्येवेदं विश्वं प्रतिष्ठितमित्युक्तं भवति ॥

५—ब्रह्मसामान्यस्य विश्वाधिष्ठातृत्वम् ।

अथ कोऽस्याधिष्ठातेत्यत्राहुः—

ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ १ ॥ इति ।

अनेन ब्रह्मणो विश्वाधिष्ठातृत्वं गम्यते ॥

अथ किमिदं विश्वमित्यत्राहुः—

१—ब्रह्म विश्वमिदं ब्रह्म ।

२—सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।

३—ब्रह्मैवेदं सर्वम् इति ।

एतेन ब्रह्मणा विश्वस्याव्यतिरेकः कृतो भवति । इत्येतेषु वचनेषु अस्य ब्रह्मणः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्वचिदाधारत्वं क्वचिदभिन्नत्वमाख्यायते । तेनैतस्य विश्वकारणत्वं नात्यन्तमुपपन्नं भवति इति । तस्मात् संदिग्धोऽयमर्थः ॥

६—प्रजापतेः सृष्टिमूलत्वाख्यानम् ।

अपि च ब्राह्मणेष्वेव तावदन्यतोऽन्यतः सृज्यमानं विश्वं निरुच्यते । तथा हि—क्वचिद् ब्रह्मणः क्वचित् प्रजापतेः, क्वचित् पुरुषतः, क्वचित्पुनरन्नादिभ्योऽन्यान्यनानाभावेभ्यः सृष्टिराख्यायते । तस्मान्न निर्धारितं किञ्चिदेकं विश्वकारणं विज्ञायते । तत्र तावत् प्रजापतेः कारणत्वमाह—

"प्रजापतिरकामयत—एकोऽहं बहुः स्यां प्रजायेयेति प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वमसृजत—यदिदं किञ्चेति ॥ प्रजापतिः प्रजा असृजत उभयत एव ब्रह्मा सृजते इतश्चानुतश्चेति ॥ प्रजापतिर्वै जनिता प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा ॥ प्रजापतिः प्रजा असृजत । ता वैश्वदेवेनासृजत । स आत्मन्येव प्रजापतिमधत्त ॥ प्रजापतिरेवैतान् लोकान् सृष्ट्वा पृथिव्या प्रत्यतिष्ठत्" ॥ इति

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
सर्वं वै प्रजापतिः । सर्वं वा इदं प्रजापतिर्यं इमे लोका यदिदं किञ्चेति ॥
प्रजापते न त्वदेतानन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ॥"
"यस्मान्न परोऽन्योऽस्ति जातो स आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी" ॥ इति

सर्वं वा इदं प्रजापतिर्यं इमे लोका यदिदं किञ्चेति । सर्वं वै प्रजापतिः ।

७—पुरुषस्य सृष्टिमूलत्वाख्यानम् ।

अथैवं पुरुषो विश्वकारणमित्यपरः सिद्धान्तः—श्रूयते हि—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित् ॥
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
पुरुष एवेदं विश्वं कर्म्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ इति ॥

पुरुषस्त्वेष पशुर्न ब्रह्म । अबध्नन् पुरुषं पशुमित्युक्तेः । पुरुषो वै यज्ञ इति श्रुतेश्च ।

८—अन्नस्य सृष्टिमूलत्वाख्यानम् ।

अथान्नादिष्वन्नस्य तावद् विश्वकारणत्वं यथा—

"अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते याः काश्च पृथिवीं श्रिताः ।
अथो अन्नेनैव जीवन्ति अथैनदपि यन्त्यन्ततः" ॥ इति । तै० ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९—आनन्दो विज्ञानं मनः प्राणो वागिति पञ्चानां ब्रह्मणां सृष्टिमूलत्वाख्यानम्।

अपि च—भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। स तपस्तप्त्वा प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते प्राणेन जातानि जीवन्ति प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। इति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपस्तप्त्वा मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते मनसा जातानि जीवन्ति, मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। स तपस्तप्त्वा विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। स तपस्तप्त्वा आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। इति सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। तामेतां तपसा भृगुरध्यगच्छत्।

अध्यात्मं विज्ञानात्मनि मनःप्राणवाचां चिरप्रयोगे प्राणानां प्राणैःसह संघर्षणात् प्रादुर्भूतोऽग्निस्तपः तेन तपसा परिपक्वेन विज्ञानेन संगृहीतोऽर्थो ब्रह्म। स खलु ब्रह्मशब्दो विश्वस्यैतस्य प्रभवप्रतिष्ठापरायणतया संप्रतीतेऽर्थे रूढः। तथा च—

अन्नं प्राणो मनोविज्ञानमानन्दः—इत्येतेषां पञ्चानां ब्रह्मत्वं प्रतिपादयित्र्या तित्तिरिश्रुत्या संदिग्धमेवैतस्य विश्वस्य कारणमनिर्धारितमाख्यायते। जन्यानामेषामन्नादीनां कार्य्यत्वेन विश्वरूपतया विश्वकारणत्वानुपपत्तेः पञ्चानामन्नादीनामविशेषेण कारणत्वाख्याने विनिगमनाविरहादेकस्यापि कारणत्वानुपपत्तेश्च। तस्मात् संदिग्धोऽयमर्थः।

अपि च नैतावता ब्रह्मैवेदं विश्वं वा, ब्रह्मैवैतद्विश्वोपादानं वा ब्रह्मैवैतद्विश्वाधिष्ठानं वा, ब्रह्मैवैतद्विश्वाधिष्ठातृ वा शक्यतेऽध्यवसातुम्॥

१०—ब्रह्मणो मूलकारणत्वाभावः।

अपि चेदं ब्रह्माप्यन्यतोऽन्यतः प्रजातमिति श्रूयते—

"यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः॥
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥ इति॥
विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमं प्रसूतेन यन्तः।"
"ततो ह जज्ञे भुवनस्य गोपा हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्म नाम।
ऋतस्य ब्रह्म प्रथमोपजज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्द्धितुं कः॥" इति॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा चैतस्य ब्रह्मणो जन्यत्वं विज्ञायते इति नैतस्मादिदं विश्वं जातमिति शक्यतेऽध्यवसातुम् ॥ १४ ॥

११—ब्रह्मणः कारणान्तरजन्यत्वम् ।

अपि च स्पष्टमेतेषु जन्येषु ब्रह्मशब्दः प्रयुज्यते । तथा हि—

"ब्रह्म वा अग्निः । इन्द्रो ब्रह्म । असौ वा आदित्यो ब्रह्म । ब्रह्म वै छन्दांसि । प्राणो वै ब्रह्म । चन्द्रमा ब्रह्म । कं ब्रह्म । खं ब्रह्म । रं ब्रह्म । शं ब्रह्मेत्यादि ।"

तस्माद् बहुविप्रतिपन्नवादिन्यः खल्विमाः श्रुतयो नैकान्ततो निर्णीतं कमप्यर्थं प्रतिपादयन्ति ॥

१२—श्रुतिवाक्यानां प्रत्यक्षविरुद्धार्थत्वम् ।

लोकविरुद्धं चैतच्छ्रुतीनामाम्नानं दृश्यते । तथा हि—

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेत्याम्नायते ।" विश्वं त्वेतद्बहुभिन्नं रूपं दृश्यते । तस्मान्नेदं विश्वं ब्रह्म संभाव्यते । "स चैतत् परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्" इति ब्रह्मणि निहितं विश्वमाख्यायते । तस्मान्नेदं विश्वं ब्रह्म ॥ १ ॥ अपि च—

"न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥"

इति ब्रह्मणो निर्विकारत्वमाम्नायते । विकारि त्विदं विश्वं दृश्यते तस्मान्नेदं विश्वं ब्रह्म संभवति ।

इत्थं चेदमेकमेव ब्रह्म नानाभावैरुपदिशन्ति महर्षयो नैकमेवार्थं निर्धार्य्य ब्रुवते । आतश्चात्र पुनर्ब्रह्मणि संशयो भवति ॥ नानाभावैश्चोपदेशादर्थानां सामञ्जस्यं न पश्यामः । सामञ्जस्येन तूपदिश्यमानमसंदिग्धार्थं व्याख्यानं शुश्रूषन्ते लोकाः । श्रूयते चैवम्—

"सं पूषन् विदुषा नय योऽञ्जसाऽनुशासति । य एवेदमिति ब्रुवन् ।" इति ।

इह पुनरेकस्य ब्रह्मणोऽन्यथा विरोधेन श्रूयमाणैरर्थैः सामञ्जस्यं नास्ति सन्देहश्चापद्यते—ब्रह्मभिन्नं विश्वमिति वा । ब्रह्मोत्पन्नं विश्वमिति वा । ब्रह्मण्याहितं विश्वमिति वा । ब्रह्मणाधिष्ठितं विश्वमिति वा । किञ्चिदन्यद् विश्वमिति वा । किं चैतस्य ब्रह्मणो विश्वविलक्षणं स्वं रूपमिति वा । नैतं कमप्येकमर्थं श्रुतिवाक्येभ्यो निर्धारयितुं शक्नुमः ॥

अथान्येऽपि ब्रह्मविषये दृश्यन्ते बहवो विरोधाः—तथा हि—अनाधारत्वसर्वाधारत्वविरोधो यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१ आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः । स कस्मिन् प्रतिष्ठितः । स्वे महिम्नि—इत्यनाधारत्वम् । अन्तरादित्ये, अन्तरक्षणि—इत्येवं पुनः साधारत्वमिति विरोधः ॥

एष सर्वेश्वरो भूताधिपतिर्भूतपालः । सेतुर्विधरण इत्यनन्तैश्वर्य्यत्वम् । ये चामुष्मात् पराञ्चो लोकास्तेषामीष्टे—इत्यन्तरादित्यस्य ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषामीष्टे—इत्यन्तरक्षणे मर्य्यादावदैश्वर्य्यत्वम् । इति विरोधः ॥ २ ॥ तस्मादित्थमनिर्णये प्रसक्ते—अवश्यमियं ब्रह्ममीमांसा वेदब्राह्मणोपनिषत्प्रकरणानां विरोधाभासनिरासार्थमपेक्ष्यते ।

इदं तु बोध्यम् । परस्परविरुद्धार्थकतया सन्दिग्धार्थत्वेपि परोवर्य्यविद्भिर्हीदं महामहर्षिभिरुक्तं वेदवेदान्तादिशास्त्रं न तच्छक्यते मतप्रलपितमिवानर्थकत्वेनाध्यवसायोपेक्षितुम् । न वा तत्पदार्थापरिज्ञानात् सन्देहमात्रेणोपेक्षणीयं संभवति । योगजदृष्ट्या दृष्टस्यार्थस्य याथार्थ्येन ग्राह्यत्वात् । तथा ह्याहुस्तेषां निर्विवादं प्रामाण्यम् ।

"आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम् ।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥ १ ॥
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यंत्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥ २ ॥ (भर्तृहरिः)
अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ॥
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः" ॥ (भागवते) इति ।

तस्मादेष्वात्मनिरूपणशास्त्रेषु वेदवेदान्तोपनिषद्दर्शनेषु विश्वकारणमिदमात्मतत्त्वं यथारूपेण निरूपितं तत्तथैवाग्राहयितुमियमत्र मीमांसा प्रवर्तते साक्षात्कृतधर्म्मभिर्महामहर्षिभिर्योगजदृष्ट्या दृष्टस्यार्थस्य तस्यान्यथात्वाभावात् । एवमपि यत्रैते निरूप्यमाणाः शास्त्रार्थाः सम्यङ् न विज्ञायन्ते हृदयंगमा न भवन्ति तत्र तेषां मीमांसा कर्तव्येति श्रुतिरादिशति द्रष्टव्येर्थे श्रोतव्यो निदिध्यासितव्य—इति ॥ इदं हि श्रुतिवाक्यं श्रुतेर्थे मननानन्तरं निश्चयकरणस्य कर्तव्यतामुपदिशति । तथा च संदिग्धार्थकवाक्यस्यावश्यं मीमांसा कर्त्तव्येति श्रुतितात्पर्य्यं गम्यते । मीमांसया च तेषामार्षवचनानां याथार्थ्यमध्यवसाय तदुपदिष्टं विज्ञानं गृह्णीयान्न तु अज्ञानवशात्पदार्थापरिग्रहे सति वैरस्यमागतस्तदुपदिष्टं गूढविज्ञानं परित्यजन् सर्वथा तस्माद् वञ्चितो भवेदिति युक्तं प्रतीमः । अत एव चैतान्यात्मविज्ञानानि श्रुतिस्मृत्युपदिष्टानि गूढार्थत्वाद् दुर्बोधान्यपि मीमांसाशास्त्रसाहाय्येन मीमांसयित्वा ग्राह्याण्येव न त्वज्ञानादुपेक्षणीयानि । तस्माद् द्विविधं कर्तव्यमिहापेक्षितं भवति । प्रमाणत्वेन प्रतिपन्नानामेषां वेदवेदान्तदर्शन-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्राणां प्रामाण्यरक्षार्थं शास्त्रमीमांसा कर्तव्या इत्येकम् । मीमांसासिद्धप्रामाण्यैः पुनरेभिः शास्त्रैर्निरूपितानामात्मनां भेदाभेदविषये सन्देहनिराकरणार्थं चात्ममीमांसा कर्तव्येति द्वितीयम् ॥ अतश्चैतेभ्यो वेदवेदान्तदर्शनशास्त्रेभ्योऽनन्तरमेषां च शास्त्राणामात्मनां च मीमांसनार्थं प्रकरणमपेक्षितं भवतीत्यवश्यमिदमारब्धव्यम् ब्रह्ममीमांसाशास्त्रमिति सिद्धम् ॥

अनेन च ब्रह्ममीमांसाशास्त्रेण ब्रह्मणो विश्वकारणत्वं निःसंदिग्धं व्यवस्थाप्यते सर्वाणि च संदिग्धस्थानानि वेदब्राह्मणोपनिषद्वाक्यानि ब्रह्मपरतया व्याख्यायन्ते । सर्वे च संशया निवर्तन्ते ॥

इति ब्रह्ममीमांसाशास्त्रारम्भावश्यकताहेतुभूतेन वेदब्राह्मणोपनिषद्वाक्यानां परस्परविरोधाभासप्रदर्शनेन ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य प्रवृत्तिनिमित्तमाख्यातम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—अथ शास्त्रब्रह्ममीमांसा प्रारभ्यते

१—आत्मशास्त्रनिर्वचनोपक्रमः

१—आत्मब्रह्मशास्त्रब्रह्मभेदान्मीमांस्यब्रह्मणो द्वैविध्यम्

यद्यपि—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः" इति प्रतिज्ञासूत्रदर्शनादवश्यं तावदात्मन एवेयं मीमांसाऽस्तीति परामृश्यते। तथापि प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोरभेद-संबन्धादात्मना सहात्मानुबन्धरूपस्य शास्त्रब्रह्मणोऽपीह मीमांसा चिकीर्षितास्ती-त्यनुसंधेयम्। तथा हि—अयमात्मा तावत् त्रेधा विज्ञायते—निर्धर्म्मकः, सर्वधर्म्मोपपन्नः, तदुचितसर्वधर्म्मोपपन्नश्च। "सर्वधर्म्मोपपत्तेश्चेति" सूत्रप्रामाण्यात् सर्वधर्म्मा कश्चिन्महामायाप्रमितो विश्वशरीरः पुरुष ईश्वर इत्येकः ॥ १ ॥ अथ सर्वधर्म्मोपपन्नस्यैतस्येश्वरस्यांशत उदक्तो योगमायावशान्मर्त्यशरीरमभिसम्पन्नः पाप्मभिर्योगात्कथंचित् प्रच्युतैश्वर्य्यः शरीरलक्षणविश्वाधिष्ठाता पुरुषो जीवसंज्ञां लभते सोऽन्यः ॥ २ ॥ अथेश्वरस्य जीवानां चान्तस्तलवर्ती गूढः कश्चिदेतद्विश्वमूल-भूतो निर्धर्म्मकः पुरुष आत्मा सोऽन्यः ॥ ३ ॥ तदित्थं केवलात्मा, ईश्वरात्मा, जीवात्मा चेति त्रिविधोऽयमात्मा ब्रह्मपदार्थः।

त्रयो भावाः, त्रीणि तन्त्राणि, त्रीणि वीर्य्याणि, त्रीणि शास्त्राणीति चात्रानु-बन्धाः। शान्तभावः, वीरभावः, पशुभावः इत्येते तावदात्मनस्त्रयो भावाः। वाङ्मयः, प्राणमयः, मनोमयश्चायमात्मा श्रूयते। तेनैतस्यात्मनो ज्ञानकर्म्मार्थभेदात् त्रीणि तन्त्राणि विज्ञायन्ते। तदेतत्तन्त्रत्रयोद्बोधकानि आत्मनस्त्रीणि वीर्य्याणि भवन्ति—ब्रह्मक्षत्रविडितिभेदात्। तत्र ज्ञानोदयोपयिकं वर्चोलक्षणं ब्रह्मवीर्य्यम्। कर्म्मोदयौपयिकमुत्साहलक्षणं क्षत्रवीर्य्यम्। वित्तसंचयोपयिकं संग्रहलक्षणं विड्वीर्य्यम्। वाजिश्रुतौ यद्यपि पञ्चवीर्य्याण्युक्तानि—

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव। तदेकं सन्नैव व्यभवत्। तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत—क्षत्रम्। सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद् ब्रह्म। तस्माद् यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उप-निश्रयति स्वां योनिम्। स नैव व्यभवत्। स शौद्रं वर्णमसृजत्। स नैव व्यभवत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तच्छ्रेयोरूपमसृजत—धर्म्मम्। यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत्। एतद्धयेवैतदभयं भवति। तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रः" इति। १४। ३। २।

तथापि धर्म्म इत्येतदेषां चतुर्णां वीर्य्याणामेव गुह्यं नामेत्यन्तवाक्यान्निष्कृष्यते। अथ ब्रह्मक्षत्रविशां संस्कारेणाहितत्वाद्वेदैरनुगृहीतत्वमिति तेजोमयत्वाद् वीर्य्यत्वम्। तत्तदाहितदेवत्वस्वरूपरक्षार्थमेव चैषां वृत्तयस्तत्तत्तद्देवताच्छन्दोऽभिश्छन्दिता भवन्ति। यथा—

गायत्र्या ब्राह्मणं निरवर्त्तयत्। त्रिष्टुभा राजन्यं, जगत्या वैश्यम्। न केनचिच्छन्दसा शूद्रं निरवर्तयदिति।

अत एव ब्रह्मक्षत्रविशां भक्षणादिषु न याथाकाम्यम्। छन्दोभिश्छन्दितत्वात्। शूद्रस्तु—कामचारी कामभक्षः अच्छन्दत्वात्। तस्माददैवत इति देवतानिबन्धनं वीर्य्यं तत्र नोदेति। आतश्च दैवतप्रभावसिद्धानि त्रीण्येवैतानि मनुष्येषु वीर्य्याणीति भाव्यम्।

अथ श्रुतिशास्त्रं स्मृतिशास्त्रं विज्ञानशास्त्रं चेति, त्रीणि आत्मनिरूपणशास्त्राणि। तदित्थमात्मत्रैविध्यादात्मानुबन्धत्रैविध्याच्चेदं षोढा ब्रह्मोपपद्यते—

१—निर्धर्म्मकात्मा (विशुद्धाव्ययः)।

२—ईश्वरात्मा (ईश्वराव्ययः)।

३—जीवात्मा (जीवाव्ययः)। इत्येवं त्रय आत्मभेदा ब्रह्माणि।

४—आत्मविज्ञानं वेदः।

५—आत्मशास्त्रं वेदः।

६—आत्मवीर्य्यं चेति। इत्येवं त्रय आत्मानुबन्धा ब्रह्माणि। एष्वात्मन्येवैकस्मिन् निर्धर्म्मके भावे मुख्यं ब्रह्मत्वम्। इतरेषु त्वाश्रितधर्म्मागमान्नानारूपेषु "यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते" इति न्यायादौपचारिकं ब्रह्मत्वम्॥

तथा चैतस्मिन् ब्रह्ममीमांसाशास्त्रे द्विविधं ब्रह्म व्याचिख्यासितं निष्कृष्यते आत्मा चानुबन्धरूपं शास्त्रं चेति। विश्वस्यैतस्य यदारम्भणं किञ्चिन्मूलतत्त्वं निर्विशेष आत्मा वा, ईश्वरात्मा वा ईश्वरांशभूतो जीवात्मा वा, तदेतत्त्रयमात्मब्रह्मेह मुख्यतो जिज्ञासितं भवति। अथैतस्यात्मनः सृष्टिकारणताप्रतिपादकं यत् शास्त्रं श्रुतिर्वा, स्मृतिर्वा, विज्ञानं वा, तदिदं त्रिविधं शास्त्रब्रह्मेहात्मानुबन्धादेव खलु भवति कथंचिज्जिज्ञास्यम्। तच्छास्त्रब्रह्मपदार्थपरिज्ञानादेवैतदात्मब्रह्मपदार्थपरिज्ञानस्य संभाव्यमानत्वात्। तस्मादात्मनिर्णयकोपनिषल्लक्षणस्य शास्त्रब्रह्मणोऽपि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदपदार्थमीमांसा नितान्तमपेक्ष्यते । तत आत्मशास्त्रस्यापि निर्णयायोपयुज्यते नूनमियं ब्रह्ममीमांसा । तथा चैतेषामनेकविरुद्धार्थप्रतिपादकानां श्रुतिवाक्यानामैदंपर्य्यं दर्शयितुमात्मन्येव च तेषां तात्पर्य्यं ग्राहयितुं शास्त्रब्रह्मनिरूपणपूर्वकमात्मब्रह्मनिरूपणं प्रतिजानीते ।

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । जन्माद्यस्य यतः । शास्त्रयोनित्वात् ।" इति ।

ननूक्तं पूर्वमिह खलु ब्रह्ममीमांसायामात्मशास्त्रे निरूपयितुमिष्टो ब्रह्मपदार्थस्त्रेधा विज्ञायते—आत्मब्रह्म, आत्मशास्त्रब्रह्म, आत्मवीर्य्यं ब्रह्म चेति । तत्रेह मीमांसाशास्त्रे वीर्य्यब्रह्मणो मीमांसा न क्रियते तस्मान्न्यूनता भवति इति चेदुच्यते । ज्ञानलक्षणस्यात्मस्वरूपधर्म्मस्यानावरणस्थित्यौपयिकः शक्तिविशेषो ब्रह्मवीर्य्यम् । तत्स्वरूपप्रतिपत्तौ चात्मशास्त्राणां परस्परविरोधो नास्तीति कृत्वेह ब्रह्ममीमांसाशास्त्रे वीर्य्यब्रह्ममीमांसा नापेक्ष्यते । संदिग्धार्थानां सन्देहनिराकरणायैव तत्तन्मीमांसाया अपेक्षणीयत्वात् । वीर्य्यब्रह्मविज्ञानस्य चासंदिग्धार्थत्वात् ॥ तथा चेह मीमांसाशास्त्रे द्विविधं ब्रह्म मीमांसनीयं निष्कृष्यते—शास्त्रब्रह्म च आत्मब्रह्म चेति विद्यात् ॥

इति ब्रह्ममीमांसायां मीमांस्यब्रह्मद्वैविध्यनिर्णयः ।

विशुद्धाव्ययः, ईश्वराव्ययः, जीवाव्ययः, इत्येवं त्रेधा दृष्टा आत्मानः श्रुतिस्मृतिविज्ञानभेदात् त्रेधा प्रतिपन्नानि शास्त्राणि तानीमानि षड्ब्रह्माणीत्युक्तं पूर्वम् । तत्रात्मत्रयशास्त्रत्रयमीमांसायामस्यामात्ममीमांसायाः शास्त्रयोनित्वसिद्धान्तादादौ शास्त्रमीमांसा दर्शयितव्या । अतश्चात्र सर्वतः पूर्वमात्मशास्त्राणां परिसंख्यानं क्रियते । तथा हि—

आत्मशास्त्राणां पाञ्चविध्यम्—

यथेदं मीमांसाशास्त्रमात्मविज्ञानशास्त्रं तथा नूनं सन्त्येव ब्रह्ममीमांसातिरिक्तान्यपि लोके सुप्रचरितानि ततः पूर्वाण्येव त्रीण्यात्मशास्त्राणि वेदश्रुतयः, उपनिषच्छ्रुतयः, दर्शनस्मृतयश्चेति । तेन चेह पञ्चात्मनिरूपणशास्त्राणि प्रसिद्ध्यन्ति—

१—त्रयीवेदाथर्ववेदभेदात् प्रसिद्धानि द्विविधानीमानि वेदशास्त्राणि—वेदाः श्रुतिः ।

२—उपनिषन्नामानि वेदान्तशास्त्राणि । उपनिषदः श्रुतिः ।

३—नाना चार्षेयाणि दर्शनशास्त्राणि । दर्शनानि स्मृतिः ।

४—अथ शारीरकनिरूपणं ब्रह्ममीमांसाशास्त्रम् । मीमांसा विज्ञानम् ।

५—भगवद्गीतोपनिषन्नामकं योगशास्त्रम् । गीता विज्ञानम् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चानामात्मशास्त्राणां श्रुतिस्मृतिविज्ञानभेदात् त्रैविध्येन विभागः

तदित्थं वेदाः, उपनिषदः, दर्शनानि, मीमांसा, गीता चेति पञ्चात्मनिरूपणशास्त्राणि। तत्र तावदिदं वेदशास्त्रं वेदान्तशास्त्रं चेत्युभयं प्रत्यक्षमूलकं श्रुतिशास्त्रमत एव स्वतःप्रमाणम्। साक्षात्कृतसर्वधर्म्मभिरेवोपदिष्टत्वात्। यत्तु पुनरिदं दर्शनशास्त्रं तदार्षेयतया स्मृतिशास्त्रमुपपद्यते। तस्य च स्मृतिशास्त्रस्य श्रुतिमूलकत्वे प्रामाण्यमिष्यते न स्वातन्त्र्येण॥ अथेदं ब्रह्ममीमांसाशास्त्रं गीताशास्त्रं चेत्युभयं विज्ञानशास्त्रं न तु दर्शनशास्त्रं "जन्माद्यस्य यतः, शास्त्रयोनित्वात्" इति सूत्रद्वयस्वारस्येन आत्मनिरुक्तिशास्त्रनिरुक्तिभेदभिन्नैतत्प्रकरणद्वयविभक्तस्यैतस्य मीमांसाशास्त्रस्यात्मनिरुक्तिविभागापेक्षया कथंचिद् दर्शनशास्त्रत्वोपपत्तावपि शास्त्रनिरुक्तिविभागापेक्षत्वे दर्शनशास्त्रत्वाभ्युपगमानौचित्यात्॥ दर्शनशास्त्रस्य शास्त्रनिरूपकत्वाविवक्षणात्॥ एवमेव वेदवेदान्तदर्शनशास्त्रेभ्यो मीमांसाशास्त्राच्चोर्ध्वमुपदिश्यमानमिदं गीताशास्त्रं दर्शनानां मूर्द्धन्यमपि विज्ञानशास्त्रमेवाध्यवसीयते न तु दर्शनशास्त्रम्। सर्वदर्शनन्यूनतापूरणार्थमेवैतस्य भिन्नप्रस्थानेन प्रादुर्भूतत्वात्॥

यद्यपि पञ्चाप्येतान्यात्मशास्त्राणि विश्वस्यात्मनः स्वरूपनिरूपणायैव प्रवृत्तानीति सत्यम्। तथापीमे वेदा उपनिषदश्च विशुद्धमेवात्मनः स्वरूपं प्रतिज्ञामात्रेणोपदिशन्ति न त्वात्मनः स्वरूपनिरूपणे युक्तीः परिदर्शयितुमपेक्षन्ते। अत एव नात्मनो विज्ञानोपयोगिनोऽनुबन्धान् प्रदर्शयन्ति। इदं तु मीमांसाशास्त्रं विज्ञानेन प्रवर्तमानमात्मनः स्वरूपं परीक्षापूर्वकं यथावदुपपादयितुमात्मानुबन्धानपि कांश्चित् प्रतिपादयतीति वक्ष्यते। तस्मादस्ति श्रुतिशास्त्राद्दर्शनशास्त्राच्चैतस्मिन् मीमांसाशास्त्रे विशेषः।

इत्थं चैतस्य मीमांसाशास्त्रस्य, गीताशास्त्रस्य च विज्ञानशास्त्रत्वाद्दर्शनशास्त्रापेक्षया विशिष्टं प्रामाण्यमभ्युपेयते—परीक्षार्थत्वात् सत्यसिद्धान्तभूतासंदिग्धार्थविषयकत्वात्। दर्शनशास्त्रं तु परीक्षायै समुपयुक्तं महर्षीणां प्राथमिकं पदार्थदर्शनम्। दर्शनविज्ञानचारिक्याणां शास्त्रप्रतिपाद्यविषयाणां मध्ये दर्शनस्य प्राथमिकप्रवृत्तिसिद्धावग्रहलक्षणज्ञानविषयार्थप्रतिपादकतया परीक्षासापेक्षत्वात्। स एष दर्शनशास्त्रापेक्षया मीमांसाशास्त्रे विशेषः।

अपि च दर्शनैर्दर्शितानां सिद्धान्तानां परस्परविप्रतिपत्तौ तेषां समन्वयेन सामञ्जस्य करणाय मीमांसोपयुज्यते। तस्मादिदं मीमांसाशास्त्रं दर्शनाद्युक्तार्थपरीक्षकतया तदुत्तरतन्त्रमेवाध्यवसेयमिति युक्तम्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शनशास्त्रमीमांसाशास्त्रयोः प्रतिपत्तिवैलक्षण्यान्मीमांसाशास्त्रस्य विज्ञानशास्त्रत्वम् ।

अथेदमत्रापरं बोध्यम् । नैतस्य मीमांसाशास्त्रस्य वेदोपनिषद्दर्शनशास्त्रेभ्यो गतार्थत्वमाक्षेप्यम् । मीमांसाप्रकरणस्यैतस्य विज्ञानशास्त्रतया श्रुतिस्मृतिशास्त्रापेक्षया वैधर्म्याद् भिन्नप्रस्थानेन प्रवर्तमानत्वात् ।

केचित्तु अद्यतना मीमांसाशास्त्रस्यैतस्य वेदान्तशास्त्रत्वमाचक्षते । अन्ये पुनः केचिदस्य दर्शनशास्त्रेष्वेवान्तर्भावमिच्छन्ति । तदुभयमज्ञानात् । उपनिषत्सु वेदान्तशब्दस्य प्रतिपन्नतयैतस्मिन् मीमांसाशास्त्रे वेदान्तशब्दप्रयोगस्यानुचितत्वात् । अत्र मीमांसाशास्त्रे वेदोपनिषद्दर्शनशास्त्राणां मीमांसाविधानेन वेदवेदान्तदर्शनमीमांसात्वे सिद्धेऽपि दर्शनशास्त्रत्वानुपपत्तेश्च ।

अपि च—एतयोरुभयोर्दर्शनशास्त्रविज्ञानशास्त्रयोः प्रतिपाद्यविषयाणां कथंचिद् भेदोऽनुभूयते । तथा हि—दार्शनिकनये तावदीश्वरजीवाभ्यां जगतोऽतिरिक्तत्वं स्मर्य्यते । वैज्ञानिकनये तु जगतस्ताभ्यामनतिरिक्तत्वं प्रतिज्ञायते । दृश्यते हि—ईश्वरः जीवः जगत्—इत्येवं त्रिकाण्डत्वं प्रमेयस्याभिमन्यमानानामभीषां दार्शनिकविवेचकानामीश्वरपरमत्वप्रतिपत्तिसिद्धान्तः । अथ—जीवः ईश्वरः परब्रह्म इत्येवं तु त्रिकाण्डत्वं प्रमेयस्य समीक्षमाणानामस्माकं वैज्ञानिकविवेचकानामीश्वरमध्यमत्वप्रतिपत्तिसिद्धान्तः । निर्धर्म्मकत्वसर्वधर्म्मोपपन्नत्वाभ्यामात्मद्वैविध्ये स्थिते सर्वधर्म्मोपपन्नस्याल्पमात्रत्वमहामात्रत्वाभ्यां जीवेश्वरभेदात् पुनर्द्वैविध्ये प्रमेयत्रिकाण्डताया विशिष्योपपन्नत्वात् । असंज्ञत्वान्तःसंज्ञत्वससंज्ञत्वरूपैरात्मनस्त्रैविध्योपपत्त्या जडजगतां जीवेष्वन्तर्भावसंभवाच्च ॥

अथान्यथा चेदं प्रतिपत्तव्यम् । ईश्वरात्मप्रकृतिजातस्य बाह्यजगतस्तावदीश्वरे तथा जीवात्मप्रकृतिजातस्यान्तर्जगतो जीवेष्वन्तर्भावः संपद्यते । "प्रजापतिरात्मन्येव प्रजापतिमधत्तेति" श्रुतिसिद्धान्तात् । तथा च नेदं जगज्जीवेश्वराभ्यां व्यतिरिच्यते । अथैष परपुरुषस्त्वव्ययस्त्रेधा व्यवतिष्ठते—विश्वातीतः—विश्वात्मा—विश्वं चेति । तत्र चेतनत्वाचेतनत्वाभ्यां जीवजगद्रूपाभ्यां विभक्तमिदं सृष्टं विश्वं तावदन्यद्रूपम् । "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति" श्रुतिसिद्धान्तात् सृष्टप्रविष्टरूपो विश्वात्मा वयमीश्वरोऽन्यद्रूपम् । ताभ्यामतिरिच्यते विश्वातीतं तृतीयं रूपम् । तेनेदमव्ययपरमत्वं वैज्ञानिकः पन्थाः । तथा चेत्थं दर्शनशास्त्रविज्ञानशास्त्रयोः प्रतिपत्तिवैलक्षण्ये

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धे सत्येतस्य खलु मीमांसाशास्त्रस्य विज्ञानशास्त्रत्वाद्दर्शनशास्त्रत्वं नास्तीति सिद्धम् ॥

५—विषयभेदाद्गीताशास्त्रस्यापि विज्ञानशास्त्रत्वम् ।

अथैवमेव गीतोपनिषदोऽपि दर्शनशास्त्रापेक्षया सिद्धान्तप्रतिपत्तिभेददर्शनाद् विज्ञानशास्त्रत्वमेवावगम्यते । तथा हि —

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ॥ ८ । १८ ।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ ८ । २० ।
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १५ । १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १५ । १७ ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ॥ ९ । ७ ॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ८ । २१ ॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ ७ । २४ ॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ ८ । २२ ॥
न च मां तानि कर्म्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्म्मसु ॥ ९ ॥ ९ ॥
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ ९ । १० ॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ४ । ६ ॥

इत्येवमीश्वरशरीरे जीवशरीरे वाऽधितिष्ठतः परपुरुषस्य निर्धर्म्मकस्याव्ययस्य प्रकृतिद्वारा जगदुद्भावयितुरीश्वरजीवाभ्यां सर्वधर्म्मोपपन्नाभ्यां विभिन्नं रूपमुच्यते गीतायाम् । आत्माऽयमव्ययः । आत्मन्विनौ त्वेतावीश्वरजीवौ भवतः । तस्मादयमव्ययपरमो गीतायां वैज्ञानिकः पन्था—इत्यस्ति दर्शनशास्त्रसिद्धान्तेभ्यो गीता-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्तस्य भेदः । तेनैतस्य गीताशास्त्रस्यापि विज्ञानशास्त्रत्वप्रतिपत्त्या दर्शनशास्त्रत्वं नास्तीति सिद्धम् ॥

६—श्रुतिदर्शनविज्ञानशास्त्राणामात्मसाक्षात्कारोपायत्वम् ।

अपि च—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"। इति महतामादेशः । तत्र द्रष्टव्यः साक्षात्कर्तव्यः । तस्य च साक्षात्कारस्य—श्रवणं मननं निदिध्यासनं चेति त्रीणि कर्म्माण्युपायभूतान्युक्तानि । तेषु वेदवेदान्त-शास्त्रेभ्योऽयमात्मा गुरूपदेशद्वारा श्रूयते । दर्शनेभ्यस्तूपपत्तिभिरन्यश्रुतस्यार्थस्य मननं क्रियते । अथ विज्ञानशास्त्रादस्यात्मनो निदिध्यासनं संपद्यते । तदित्थ-मेतान्यात्मशास्त्राण्यात्मज्ञानायोपयुज्यन्ते ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—वेदतत्त्वनिरुक्तः

१—आत्मवदेवात्ममहिम्नो वेदस्य वाक्प्राणमनोमयत्वम् ।

मनःप्राणगर्भितायाः सत्याया वाचो विवर्त्ता हीमे वेदा आत्मनो महिमानो भवन्ति । तत्रेदं तावदध्यवसेयम्—सर्वं खल्विदं ब्रह्म । स प्रजापतिरस्य विश्वस्य । त्रेधा चैष विविच्यते—ज्ञानमयः, कर्म्ममयः, अर्थमयश्चेति । आनन्दो विज्ञानं मन इति त्रितयं ज्ञानतन्त्रम् । तत्प्रधानः पुरुषश्चिदात्मा । तस्य महिमा वेदो मनोमयः । अथ मनः प्राणो वागिति त्रितयं कर्म्मतन्त्रम् । तत्प्रधानः पुरुषः कर्म्मात्मा । तस्य महिमा वेदः प्राणमयः । अथ वागापोऽग्निरिति त्रितयमर्थतन्त्रम् । तत्प्रधानः पुरुषो भूतात्मा । तस्य महिमा वेदो वाङ्मयः । अस्ति चायमात्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः । तस्मादेवास्य महिमा वेदोऽप्युपपद्यते वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः । सवेदोऽयं मनसा विज्ञानं जनयति, प्राणेन यज्ञं प्रवर्त्तयति, वाचा सर्वमाकाशप्रदेशं परितोऽभिव्याप्नोति । प्रजापतिश्चायं सूर्य्यो विश्वस्यात्मा तमेतमाकाशप्रदेशं व्याप्नुवानो वेदमयः संपद्यते । अत एवाऽयं मनोमयः प्राणमयो वाङ्मयः प्रतपतीति कृत्वा—"त्रयी वा एष विद्या तपतीति" श्रूयते । स खलु प्रजापतिः वेदादेवैतां सर्वां सृष्टिं सृजतीति कृत्वा "वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे": इत्याहुः । तेनैतद् विश्वं मनोमयं प्राणमयं वाङ्मयं चोपपद्यते । वेदमय एवायमीश्वरो विज्ञायते । तेनैतद्वेदान्न व्यतिरिक्तं किंचिदस्तीति विद्यात् ।

२—वेदमयेश्वरस्याकाशत्रयमधिष्ठानम् ।

अथेदमत्रापरं बोध्यम् । अर्थयोनिर्वागाकाशः । स त्रिविधः—परमाकाशः—पुराणाकाशः—भूताकाश इति । खं ब्रह्मेत्यसीमो ब्रह्माकाशः परमः । परमेश्वराधिष्ठितपरमाकाशेऽनन्तानि विश्वानि ॥ १ ॥ अथ "शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमिति" श्रुतिसिद्धः शुनासीरीयादिषु प्रतीतः शुनाभिधान इन्द्राकाशः पुराणः । एतमेव च शुनं नामेन्द्राकाशं वर्तमानयुगे केचिद् ईश्वरनाम्ना व्यपदिशन्ति । एष एवामृतदेवतायोनिः पुराणाकाशः । सहस्रबल्शेनाश्वत्थेनाधिष्ठितोऽयं महेश्वरस्तत्राकाशेऽभिव्याप्नोति ॥ २ ॥ अथ शब्दगुणकः पुनरन्यः पञ्चभूतेष्वाद्यो भूताकाशः । सोऽयं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योनिर्मर्त्यानां भूतानाम् । तत्रैतस्मिन् भूताकाशे वागापोऽग्निशुक्रप्रकृतिकोऽयमाधिकारिकस्त्र्यक्षरपुरुषोऽव्ययपुरुष ईश्वरोऽधितिष्ठति । त इमे यथाध्यात्मं शरीराकाशहृदयाकाशदहराकाशाः शान्तात्मान्तरात्मभूतात्मभिरधिष्ठिता अन्तरान्तरीकृता विज्ञायन्ते तथेहाधिदैवतममी परमाकाशभूताकाशा अन्तरान्तरीकृताः प्रतिपत्तव्याः ॥

अविनाभूताः परस्परेणामी आकाशाश्च वेदाश्च । नान्तरेणाकाशं वेदा उत्पद्यन्ते । आकाशविशेषाच्च वेदा विशिष्यन्ते । तथा हि—परमे व्योम्नि ब्रह्मणस्तावदात्मनो महिमा कश्चिदनन्तो वेदः ॥ अथैतस्मिन्निन्द्राकाश इन्द्रस्यात्मनो महिमा दिव्यवेदः । सोऽयमपौरुषेयोऽमृतत्वात् देवेभ्यः प्रथमत्वाच्च । सूर्य्यादूर्ध्वं च तस्याभिव्याप्तिः ॥ अथैतस्मिन् भूताकाशे चित्यस्याग्नेरात्मनो महिमा गायत्रीमातृको वेदः । स पौरुषेयः । सूर्य्यादर्वाचीनस्य मृत्युनाप्तत्वाख्यानात् । मृत्युनाप्तस्य पुनराद्यन्तशालितया पौरुषेयत्वोपपत्तेः । अथैषां त्रिविधानां वैज्ञानिकानामात्मवेदानामीश्वररूपविशेषाणामुपपादकः शब्दग्रन्थविशेषः शब्दब्रह्ममयं वेदशास्त्रम् । तदुक्तम्—

"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति" ॥ इति ॥

तदित्थमेष शाब्दो ग्रन्थविशेषो भवत्यात्मशास्त्रम् । स खलु अनन्तवेददिव्यवेदगायत्रीमातृकवेदैतद्वैज्ञानिकवेदत्रयापेक्षया चतुर्थो वेद उपपद्यते । वैज्ञानिकवेदः शाब्दवेद इति द्विविधो वायं वेदः प्रतिपत्तव्यः ॥ वाङ्मयं प्राणमयं मनोमयं चेदमुभयविधं ब्रह्म चिदात्मनिरूपणं विद्यात् । सोमसहकृतत्रैलोक्यव्यापिविराडग्निरयमात्मा ब्रह्म । गतिस्थितिस्वभावौ बाह्याकाशौ सयुजौ यजुःपुरुषौ सोऽग्निः । चित्या चैष सर्वां सृष्टिं प्रजनयति तस्मादेष चिदात्मा । तस्योपपादका हीमे शास्त्रवेदवेदान्ता उपनिषदो दर्शनस्मृतयश्चेति बोध्यम् ॥

३—वैज्ञानिकः शाब्दिक इति द्विविधो वेद आत्मनो महिमा ।

वाङ्मयः प्राणमयो मनोमय एष आत्मा । तत्रेयं वाग् द्विविधा—शब्दब्रह्मरूपा अर्थब्रह्मरूपा च । अग्निरर्थः, वाचो विवर्तोऽयमात्मनोऽक्षितिर्महिमा वेदः । स द्विविधः—शाब्दिकवाग्विवर्तः शब्दमयः । आग्नेयवाग्विवर्तो विज्ञानमयः । शाब्दिकवेदः शास्त्रम् । आग्नेयवेदो विज्ञानम् । शास्त्रवेदः पौरुषेयः । विज्ञानवेदस्त्वपौरुषेयः । विज्ञानमीश्वररूपं वेदः । तद्बोधकं शास्त्रमन्यः शब्दग्रन्थो वेदः । शब्दग्रन्थो वेदशरीरं विज्ञानविभागो वेदस्यात्मा । स एक एवायं वेदो नामार्थः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरीरेणात्मना च द्वेधाभिनीयते नित्यानित्याभ्यामात्मशरीराभ्यां मनुष्यादिप्राणिवत्। वृक्षवदस्य च वेदस्य भिन्नात्मनो भेदेन शाखाविभागः प्रकल्पते। सोऽयमात्मशरीरयोस्तयोरुभयोः साम्येन शाखाविभागः प्रवर्तते। तत्र शास्त्रवेदशाखाविभागाधारभूतो वैज्ञानिकवेदशाखाविभागः प्रदर्श्यते॥

४—विश्वविज्ञानं वेदशास्त्रम्।

विश्वविज्ञानं वेदः। अग्नीषोमात्मकं विश्वम्। अग्निसोमयोर्विज्ञानमेवैतद्विश्वविज्ञानम्। विश्वारम्भकाग्निसोमलक्षणब्रह्मविषयकदिव्यविज्ञानौपयिकं शास्त्रब्रह्म। परोक्षार्थद्रष्टृषु महर्षिषु चेदं विज्ञानौपयिकं ब्रह्म स्वयं प्रादुरभूत्। स वेदः। उक्तं चाभियुक्तैः—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा॥
क्षीणायुषः क्षीणसत्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः। (मनुः)
वेदान् महर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाऽच्युतनोदिताः॥ (भागवते)
अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्।
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः॥ (भागवते)
आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते॥
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते॥ (भर्तृहरिः)

५—अग्नेः सोमस्य च विज्ञानं वेदः।

ज्ञानं च कर्म्म च अर्थश्च इत्येतानि त्रीण्यात्मनो रूपाणि। तान्येवैतस्य विश्वस्य तंत्राणि। तेष्वर्थतन्त्रस्योक्थं त्रेधा—वाग् आपः अग्निरिति। एषां विज्ञानं वेदः।

६—अग्निवेदः।

अग्नीषोमात्मकं विश्वम्। प्राणः, वाग्, अन्नादः,—इति त्रयोऽग्नयः। आपः अन्नमिति द्वौ सोमौ। आप इति प्राणः श्रोत्रं च। अन्नमिति मनः। मनःप्राणश्रोत्राणि सोमस्कम्भः। अग्निगर्भितः सोमो विश्वरूपम्। तत्र मनोमयप्राणवाग्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गर्भितानामपां विज्ञानं त्रयीवेदः। अन्नादगर्भितानामपां विज्ञानमथर्ववेदः। तत्र प्राणाग्निर्द्वेधा मुख्योऽनूचीनश्च। एकोऽमृताग्निस्त्रैलोक्यव्यापी प्रजापतिर्मुख्यः। त्रयो वेदाः सहैनं विदन्ति। अथानूचीनास्त्रयो लोकत्रयोपाधिभेदाद् भिन्नास्तत्तल्लोकाध्यक्षाः। तेषां पृथग्विद्या इमे त्रयो वेदाः। अग्नेर्ऋग्वेदः, वायोर्यजुर्वेदः। आदित्यस्य सामवेद इति। सोऽयमग्नित्रयनिरूपणं त्रयीवेदः।

७—सोमवेदः।

अथ भृग्वङ्गिरसौ सोमः प्रजापतिः। तस्यैतस्य चतुर्थलोकाधिष्ठातुः सोमस्य निरूपणं शास्त्रं भार्गवश्चाङ्गिरसश्चेति द्वेधा विभक्तोऽयमेकोऽथर्ववेदः। द्वयोरपि सोमयोरेको लोक इत्ययमेकोऽथर्ववेदः। लोकाश्चत्वार इत्यतोऽमी वेदा अपि चत्वारः। अग्निसोमभेदात् प्रजापतेर्द्वैविध्यमस्तीति कृत्वा तन्निरूपणस्यैतस्य प्राजापत्यविज्ञानशास्त्रस्य वेदस्य द्वैविध्यमुपपद्यते—अग्नेस्त्रयीवेदः सोमस्याथर्ववेद इति। अथर्ववेदो ब्रह्मवेद इति नार्थान्तरम्। चत्वारो हीमे वेदा इदं विश्वं विज्ञायते। तथा च श्रूयते—

"ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं ह शश्वत् सर्वं ह्येदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥"

८—देवतारहस्यविज्ञानौदयिकत्वे शब्दश्च विद्या च मन्त्रः।

अग्निः सर्वा देवताः। सोमः सर्वा देवताः। देवतानिगूढरहस्यविज्ञानोदयहेतुः शब्दो विद्या च मन्त्रः। अग्निदेवतारहस्यस्य विज्ञानं वचनं चाङ्गिरोमन्त्रः। सोमदेवतारहस्यस्य विज्ञानं वचनं चाऽथर्वमन्त्रः। तत्रापि शाब्दिके वेदे वचनात्मको मन्त्रः। अथ वैज्ञानिके वेदे विद्यात्मको मन्त्र इति भेदः। तयोः शब्दात्मको मन्त्रः प्रसिद्धो लोके। विज्ञानात्मकस्तु मन्त्रो मन्त्रसंहितायां श्रूयते—

"रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृपा ऋतावा।" ३। ४। ५३।

इत्यादिषु। सायणस्त्वत्र मन्त्रैः स्तुतिवाक्यैराहूत इति शब्दपरमेवार्थं चक्रे। तत्र अग्निस्त्रैविध्यादग्निविज्ञानात्मका मन्त्रास्त्रिविधाः—ऋचो यजूंषि सामानीति। सेयं त्रयीविद्या अग्निवेदः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९—अग्निदेवतारहस्यभेदाः षड्विधाः ।

	मनःप्राणगर्भितानां वाचां विवर्तास्त्रयीवेदविषयाः षड्भावाः—		
१—	महोक्थमूर्तिश्च ।		
२—	महोक्थमूर्तिच्छन्दश्च—इति द्वे ऋग्रूपे वाक्प्रधाने ।		
३—	अध्यूढप्राणश्च ।	६	आग्नेयाः
४—	वितानच्छन्दश्च—इति द्वे सामरूपे प्राणप्रधाने ।		
५—	गतिबलो वायुः । स इन्द्रो विष्णुर्वा अक्षरः ।		
६—	स्थितिबल आकाशः । स ब्रह्माक्षरः । इति द्वे यजूरूपे मनःप्रधाने ।		
	इति षड्ब्रह्माणि मनःप्राणवाङ्मयानि ।		

१०—सोमदेवतारहस्यभेदाः षड्विधाः ।

	अथाग्निगर्भितानामपां विवर्ता अथर्ववेदविषयाः षड्भावाः—		
१—	आपः (४)		
२—	वायुः = अथर्वा, द्युतानमारुतः, ग्रहः, हंसः— = ६३ (४) (५) (४०) (१४)		
३—	सोमः (१०) इति त्रयो भृगवः सोमप्रधानाः तेजोगुणाः ।	७७	
४—	अग्निः (८)		
५—	वायुः = यमः, घोररुद्रः, मरुतः— = ७७		
६—	आदित्यः (१२) इति त्रयोंऽगिरसः, अग्निप्रधानाः तेजोगुणाः ।	९७	
	इति षड्ब्रह्माणि सोमाग्निमयानि ।	१७४	सौम्याः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११—वैज्ञानिकानामृग्यजुःसाम्नां रूपाणि ।

अथैतेषु यानीमानि पूर्वाणि षडग्निरूपाण्युक्तानि तान्येतानि वैज्ञानिकमन्त्र-रहस्यानि सूर्य्यस्थाने तावन्निदर्श्यन्ते । तथा हि ।

"सा वा एषा वाक् त्रिधा विहिता ऋचो यजूंषि सामानि । मण्डलमेव ऋक् । अर्चिः सामानि । पुरुषो यजूंषि । यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् । ता ऋचः । स ऋचां लोकः । अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि । स साम्नां लोकः । अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निः । तानि यजूंषि । स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति । स एष एव मृत्युः—य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । अथैतदमृतं यदेतदर्चिर्दीप्यते । तस्मान्मृत्युर्न म्रियते अमृते ह्यन्तः । यदेतदर्चिर्दीप्यते—इदं तत् पुष्करपर्णम्" ॥ इति (शत १० । ३ । ४)

चित्याग्निर्मर्त्यः । चितेनिधेयोऽग्निरमृतम् । प्रतिमूर्तिर्हीदं त्रयमित्थमेवाध्यव-सेयम् । तथा हि—सर्वत्रैवैषा स्पृश्या मूर्तिर्महोक्थम् । तस्यायामविस्तारघनतान्योन्य-परिग्रहलक्षणे वागवच्छेदश्छन्दः । अथ महोक्थादुत्थिताः उदृचः पष्ठपर्य्यन्तं परितः संचरन्त्य उत्तरोत्तरं ह्रस्वीभवन्त्यः स्पर्शानुभावायोग्या दृश्या मूर्तय उक्थानि । उक्थमूर्तयस्तासां मध्यवर्तिनी महोक्थमूर्तिश्च वाचा प्राणगर्भितयोपपद्यन्ते । अथ उक्थमूर्तीनां परितः साम्ये वितानं वितानच्छन्दः । वितानं गानमित्ये-कोऽर्थः । गीतिषु सामाख्या ।

अथ ऋगिति वाचो रूपम् । ऋचमध्यूढं साम । तत् प्राणरूपम् । इयमृक् । तत्राध्यूढोऽग्निः साम । अन्तरिक्षमृक् । तत्राध्यूढो वायुः साम । द्यौर्ऋक् । तत्राध्यूढो आदित्यः साम । नक्षत्राण्यृक् । तत्राध्यूढश्चन्द्रः साम । श्रोत्रमृक् । तत्राध्यूढं मनः साम ॥

अथ पुरुषो यजुः । तत्रार्वागगतिर्विष्णुरक्षरः । पराग्गतिरिन्द्रोऽक्षरः । इन्द्राविष्णू यू कं ब्रह्म । तदिदं यत् । स्थितिलक्षणो ब्रह्मा प्रतिष्ठा । स आकाशः खं ब्रह्म । तदिदं जूः । तथा चेदं यच्च जूश्चेत्युभयं समुच्चितं यज्जूः । तदिदं पारोक्ष्येणोक्तं यजुः । गति-स्थितिलक्षणं ब्रह्म । तदुक्तम् । अयं वाव यजुर्योऽयं पवते । एष हि यन्नेवेदं सर्वं जनयति । एतं यन्तमिदमनुप्रजायते । तस्माद्वायुरेव यजुः । अयमेवाकाशो जूः यदिदमन्तरिक्षम् । एतं ह्याकाशमनुजवते । तदेतद्यजुः—वायुश्चान्तरिक्षं च । यच्च जूश्च तस्माद् यजुः । तदेतद् यजुः ऋक्सामयोः प्रतिष्ठितमृक्सामे वहतः । इति

तस्यैते ऋक्सामे छन्दः । नान्तरेण छन्दसा कश्चित् पुरुष उपपद्यते । अथ छन्दो-ऽपीदं पुरुषमाश्रित्यैवोपपद्यते । अत एव श्रूयते । आत्मा ह्यग्निः तदेनमेते उभे रसो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूत्वाऽपीतः। ऋक् च साम च तदुभे। ऋक्सामे यजुरपीत इति। तथा चैताभ्यामृक्सामाभ्यां यजुषा च विनाकृतं न किञ्चिद्भूतमुपपद्यते। अत एव श्रूयते—

"अथ सर्वाणि पर्य्यैक्षत। स त्रय्यामेव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत्"।

इति (शत १०।३।१)

स एष मनःप्राणवाङ्मयोऽयं वेदपदार्थे मनःप्राणवाङ्मयस्यात्मनो महिमेत्याख्यायते। मूर्तिर्ऋक् पुष्करपर्णं साम। अथाग्निर्यजुरिति वैज्ञानिकवेदरूपाणि बोध्यानि।

वैज्ञानिकानां भृग्वङ्गिरसां रूपाणि।

अथ स्नेहोऽपां रूपम्। तेजोऽग्निरूपम्। स्नेहतेजसी सोमः। सोमद्वयविद्यात्मका मन्त्रा द्विविधाः—भृगवश्चाङ्गिरसश्चेति।

आपो वायुः सोम इति त्रिविधाः स्नेहप्रधाना भृगवः। अत्र वायुश्चतुर्विधोऽथर्वा।

ऋक् साम
वाक् प्राणः
चित्याग्निः प्राणाग्निः
पृष्ठम्
हृत् पृष्ठम् हृत्
सोमोऽक्षरः सोमप्राण-

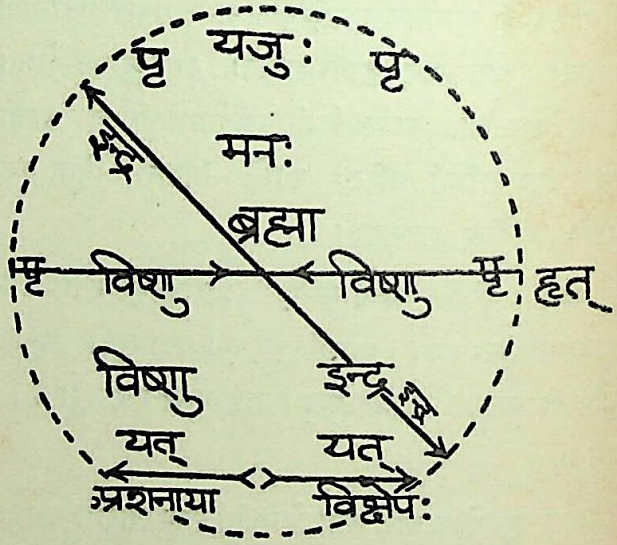

हृदयस्थाः त्रयः प्राणाः॥ ब्रह्मा इन्द्राविष्णू

१—मण्डलव्यापी प्रतिष्ठाप्राणः— जूराकाशः। ब्रह्मा अक्षरः।

२—मण्डले पृष्ठात् हृदयान्तं संचरन्नशनायुर्विष्णुः। अन्तरात्मा अक्षरः।

३—मण्डले हृदयात् पृष्ठान्तं संचरन् विक्षेपण इन्द्रः अक्षरः।

हृदयपृष्ठस्थास्त्रयः प्राणाः॥ अग्निरग्निः—सोमः

१—हृदये चित्याग्निः पृष्ठान्तमूर्तिं जनयति। एषोऽग्निर्वाक् ह्रस्वीभवन्तीमृचं जनयति।

२—हृदये प्राणाग्निः पृष्ठान्तं वितानं जनयति एषोऽग्निः प्राण उरु भवन् सामानि जनयति।

३— पृष्ठे सोमो हृदयान्तं सचित्राग्नौ हूयमानो मूर्तिं च साहस्रं च जनयति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चविधो द्युतानमारुतः । चत्वारिंशद्विधो ग्रहः । चतुर्दशविधो हंस इति चतुर्धा । त एते त्रिषष्टिः ॥ ६३ ॥ अथापश्चतुर्धा सोमो दशधा इत्यन्ये । अथाग्निर्वायुरादित्य इति त्रिविधास्तेजःप्रधाना अङ्गिरसः । अत्र वायुश्चतुर्दशविधो यमः । त्रिविधो घोररुद्रः । एकादशविधः शिवरुद्रः । ऊनपञ्चाशद्विधो मरुतश्चेति चतुर्धा । त एते सप्तसप्ततिः । अथाग्निरष्टधा । आदित्यो द्वादशधा इत्यन्ये । तानीमानि षड्ब्रह्माणि सोमरूपाणि । अन्नादाग्निगर्भितानामपां विवर्त्ता हीमे षड्भावा अथर्ववेदविषयाः । तानीमानि द्वादशविधानि देवतारहस्यानि स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थं पुनः प्रदर्श्यन्ते । यथा*—

विज्ञानवेदस्यापौरुषेयत्वं शब्दवेदस्य पौरुषेयत्वम्

अग्नौ आहूयमानः सोमो यज्ञः । सहयज्ञाः प्रजाः सृज्यन्ते । तेन खलु मूर्तानि चामूर्तानि च सर्वाण्येवैतानि विश्वरूपाणि यज्ञप्रजापतयः । द्वादश ब्रह्मलक्षणानि । सोममयो वेद एवैतस्य प्रजापतेरीश्वरस्यात्मनो रूपं विज्ञायते । स एष वेदोऽपौरुषेयः प्रतिपत्तव्यः ईश्वरप्रजापतिरूपत्वात् । यस्तु पुनरपौरुषेयवेदप्रत्ययजनकः शब्दग्रन्थः सोऽपि शब्दार्थयोस्तादात्म्यसिद्धान्ताद् वेद एवोच्यते व्याकरणज्यौतिषादिग्रन्थानां व्याकरणज्यौतिषादिशब्देन व्यवहारवत् । तत्रैष शाब्दो वेदः पौरुषेयः प्रतिपत्तव्यः । "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेद" इति स्मृतिसिद्धान्तात् । एवमपि योऽयं शाब्दप्रबन्धप्रत्यायितो विज्ञानार्थप्रबन्धः स एष सर्वोपि वेदभागोऽपौरुषेय एव । आग्नेयानामृग्यजुःसाम्नां त्रयाणां सौम्यस्य च भृग्वङ्गिरोलक्षणस्याथर्वणः स्वरूपसंदर्भरचनाया मनुष्यशक्तिबहिर्भूतत्वात् । ईश्वरस्य पुरुषतया तत्कर्तृकत्वात्तु पौरुषेयत्वं विज्ञानवेदस्यापि न प्रत्याख्यायते । अथ विज्ञानवेदस्येश्वरशरीरत्वाभ्युपपत्तौ पुनरेतस्य पौरुषेयत्वं नोपपद्यते—इति निपुणं भाव्यम् ॥

मन्त्रब्राह्मणभेदाद् वेदप्रकरणद्वैविध्यम्

तदिदमुभयविधं वेदशास्त्रं पुनर्द्विविधम् । ब्रह्म च ब्राह्मणं चेति । ऋग्यजुःसामानीति त्रिधा भिन्ना मन्त्रा अथर्वाणश्च मन्त्रा ब्रह्म । अथैषां मन्त्रविधानां ब्रह्मणां तात्पर्य्यं, यज्ञेषु विनियोगाः, यज्ञानां च सर्वेषामावृतः,—स्वातन्त्र्येण यत्रोपपद्यन्ते तद् ब्राह्मणम् ।

ब्राह्मणभागे पर्वत्रयम्

तस्यैतस्य ब्राह्मणग्रन्थस्य त्रीणि पर्वाणि—विधिकाण्डम् आरण्यकाण्डम्

---

* अत्र पाठस्त्रुटितः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपनिषत्काण्डं चेति । यज्ञविधिः कर्मकाण्डम् । आरण्यकमुपासनाकाण्डम् । उपनिषज्ज्ञानकाण्डम् । एतावदेव वेदशास्त्रं ब्रह्म च ब्राह्मणं चेति ॥

इति वेदशास्त्रप्रकरणविभागः पूर्णः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ वेदसंस्थाभेदाध्यायिनामौपाधिकसंज्ञाभेदाः

एकस्या एवैतस्या वेदविद्यायाः पञ्चसंस्था इष्यन्ते—मन्त्रविद्या १, अक्षरविद्या २, दृष्टिविद्या ३, यज्ञविद्या ४, सिद्धिविद्या ५ चेति। ऋग्यजुःसाम्नां वैज्ञानिकानां स्वरूपविज्ञानं मन्त्रविद्या। यथा खलु नारदः सनत्कुमारं प्राह—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं, पित्र्यं राशिं, दैवं निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवयजनविद्याम्। एतद्भगवोऽध्येमि। सोऽहं मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्। तरति शोकमात्मविदिति। सोऽहं भगवः शोचामि। तं मां भवान् शोकस्य पारं तारयतु इति। अपि च भगवानङ्गिराः शौनकायोवाच—द्वे विद्ये वेदितव्ये—परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभु सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः। यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् संभवतीह विश्वमिति। तदिदं पञ्चाक्षरविज्ञानमात्मविद्या। तत्रैष मन्त्रविद् ब्राह्मणो भवति॥ १॥ अथायमात्मज्ञः परविद्यो विद्वान् विप्रः॥ २॥ अथैतेषामप्रत्यक्षाणां निगूढधर्माणां योगजदृष्ट्या साक्षात्करणं दृष्टिविद्या। स एष साक्षात्कृतधर्म्मा द्रष्टा ऋषिरित्याख्यायते। तथा हि निरुक्ते यास्क आह—साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्म्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। इति। ऋषिर्दर्शनादिति च॥ ३॥ अथार्षेयदृष्ट्या संपन्नोऽतीन्द्रियार्थविज्ञानवशात् ताँस्तानप्रत्यक्षधर्मानुभूय यो यजते यज्ञविधानेन च स तत्तद्देवतागृहीतनामा देवो भवति सूर्यो वा इन्द्रो वा धर्म्मो वा वायुर्वा अथान्यो वा तस्य मानुषस्यापि सतो द्वितीय आत्मा दैवो भवतीति स देव इत्युच्यते। श्रूयते च—दैवो वा अस्य स आत्मा, मानुषोऽयम्। ४। [६।४।६] [७।३।१७] [९।३।२] अथ य एवं विद्वानेतैः सर्वैर्यज्ञैः सर्वानेव देवानात्मसात्कर्तुं प्रभवति स्म स ब्रह्मा—इत्याख्यायते॥ ५॥ तथा चैतद्वेदविद्याप्रभावेणैष ब्रह्मचारी क्रमेण पञ्चधा संज्ञा लभते—ब्राह्मणः, विप्रः, ऋषिः, देवः, ब्रह्मा चेति॥

इति वेदसंस्थाभेदाध्यायिनामौपाधिकसंज्ञाभेदाः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदशाखाविभागः

अथ विज्ञानवेदस्य शास्त्रवेदस्य च समं शाखाविभागाः ११३१

तस्यैतस्य वेदस्यैकत्रिंशदधिकैकादशशतानि शाखा भवन्ति । ता यथा—

नवधा आथर्वणो वेदः सौम्यवायोः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् सोमसजुषोऽग्नेः। एकशतमध्वर्युशाखाः आग्नेयवायोः । सहस्रवर्तम् सामवेदः आदित्यस्य—इति ॥

अधिदैवतं त्रयाणां तेषामग्नीनां द्वयोः सोमयोश्चैतावत्यः शाखा भवन्तीति कृत्वैव चैतन्निरूपणस्यैतस्य शास्त्रस्यैतावत्यः शाखा भवन्ति । निरूप्यभेदान्निरूपणभेदस्य साम्येनोपपन्नत्वात् । यत्तु गुरुशिष्याध्ययनपरम्परासम्प्रदायभेदाच्छाखाभेद इति केचित्पश्यन्ति तद् वेदशास्त्रानभिज्ञानादज्ञानमूलकमित्युपेक्ष्यम्। सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदि तत् । सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥ उभाजिग्यथुर्नपराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनोः । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम् ॥ इत्यादि मन्त्रेषु प्रयुक्तस्य सहस्रशब्दस्य पदार्थस्वरूपनिरूपणे—किं तत् सहस्रमिति । इमे लोकाः, इमे वेदाः, अथो वागिति ब्रूयादिति श्रुतेः सहस्रप्रमितानां वेदसंज्ञकानां गवां लोकचतुष्टयव्याप्तानां तत्र तत्र लोके तथैव शाखाभेदेन व्यवस्थितत्वमस्तीति विज्ञेयम् । बहुविस्तृतोऽयमर्थो वेदसमीक्षायां विशदं व्याख्यातः किञ्चिदिहापि दिग्दर्शनमात्रेण लक्ष्यते ।

वैदिकशाखाविज्ञानसंक्षेपः

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ऋतं शून्यं, सत्यं पूर्णम् । शून्यस्थानमन्यत्, पूर्णस्थानमन्यत् । आप ऋतम् । अग्निः सत्यम् । आपः सत्यमग्निं गर्भमदधत । गर्भस्थाग्निवशादपां विकासोऽजायत । तत एता आपः षोढा समपद्यन्त विकासात् पूर्वा स्थितिरासामपां पूर्वावस्थारूपं शून्यम् । अथ विकासादद्भ्य एवैतानि जातानि पञ्चरूपाणि सत्यानि । तथा हि—चतुर्दिक्षु दशगभस्तयः प्रथमो विकासः । एकैकस्मिन् गभस्तौ पुनर्दश दश गभस्तयो द्वितीयविकासः । तच्छतम् । तत्राप्येकैकस्मिन् गभस्तौ पुनर्दश दश गभस्तयस्तृतीयो विकासः । तत्सहस्रम् । तथा च सहस्रांशुरयं ज्योतिर्मण्डलस्थो गोभिः कृतमूर्तिरेष सूर्य्यः प्रजापतिः ॥ शरीरस्थप्राणस्य बहिर्धा प्रयोगस्तपः । "एतद्वै तप इत्याहुः—यत् स्वं ददाति" इति श्रुतेः ॥ एतस्माद्धि सूर्य्याद्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बहिर्धा सर्वतो दिक्षु प्रसरन्तः प्राणाः प्राणिषु प्रविशन्तः प्रजानां जीवनहेतवो भवन्ति । तदेवैतदाह—"प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः" इति । तेऽमी वागध्यूढाः प्राणा वाङ्मयीं सूर्य्यबिम्बमूर्तिमग्रतोऽग्रतः संचारयन्ति । प्रत्याकाशबिन्दुस्थास्ता मूर्तयः सह संनिविशन्त्यः प्रचरन्ति । बलसाम्याच्च प्रवर्तमानाः प्राणाः परितो मूर्तिभिः सह संनिविष्टाभिर्वर्त्तुलवृत्तं महाव्रतनामकं जनयन्ति । वर्तुलवृत्तानामुत्तरोत्तरवृद्ध्या तेषु मूर्तिसंनिवेशानुरोधेनाधिकाधिकमूर्तिसंपादनार्थं पूर्वपूर्वमूर्तीनामारम्भणद्रव्याण्युत्तरोत्तरं हीयन्ते । तेन पूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरमूर्तयो ह्रस्वीभवन्तीति प्रत्यक्षं दृश्यते । शरीरतो ह्रस्वीभवन्त्यस्ता मूर्तयः संख्यातो वर्द्धन्ते । तत्र पृथ्वी हृदयादुत्थिताया विकासरेखायाः पृथिव्यन्तःपृष्ठं प्रथमं पूर्णस्थानमेकं नाम । तन्महोक्थमुक्थमूर्तीनामाश्रयभूतं मध्यमं रूपम् । अथैतस्मान्महोक्थस्थानादुत्थितैका मूर्तिर्यत्रोर्ध्वंगता दशमूर्त्तयः संपद्यन्ते तदस्या विकासरेखाया द्वितीयं पूर्णस्थानं दशत्संज्ञम् ॥ पुनरितः स्थानादुत्थितैका मूर्तिर्यत्रोर्ध्वं परितो गता दशमूर्तय संपद्यन्ते तदस्या विकासरेखायास्तृतीयं पूर्णस्थानं शतसंज्ञम् । पुनरेवमितः स्थानादुत्थितैकामूर्तिः परितो यत्रोर्ध्वंगता दशमूर्तयः संभवन्ति तदस्या विकासरेखायाश्चतुर्थं पूर्णस्थानं सहस्रसंज्ञम् । नातः परमुत्थानं विकासक्रियाया उपपद्यते । तस्मात् सहस्रं वै पूर्णमित्याहुः । अत एवायं सूर्य्यः सहस्रांशुरित्युच्यते । तस्यायं परिलेखो यथा—आपो गावः । तासाम्—एकधा—दशधा—शतधा—सहस्रधा विकासः । सहस्रं पूर्णम् ।

१ १० १०-१०
मेदिनीभूपृष्ठान्तमेकधा । त्रिवृत्स्तोमान्तं दशधा । एक विंशस्तोमान्तं विंशतिधा ॥
१०० १०००
त्रयस्त्रिंशस्तोमान्तं शतधा । अष्टाचत्वारिंशस्तोमान्तं सहस्रधा । सहस्रं पूर्णम् । ऋच उक्थमूर्तेः शरीरारम्भकमात्राया न्यूनताकरणाद् ह्रस्वीभूतमूर्तीनां दशगुणाधिकाधिक्यम् । पुनर्मात्रान्यूनतायां दशगुणाधिक्यं मूर्तीनां ह्रस्वतां गतानाम् । पुनर्दशगुणाधिकसंख्यत्वं मूर्तीनाम् । ततः परं मात्रोपसंहाराद् मूर्तिवृद्ध्यभावः । उत्तरोत्तरह्रस्वाकाराणामुत्तरोत्तराधिकसंख्यानां मूर्तीनां परितो मण्डलाश्रितसंनिवेशः साम । साम्नां निधनमुद्गचम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिरश्मि दशदशोत्तरशाखाविभागात् त्रेधा विभक्तसूर्य्यमण्डलप्रतिकृतिचित्रम्।

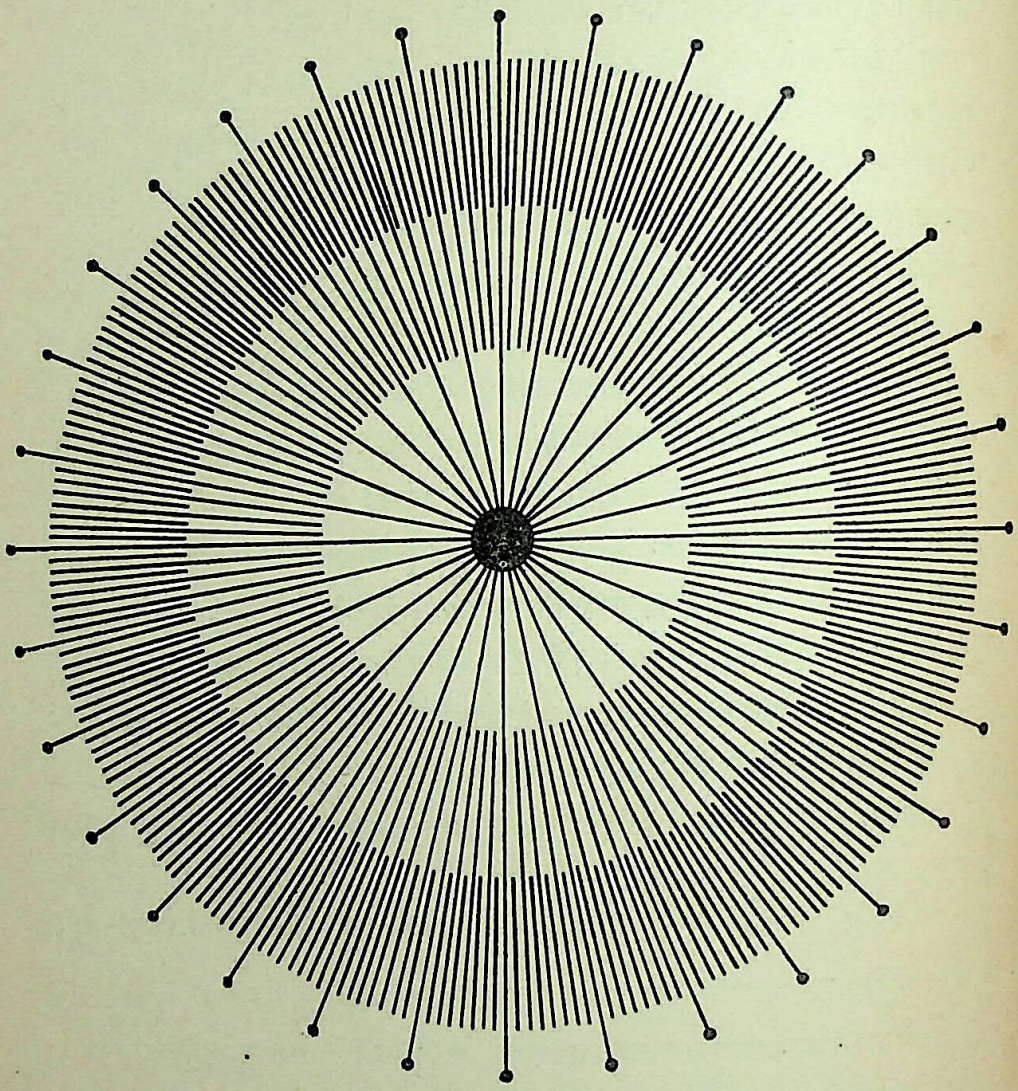

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ मनःप्राणवाङ्मयस्यैतस्य सहस्रांशोः सूर्य्यस्य सोमो वायुराप इत्यन्नानि । तेभ्य एव च सूर्य्ये ज्योतिःक्रियार्थानां शश्वदाविर्भावात् । श्रूयते च—

"महत्तत्सोमो महिषश्चकार अपां यद्गर्भो अवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्य्ये ज्योतिरिन्दुः ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमातनोरुर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ* ॥"

अथैतस्मिन् सूर्य्यप्रकाशमण्डले अग्निः, वायुः, आदित्यः इत्येतानि लोकत्रयविभक्तानि सूर्य्यशरीराङ्गानि । तान्येतानि सत्याग्निगर्भितानामपां विकासरूपाणि ॥ तानि यथा—

	आपः	आपः	आपः	आपः	आपः	अपां पञ्चस्थानानि
	०	१	२	३	४	विकासमात्राः
विकासरूपाणि	आपः १	वायुः २	सोमः ३			इति भृगवः स्नेहमयाः
विकासरूपाणि			अग्निः ३	वायुः ४	आदित्यः ५	इत्यङ्गिरसः तेजोमयाः
विकास स्थानानि	०	१	१०	१००	१०००	गर्भस्थाग्निवशादपां विकासावस्थाश्चतुर्विधाः
विकासक्रमः	विकासाभावः	प्रथमो विकासः	द्वितीयो विकासः	तृतीयो विकासः	चतुर्थो विकासः	

गर्भस्थाग्निवशादपां चतुर्धा विकासाः

अपां विकासात् पूर्वा स्थितिर्विकासस्य शून्यस्थानम् । तद्विकासस्यारम्भस्थानमरूपं रूपम् । अथ विकासजन्यं प्रथमं रूपं वायुः । तत्र विकासस्यैका मात्रा । अथ विकासस्य द्वितीयं रूपं सोमः । तत्र विकासस्य द्वे मात्रे । अथ तृतीये विकासरूपेऽग्नौ तापो नामापूर्वो धर्म उद्यन् अपामङ्गिरस्त्वं भवति । अप्त्वं चैषामङ्गिरसां नापैति । ततोऽपां द्वैभाव्यमजायत । त्रयो भृगवः—त्रयोऽङ्गिरसश्चेति । तत्र यो भृगूणां तृतीयः सोमः यो वाऽयमङ्गिरसां प्रथमोऽग्निः तयोः समाना विकासमात्रा । द्विमात्रः सोमो द्विमात्र एवाग्निः । तस्माद्विकासस्य चत्वार्य्येव स्थानानि निष्कृष्यन्ते । तेषां

* अतः परं कश्चिदंशस्त्रुटित आदर्शपुस्तके ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थानानामेकं च दशकं च शतकं च सहस्रकं चेति संज्ञाः क्रियन्ते । शून्यतः प्रथमोऽयं विकासो नवसंख्याः । तदेकं स्थानम् । तस्य नवमी संख्या काष्ठा ॥ १ ॥ तथास्यैकस्याग्रे पुनः शून्यतो नवधा विकासो दशकम् । तदरूपं विकासस्य द्वितीयं स्थानं द्विस्थानम् । तस्य नवनवतिः काष्ठा ॥ २ ॥ ततः क्रमाद्दशकेऽस्मिन् स्थाने पुनर्नवधा विकासः शतकं रूपः । तद्विकासस्य तृतीयं स्थानं त्रिस्थानम् ॥ ३ ॥ ततः पुनरुत्तरः पूर्वक्रमसिद्धश्चतुर्थो विकासः सहस्रं नाम चतुर्थं स्थानं चतुःस्थानम् । नातः परमपां विकासो वेदायोपयुज्यते । तद्यथा—

चतुःस्थानसंख्यापरिलेखः

प्रथमस्थानम् एकस्थानम्	द्वितीयस्थानम् द्विस्थानम्	तृतीयस्थानम् त्रिस्थानम्	चतुर्थस्थानम् चतुःस्थानम्
००	१०	१००	१०००
०१	११	१०१	१००१
०२	२१	१०२	१००२
०३	३१	१०३	१००३
०४	४१	१०४	१००४
०५	५१	१०५	१००५
०६	६१	१०६	१००६
०७	७१	१०७	१००७
०८	८१	१०८	१००८
०९	९१	१०९	१००९
९	९९	९९९	९९९९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ अवैदिकविकासक्रमकल्पः

एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः ॥
अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात् ॥ १ ॥
जलधिश्चांत्यं मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः ॥
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः ॥ २ ॥ यथा–

१	एकम्	१
२	दशत्	१०
३	शतम्	१००
४	सहस्रम्	१०००
५	अयुतम्	१००००
६	लक्षम्	१०००००
७	प्रयुतम्	१००००००
८	कोटिः	१०००००००
९	अर्बुदम्	१००००००००
१०	शंख	१०००००००००
११	खर्वम्	१००००००००००
१२	निखर्वम्	१०००००००००००
१३	महापद्मम्	१००००००००००००
१४	शंकुः	१०००००००००००००
१५	समुद्रः	१००००००००००००००
१६	अन्त्यम्	१०००००००००००००००
१७	मध्यम्	१००००००००००००००००
१८	परार्द्धम्	१०००००००००००००००००

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मतान्तरेण संख्यास्थानानि

१	एकम्	१
२	दशकम्	१०
३	शतकम्	१००
४	सहस्रम्	१०००
५	अयुतम्	१००००
६	लक्षम्	१०००००
७	प्रयुतम्	१००००००
८	कोटिः	१०००००००
९	शंकुः	१००००००००
१०	अर्बुदः	१०००००००००
११	न्यर्बुदः	१००००००००००
१२	खर्वः	१०००००००००००
१३	निखर्वः	१००००००००००००
१४	समुद्रः	१०००००००००००००
१५	महासमुद्रः	१००००००००००००००
१६	पद्मम्	१०००००००००००००००
१७	महापद्मम्	१००००००००००००००००
१८	अन्त्यम्	१०००००००००००००००००
१९	परार्द्धम्	१००००००००००००००००००

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२१—ग्रामीणसाधारणजनतामतेन संख्यास्थानानि

१	एकाई	१
२	दहाई	१०
३	सैकड़ा	१००
४	हज़ार	१०००
५	दश हज़ार	१००००
६	लाख	१०००००
७	दश लाख	१००००००
८	क्रोड	१०००००००
९	दश क्रोड	१००००००००
१०	अर्ब	१०००००००००
११	दश अर्ब	१००००००००००
१२	खर्ब	१०००००००००००
१३	दश खर्ब	१००००००००००००
१४	नील	१०००००००००००००
१५	दश नील	१००००००००००००००
१६	पद्म	१०००००००००००००००
१७	दश पद्म	०००००००००००००००००
१८	शंख	१००००००००००००००००००
१९	दश शंख	१०००००००००००००००००००

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्येवमष्टादशानामृतब्रह्मणां पिण्डीभावस्य सत्यब्रह्मतया तावत एवाग्नेर्विकासस्य विज्ञानसिद्धत्वेऽपि सहस्रादूर्ध्वानामचिन्त्याथत्वाद् वैदिकविज्ञानपरीक्षासीमाबहिर्भूतत्वमस्तीति वेदे विकासस्थानानि चत्वार्य्येव विवक्ष्यन्ते ॥

पृथिव्यामुत्तराधरयोरग्निसोमयोः पर्य्यायपरिवर्तनचक्रम्

इदं तु बोध्यम् । हृदयैकबिन्दुस्थाने सहस्रमितानामृतमात्राणामपां घनीभावे पिण्डीभावादग्निर्नाम रूपं जायते । तस्य च पिण्डस्य पुनः सहस्रधा विकासे सत्यादस्माद् ऋतभावोदयक्रमादन्ततः सोमो नाम रूपं जायते । तदित्थमेष सोमो हृदयबिन्दौ गतः सन् पिण्डीभूतोऽग्निर्भवति । अथैषोऽग्निर्हृदयात् पृष्ठगतः सन् आपो भूत्वा सोमो भवति । हृदयान्तःस्थोऽग्निर्विकासशीलः परितो बहिरूर्ध्वं याति । पृष्ठतो बहिःस्थः सोमो सर्वतः संकोचशीलोऽन्तरधो याति । अधःस्थितोऽग्निरूर्ध्वस्थं सोममभिगच्छन् शिवः । अथोर्ध्वस्थः सोमोऽयमधःस्थितमग्निमभिगच्छन् शिवशक्तिलक्षणो भावो विज्ञायते । अत एवेयमाद्याशक्तिर्महाकाली महाकालशिवस्य वक्षःस्थितोपास्यते । उभययोगसिद्धस्त्वग्निरेव सोऽर्द्धनारीश्वरः प्रतिज्ञायते । किन्त्वग्नेर्नीरूपतया सोम एवाख्यायते । सोमशब्दाच्च दुर्गायाः शिवशक्त्याः "उमा" इति नामान्तरमुपकल्पयन्ति । उः प्राणः शिवः । तस्येयं मा सौभाग्यलक्ष्मीः "उमा"— इत्यर्थः । उमया सहितश्चायं शिवः सोमः"

उक्तश्चायमर्थो बृहज्जाबालोपनिषदि—अग्नीषोमात्मकं विश्वमिति ।

(१) अग्निराचक्षते रौद्री घोरा या तैजसी तनूः ।
सोमः शक्त्यामृतमयः सोमः शक्तिकरी तनूः ॥ १ ॥
अमृतं यत् प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम् ।
स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसी ॥ २ ॥

(२) द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्य्यात्मा चानलात्मिका ।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका ॥ ३ ॥
वैद्युतादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः ।
तेजो रसविभेदैस्तु वृतमेतच्चराचरम् ॥ ४ ॥
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ।
अत एव हविः क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वशक्तिमयं सोममधःशक्तिमयोऽनलः ।
ताभ्यां संपुटितं तस्माच्छश्वद् विश्वमिदं जगत् ॥ ६ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्नेरूर्ध्वं भवत्येषा (शक्तिः) यावत् सौम्यं परामृतम् ।
यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः ॥ ७ ॥
अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा ।
यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात् पातनं भवेत् ॥ ८ ॥
आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः ।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ॥ ९ ॥
शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन ॥ १० ॥

अग्निवशादपां विकासरूपे अग्निसोमस्वभावाद् ऋणधनोपयोगः

अपां विकासभेदादुत्पन्नानां रूपाणां चत्वारि स्थानानि जायन्ते ॥ भृगुर्वायुः प्रथमो विकासः स्थानमेकम् (१) भृगुः सोमश्चाङ्गिरा अग्निश्च द्वितीयो विकासः स्थानं दशकम् (१०) । रुद्रो वायुस्तृतीयो विकासः स्थानं शतकम् (१००) । आदित्यश्चतुर्थो विकासः स्थानं सहस्रकम् (१०००) इति ॥ अतश्चैतावन्तोऽग्निविकासरूपा अधिदैवतमीश्वरशरीरलक्षणवेदशाखाविभागा उपपद्यन्ते । तत्रैतदाप्यस्य सोमस्य संकोचशालित्वात् क्षयोन्मुखत्वमस्तीत्यावेदयितुं सोमस्थानेषु अन्तर्विकासेष्वेकमृणं निधीयते । तेन दशकस्थानस्याथर्वणस्य नवशाखाः ॥ ९ ॥ अथाग्नेरस्य बहिर्विकासशालित्वात् वृद्ध्युन्मुखत्वमस्तीत्यावेदयितुमग्निस्थानेषु बहिर्विकासेष्वेकं धनं निधीयते । ऋणधनयोः सह संप्रसक्तौ सोमापेक्षयाऽग्नेर्बलवत्त्वाद्धनं बलवदिति धनस्फोटाय ऋणप्रयोगप्रतिषेधः ॥ तेन भृगुसोमस्यापां द्वितीयविकासरूपस्य दशकस्थानेऽङ्गिरसोऽग्नेः प्रथमविकासलक्षणं दशकस्थानं संयुतं भवतीति विंशतिरूपे विकासे धनमेकं क्रियते । तेन एकविंशतिधा (२१) बाह्वृच्यम् ॥ अथैतस्याग्नेः शतकस्थाने धनप्रयोगादेकशतं रूपम् ॥ (१०१) । अथैतस्याग्नेरन्ततः पूर्णविकासे तदुत्तरविकासक्रिया नास्तीति कृत्वा विकासनिबन्धनं वृद्ध्युन्मुखत्वं नास्ति । उत्तरकाले क्षयोन्मुखत्वे संभाव्यमानेऽपि तत्क्षणे क्षयोन्मुखत्वमपि नास्ति इत्यावेदयितुं तस्मिन् पूर्णे रूपे सहस्रिये धनमृणं च न क्रियते ॥ तथा च परिलेखः प्रदर्श्यते—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञानवेदस्य ऋणधनसिद्धः विकासक्रमरूपपरिलेखः

१	आपः	भृगुः	आपः			०		०	
२	आपः	भृगुः	वायुः			१		९ सोमः	अथर्ववेदः
३	आपः	भृगुः	सोमः	अङ्गिराः	अग्निः	१०	१०	२१ सोमः अग्निः	ऋग्वेदः
४	आपः			अङ्गिराः	वायुः		१००	१०१ अग्निः	यजुर्वेदः
५	आपः			अङ्गिराः	आदित्यः		१०००	१००० अग्निः	सामवेदः

वाक् आपः अग्निः—इति त्रितयमर्थतन्त्रम् । तत्रायमापोभाग उद्गीथः ॥ उद्गीथस्याधश्चरो भृगुः । ऊर्ध्वचरस्त्वङ्गिराः आपो वायुः सोम इति भृगुरूपाणि । वायुरत्र हंसः ॥ अथाग्निः, वायुः, आदित्यः—इत्यङ्गिरोरूपाणि । वायुरत्र यमः ॥ षण्णामेषां विकासमात्राक्रमेण शून्यम्[१]—एकम्[२]—दशत्[३]—विंशतिः[४]—शतं[५]—सहस्रं[६]मिति । तत्र भृगौ तावदेकस्मिन्नेकमृणमिति पुनः शून्यम् ॥ तथा दशत्येकमृणमिति नवधाऽऽथर्वणो वेदः ॥ अथाङ्गिरसि सोमाग्नियोगसिद्धायामृचि सोमस्य द्वितीयविकाससिद्धा दशत् संख्या । एवमग्नेरपि द्वितीयविकाससिद्धा दशत् संख्या । तयोर्योगो विंशतिः । अग्नौ धनमेकमित्येकविंशतिधा बाह्वृच्यम् । वायुस्तृतीयो विकासः शतमिति शतेऽग्नित्वाद्धनमेकमित्येकशतमध्वर्य्युशाखाः ॥ अथान्ते ऋणधनयोरुभयोरभावात् सहस्रवर्त्मा सामवेदः ॥ इत्येवं विज्ञानं विज्ञानवेदवदेव शब्दवेदेऽपि तुल्यं विजानीयात् तस्यैतस्य परिलेखो यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२५—शब्दवेदस्यापि ऋणधनसिद्धविकासक्रमरूपपरिलेखः

आपः अथर्वा ०	वायुः अथर्वा १	सोमः अथर्वा १०	सोमः १० अग्निः १० ऋक्	वायुः यजुः	आदित्यः १००० साम
आपः	आपः	आपः	आपः	आपः	आपः
भृगुः	भृगुः	भृगुः	अङ्गिराः	अङ्गिराः	अङ्गिराः
आपः	वायुः हंसः	सोमः	अग्निः	वायुः यमः	आदित्यः
०	१	२	२	३	४
विकासा-भावः	प्रथमो विकासः	द्वितीयो विकासः	द्वितीयो विकासः १०—१०	तृतीयो विकासः	चतुर्थो विकासः
०	१	१०	१०	१००	१०००
ऋणम् ०	ऋणम् १	ऋणम् १	धनम् १	धनम् १	धनम् ०
०	०	९	२१	१०१	१०००

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रभा मण्डलम् सहस्रांशु मितम्

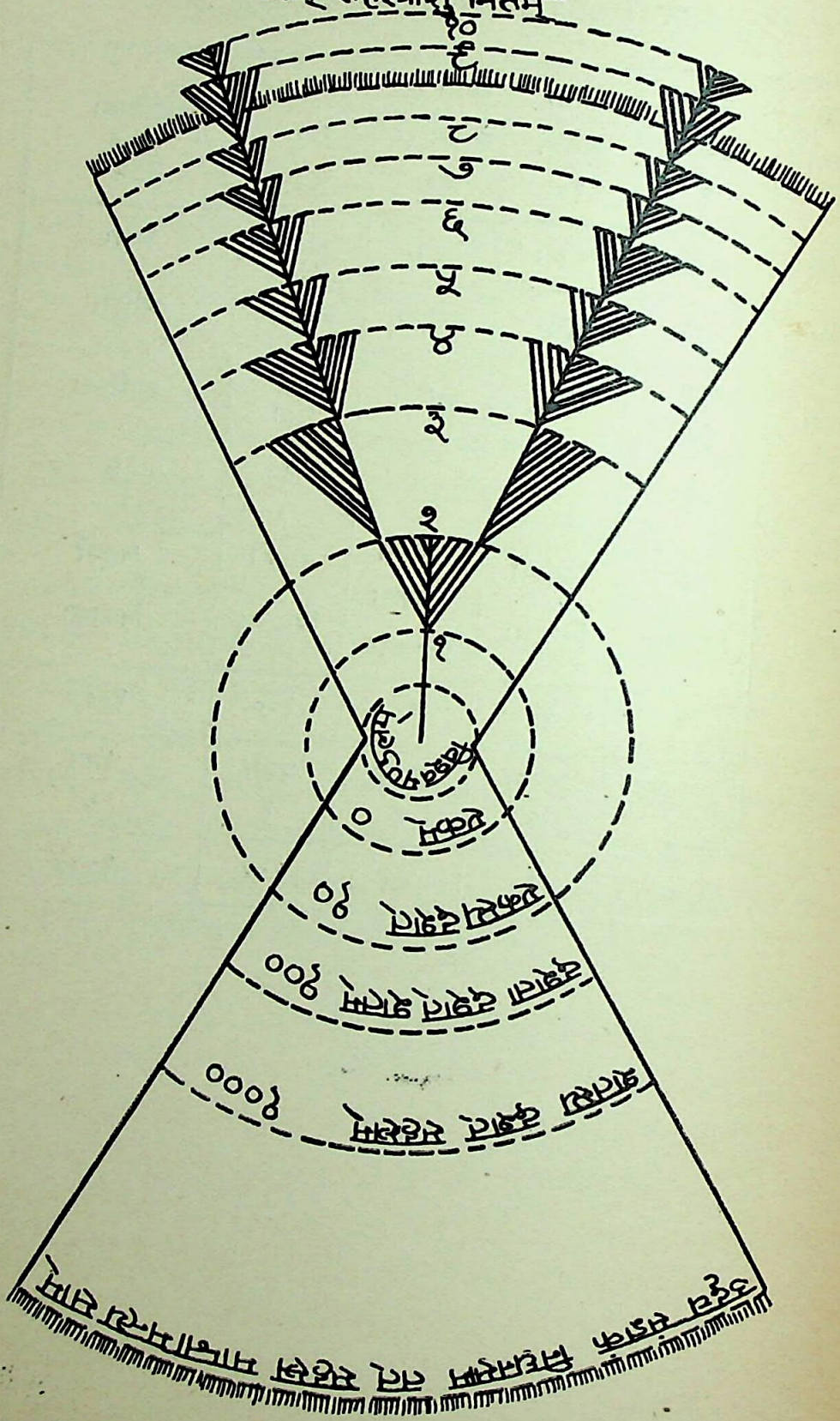

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्थं चैतयोः परब्रह्मशब्दब्रह्मणोः शाखाभेदाविशेषात् परब्रह्मणामिव शास्त्रब्रह्मणामपि सोमगर्भस्थाग्निविकासनिबन्धनाश्चतुर्धा संपन्नाः शाखाभेदा भवन्ति। यथा—

२६—वेदशास्त्रशाखाविभागाः—

१	१०	१०	१०	१००	१०००	विकासो वास्तविकः
सोमः	सोमः	सोमः	अग्निः	अग्निः	अग्निः	
ऋणम्	ऋणम्	ऋणम्	धनम्	धनम्	धनम्	
०	९	२१		१०१	१०००	विकासफलम्
	अथर्ववेद-शाखाः	ऋग्वेदशाखाः		यजुर्वेद-शाखाः	सामवेद-शाखाः	वेदब्रह्मशाखाः
आपः	वायुः	सोमः	अग्निः	वायुः	आदित्यः	परब्रह्मशाखाः
१	१०	१०	१०	१००	१०००	
ऋणम् १	ऋणम् १	धनम् १		धनम् १	न ऋणम् न धनम्	

इत्याग्नेयवाङ्मयवेदशाखाविभागः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ शब्दमयवेदनिरुक्तिः

तदित्थं यत्र खलु विश्वस्यैतस्यात्मा प्राधान्येन सपरिकरं निरूप्यते तानीमानि पञ्चधा विभक्तान्यात्मशास्त्राणि दर्शितानि—

१—वेदशास्त्रम् ।

२—उपनिषच्छास्त्रम् ।

३—दर्शनशास्त्रम् ।

४—मीमांसाशास्त्रम् ।

५—गीताशास्त्रं चेति ।

१—वेदशास्त्रप्रसङ्गः । तत्रादौ वेदप्रवर्तकाचार्य्याः

तेषु प्रथमतो वेदशास्त्रं निरूपयामः । इदं खलु विरुद्धाविरुद्धानेकविचित्रभेदभिन्नमाश्चर्य्यमयं विश्वं परिपश्यतां लोकानामेतद्विश्वसंबन्धे नानाविधा जिज्ञासा निसर्गतः प्रवर्तन्ते, कुतस्तावदिदं जातं, कुत्र प्रतिष्ठितं, किंपदार्थं चेति । तत्समाधानार्थं पुरा युगे तावद् भौमस्वर्गे पुष्करद्वीपाभिजनः प्राग्मेरुलक्षणहिरण्यशृङ्गपर्वतस्थो जगन्नियन्ता परमकारुणिको भगवान् विश्वगुरुः सर्वज्ञो हिरण्यगर्भब्रह्मद्रष्टृतया हिरण्यगर्भसंज्ञो ब्रह्मा विश्वकारणविज्ञानोपपादकं ब्रह्मविद्याशास्त्रं लोके प्रचारयामास ॥

तथा हि—मुण्डकः प्राह—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥
अथर्वणे यां प्रावदत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरो वाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ कस्मिन् भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति । इति । स होवाच—द्वे विद्ये वेदितव्ये—परा चैवापरा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति ॥ अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ इति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभु सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ १ ॥
यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वम् ॥ २ ॥
तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्म्मसु चामृतम् ॥
यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥ इति ॥

ब्रह्म नाम रूपमित्यत्रायं ब्रह्मशब्दो वेदशास्त्रपरः तस्यैव सर्वज्ञादीश्वरतः प्रादुर्भावात् । आत्मब्रह्मणस्तु नित्यतयाऽनुत्पाद्यत्वात् । स्वर्गलोके चेदं विश्वविज्ञानशास्त्रं ब्रह्मणा लोकपितामहेन प्रादुर्भावितमिति कृत्वाऽयं स्वर्गग्रन्थ इष्यते । तस्मिन्नस्मिन् वेदशास्त्रे ब्रह्म सपरिकरं व्याख्यायते । विश्वस्यैतस्य प्रभवोऽयमात्मा ब्रह्मतत्त्वम् । ब्रह्मोपपादकत्वाच्चैतस्मिन् वेदशास्त्रेऽपि ब्रह्मशब्दोऽनुवर्तते । तामेतां ब्रह्मविद्यां लोके भूयसा प्रचाराय स भगवानादिब्रह्मा तावदत्रिमहर्षिपर्षद्ब्रह्माणं नियोजयामास । तथा चैतस्मिन् प्रथमप्रचारे गुरुशिष्यपरम्पराक्रमो भवति—

१—ब्रह्मा जगद्गुरुर्वेदविद्यात्रयीप्रथमप्रवर्तकः ।
२—अथर्वा ब्रह्मपुत्रोऽथर्ववेदप्रवर्तको यज्ञवेदप्रवर्तकश्च ।
३—अङ्गिराः आथर्वणः ।
४—सत्यवाहो भारद्वाजो बृहस्पतिपुत्र आङ्गिरसः ।
५—अङ्गिराः द्वितीयः पर्षद्ब्रह्मा अङ्गिरोवंशजन्मा ।
६—शौनको महाशाल आङ्गिरस एव सन् पश्चाद् भृगुवंश्योऽभूत् ।
७—अत्रिमहर्षिः पर्षद्ब्रह्मा ।

वेदप्रवर्तका एवैते ब्रह्मर्षयो न तु जनकाः । ईश्वरशरीरभूतस्यैतस्य वाक्प्राणमनोमयस्य वेदस्यापौरुषेयत्वसिद्धान्तात् ।

पुष्करधामाभिजनेन हिरण्यशृङ्गगिरिशिखरवासिना साध्यविशेषेण देवानां प्रथमेनादिब्रह्मणा दृष्टस्य वेदस्यायं प्रचारक्रमो दर्शितः । अथाजपृष्ण्यादितपस्विभिर्वा अष्टाशीतिसहस्रोर्ध्वरेतसतापसैर्वा सप्तर्षिभिर्वा दृष्टानामुत्तरसमयानामत्रिर्वा अपान्तरतमाः कृष्णद्वैपायनो वाऽन्योन्यः काले काले प्रचारको बभूवेति पुराणादिभ्योऽवगम्यते ॥

इति वेदप्रवर्तकाचार्य्यानुगमः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—शब्दमयवेदानां पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वविमर्शे नानामतसमुच्चयः

वेदशास्त्रस्योत्पत्तिविषये प्रचलितानि षण्मतानि दृश्यन्ते—

१—वेदमीमांसामतम्—वेदा अकृतकाः, अपौरुषेयाः, कूटस्थनित्याः—इति ।

२—सांख्यप्रवचनमतम्—वेदाः कृतकाः, अपौरुषेयाः, अनित्याः—इति ।

३—अर्वाचीनन्यायमतम्—वेदा ईश्वरकृताः, पौरुषेयापौरुषेयाः, अनित्याः—इति ।

४—प्राचीनन्यायमतम्—वेदा महर्षिकृताः, पौरुषेयाः, प्रवाहनित्याः—इति ।

५—वैशेषिकमतम्—वेदा विद्वत्कृताः, पौरुषेयाः, अनित्याः—इति ।

६—नास्तिकमतम्—वेदाः साधारणमनुष्यकृताः, पौरुषेयाः, अनित्याः—इति ।

(१) मीमांसामतम्

(१) अथैषां मतानां समीक्षायै तत्तदाचार्य्यवचनानि प्रदर्श्यन्ते—तत्रादौ पूर्वमीमांसासूत्रम् ।

वेदांश्चैके संनिकर्षं पुरुषाख्याः । अनित्यदर्शनाच्च उक्तं तु शब्दपूर्वकत्वम् । आख्याप्रवचनात् परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।

उत्तरमीमांसासूत्रं यथा—

शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । अत एव च नित्यत्वम् । इति ।

शास्त्रवेदस्य पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वविचारः

एषामयं भावः । अकर्तृका इमे वेदाः कर्तुरश्रवणात् । महर्षयस्तु द्रष्टारो न कर्तारः । आतश्च पुरुषमात्रेणानिर्म्मितत्वादपौरुषेयाः । त एते स्वयमपि नोत्पन्नाः । शब्दानां नित्यत्वसिद्धान्तात् । जगतोऽनादित्वाच्चैषां शब्दानामर्था अपि नित्याः । शब्दार्थयोः संबन्धोऽपि नित्यः । अत एव च शब्दार्थमूलकोऽयं वेदोऽपि नित्योऽपौरुषेयः प्रतिपत्तव्य इति ॥ १ ॥

(२) सांख्यमतम्

(२) अथ द्वितीयमतपोषकं सांख्यसूत्रं यथा—(५ । ४५ । ५०)

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ॥ १ ॥ न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् । मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ॥ २ ॥ नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ॥ तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ॥ यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत् पौरुषेयम् ॥ इति ॥

अयं भावः । वृक्षाङ्कुरादिवत् सूर्यचन्द्रादिवच्चैते वेदा अपि प्रकृतिनियमानुसारेण स्वयमुत्पन्नाः । अत एवानित्याः । किन्तु कर्तुः पुरुषस्य प्रतिपत्तिर्नास्तीत्यपौरुषेयास्ते विज्ञायन्ते इति ॥ २ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) नव्यन्यायमतम्

(३) अथ तृतीयमतपोषकं नव्यनैयायिकवचनं यथा । उदयनाचार्यकृत-कुसुमाञ्जलिवाक्यं तावत्—

प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलयसंभवात् ।
तदन्यस्मिन्ननाश्वासान्न विधान्तरसंभवः ॥ इति ॥

स्यादेतत् । परतः प्रामाण्येऽपि नित्यत्वाद् वेदानामनपेक्षत्वम् । महाजनपरिग्रहाच्च प्रामाण्यमिति को विरोधः । न । उभयस्याप्यसिद्धेः । यदा च वर्णा एव न नित्याः तदा कैव कथा पुरुषविवक्षाधीनानुपूर्व्यादिविशिष्टवर्णसमूहरूपाणां पदानाम् । कुतस्तरां च तत्समूहरचनाविशेषस्वभावस्य वाक्यस्य कुतस्तमां तत्समूहस्य वेदस्य ॥ परतंत्रपुरुषपराधीनतया प्रवाहाविच्छेदमेव नित्यतो ब्रूम इति चेद्—एतदपि नास्ति । सर्गप्रलयसंभवात् ॥ इति (द्वि० स्तवक १ कारिकाव्याख्या)

अथोदयनमतानुसारि गंगेशमहामहोपाध्यायवचनं यथा—

अत्र ब्रूमः ॥ शाब्दप्रमायां लोके वक्तुर्यथार्थवाक्यार्थज्ञानं न गुणः ॥ किन्तु योग्यतादिकं यथार्थतज्ज्ञानं वा । लाघवादावश्यकत्वाच्च । एवं वेदेऽपि यथार्थयोग्यताज्ञानमेव गुण इति न वैदिकप्रमाया गुणजन्यत्वेनेश्वरसिद्धिः । स्यादेतत् । वेदवक्तुर्यथार्थवाक्यार्थज्ञानमपि गुणः । लोके प्रमाणशब्दं प्रति तादृशस्य ज्ञानस्य हेतुत्वात् । एवं च वेदो वाक्यार्थगोचरयथार्थ-ज्ञानवत्स्वतन्त्रप्रणीतः । प्रमाणशब्दत्वात् । गामानयेति वाक्यवद्—इतीश्वरसिद्धिः । अथ तात्पर्य्यविषये वेदः प्रमाणम् । न चास्मदादेः वेदं विना अतीन्द्रियवेदार्थगोचरज्ञानम् । येन तत्प्रतीतीच्छयोच्चारणं भवेत् । न च वेदादेव तत् । अन्योन्याश्रयात् । अतः सकलवेदार्थदर्शिना यस्य वेदस्य यदर्थप्रतीतीच्छयोच्चारणं कृतं स तत्र प्रमाणमिति तादृशेच्छैव गुणः । तज्जन्या वेदार्थप्रमा—इति तदाश्रयस्वतंत्रपुरुषधौरेयसिद्धिः ।

इति तत्त्वचिन्तामणिप्रामाण्यवादे—प्रमोत्पत्तिरहस्ये पाठः ॥

अयं भावः । नायं वेदः कूटस्थनित्यो न वा प्रवाहनित्यः । तेन वेदानां नित्यत्वा-भ्युपगमस्तावन्नावकल्पते । किन्तु अनित्यत्वेऽप्येष वेदो महर्षिकृतो न संभवति । अतीन्द्रियार्थविषयतया अतीन्द्रियार्थद्रष्टुरीश्वरस्यैव तत्कर्तृत्वसंभवात् । द्रष्टारो हि महर्षयो न कर्तारः । उक्तं च—युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान्महर्षयः । लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ इति ॥ आदिपुरुषकृतत्वेन पौरुषेयत्वोपपत्तावपि परतन्त्रशरीरधारिमनुष्यपुरुषनिर्मितत्वाभावादयमपौरुषेयो वेदः शक्यो वक्तुमिति भाव्यम् ॥ ३ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) प्राचीनन्यायमतम्

(४) अथ चतुर्थमतपोषकं प्राचीनन्यायवचनं महर्षिगौतमसूत्रं सभाष्यं यथा—आप्तोपदेशः शब्दः । स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ॥ १ ॥ मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् । २ । १ । ६८ ॥ इति ॥

मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु संप्रदायाभ्यासप्रयोगाविच्छेदो वेदानां नित्यत्वम् । आप्तप्रामाण्याच्च प्रामाण्यम् । लौकिकेषु चैतत् समानमिति ॥ ० ॥ आप्ताः खलु साक्षात्कृतधर्माणः ॥ दृष्टार्थेनाप्तोपदेशेनायुर्वेदे दृष्टार्थो वेदभागोऽनुमातव्यः प्रमाणमिति । आप्तप्रामाण्यस्य हेतोःसमानत्वात् । इति । द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुमानम् । य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च । त एवायुर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद् वेदप्रामाण्यमनुमातव्यम् । नित्यत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यादित्ययुक्तम् । शब्दस्य वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं, न नित्यत्वात् । न भिद्यते च लौकिकाद् वाक्याद् वैदिकं वाक्यं—प्रेक्षापूर्वकारिपुरुषप्रणीतत्वेन । तत्र लौकिकस्तावदपरीक्षकोऽपि न जातमात्रं कुमारकमेवं ब्रूयाद्—अधीष्व यजस्व—ब्रह्मचर्यं चरेति । कुत एवमृषिरुपपन्नानवद्यवादी उपदेशार्थेन प्रयुक्त उपदिशति ॥ [वात्स्यायन भा० ४ । १ । ६० ॥] य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासस्य पुराणस्य धर्म्मशास्त्रस्य चेति ॥ [वात्स्या० ४ । १ । ६२]

अयं भावः । वेदा महर्षिकृताः पौरुषेयाः ॥ तेषां कूटस्थनित्यत्वाभावेऽपि प्रवाहनित्यत्वमवश्यं भाव्यम् । लौकिका अपि शब्दाः प्रवाहनित्याः, लौकिकशब्दवदेवैषां वैदिकशब्दानामपि आप्तप्रामाण्यादेव प्रामाण्यमध्यवसेयम् । भारद्वाजप्रभृतिभिर्यैरेव महर्षिभिरायुर्वेदा उक्ताः तैरेव चेमे वेदा अपि । अत एव यथायुर्वेदानां प्रामाण्यं तथैव वेदानामिति भाव्यम् ॥ ४ ॥

(५) वैशेषिकमतम्

(५) अथ पञ्चममतपोषकं वैशेषिकशास्त्रसूत्रं यथा—६ । १ । १—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे । ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ ६ । १ । २ ।
आर्षं सिद्धिदर्शनं च धर्म्मेभ्यः ॥ ६ । २ । १३ ॥ इति ॥

महाभाष्यकैय्यटयोरप्येवम्—

ननु चोक्तम्—न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसीति ॥ ० ॥ यद्यप्यर्थो नित्यः । यात्वसौ वर्णानुपूर्वी सा अनित्या । तद्भेदाच्चैतद् भवति—काठकं कालापकं मौद्गलं पैप्पलादकम् ॥ शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ ४ । ३ । १०६ ॥ शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः । वाजसनेयिनः । कठचरकाल्लुक् ॥ कठाः । चरकाः । इति भाष्यम् ॥ महाप्रलयादिषु वर्णानुपूर्वीविनाशे पुनरुत्पद्य ऋषयः संस्कारातिशयाद् वेदार्थं स्मृत्वा शब्दरचनां विदध-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीत्यर्थः । इति कै० ४ । ३ । १०१ ॥ ० ॥ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वादिति वार्तिके । याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि सौलभानीति । किं कारणं—तुल्यकालत्वात् । एतान्यपि तुल्यकालानीति आश्मरथ्यः कल्पः । याज्ञवल्क्यादयोऽचिरकाला—इत्याख्यातेषु वार्ता । तया व्यवहरति सूत्रकारः—इति जयादित्यः ॥ ० ॥ तेन दृष्टं साम । ५ । ४ । २७ वाशिष्ठं वैश्वामित्रं कालेयम् । यस्य साम्नो विशिष्टकार्य्यविषयो विनियोगो ज्ञानातिशयसंपत्त्या कलिनाऽज्ञायि तत्तेन दृष्टमित्युच्यते । (कैयटः) ॥

अयं भावः । वेदशब्दानां द्वेधा विवक्षा द्रष्टव्या । शब्दरूपेण चार्थरूपेण च ॥ वेदशब्दव्यवहारे वाक्यप्रधानतायां वेदा महर्षिकृताः पौरुषेयाः अनित्या इति ॥ वाच्यविद्याप्रधानतायां तु—वेदा अकृतकाः अपौरुषेयाः नित्या इति व्यवस्था भाव्या ॥ ५ ॥

(६) नास्तिकमतम्

(६) अथ षष्ठं नास्तिकानां वेदपदार्थानभिज्ञानामवैज्ञानिकं मतमस्तीत्यसारत्वादश्रद्धेयमित्यत उपेक्ष्यते ।

यानि तु वेदश्रद्धावतां वैज्ञानिकानामिहोपरिष्टात् मतान्युक्तानि । तेषामन्येष्यवान्तरभेदा द्वाचत्वारिंशद् भवन्ति । तेषामेषामञ्जसा प्रतिपत्त्यर्थं षोढा विभागः क्रियते ।

(१) अकृतका नित्यसिद्धा वेदास्त्रयोदशमतेषु

नित्यसिद्धा वेदा इति प्रथमो मतविभागः

तत्र त्रयोदशमतानि

१—ईश्वरेणाभिन्ना वेदाः—आत्मरूपाः ।

२—ईश्वरेण तुल्या वेदाः—आत्मरूपाः ।

३—ईश्वरस्य निःश्वसितानि वेदाः । आत्मरूपाः—इति त्रयो विमर्शा अन्ये ।

४—ईश्वरानुग्रहाद् ब्रह्मणा प्राप्ता वेदा विज्ञानरूपाः ।

५—ईश्वरानुग्रहाद् महर्षिभिः प्राप्ताः वेदा विज्ञानरूपाः ।

६—ईश्वरानुग्रहाद् अजैः पृष्णिभिस्तपस्विभिः प्राप्ता वेदाः विज्ञानरूपाः ।

७—ईश्वरानुग्रहाद् अथर्वणाङ्गिरसा प्राप्ता वेदा विज्ञानरूपाः—इति चत्वारो विमर्शा अन्ये ।

८—ईश्वरस्य वेदसंप्रदायप्रवर्तकत्वाद् ईश्वरस्य प्रथमवाक्यं वेदः शब्दमयः ।

९—चतुर्मुखब्रह्मणः संप्रदायप्रवर्तकत्वाद् ब्रह्मणः प्रथमवाक्यं वेदः शब्दमयः ।

१०—ऋषीणां संप्रदायप्रवर्तकत्वाद् ऋषीणां प्रथमवाक्यं वेदः शब्दमयः—इति त्रयो विमर्शा अन्ये ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११—ईश्वरेण वेदशास्त्रतात्पर्य्यानुसारेण जगत् सृष्टम् ।

१२—ईश्वरेण वेदशास्त्रशब्देभ्य एव जगत् सृष्टम् ।

१३—ईश्वरेण वेदशास्त्रद्वारा पूर्वकल्पं स्मृत्वा तदनुसाराज्जगत् सृष्टम्—इति त्रयो विमर्शा अन्ये ।

(२)—ईश्वरकृता वेदाः सप्तमतेषु ।

ईश्वरकृता वेदा इति द्वितीयो मतविभागः ॥

तत्र सप्तमतानि—

१—प्रतिकल्पं सृष्ट्यादावीश्वरो जगज्जनयिष्यन् प्रथमतो वेदं जनयति । तस्मात् प्रथमजं त्रयीब्रह्म ।

२—नित्यसिद्धया वाचा ईश्वरः शब्दमयं वेदमर्थमयं जगच्चोत्पादयति ।

३—उपादानमनादायैवेश्वरः स्वेच्छाशक्त्या वेदं जगच्चोत्पादयति ।

४—वेदं कृत्वेश्वरो ब्रह्मप्रजापतिद्वारा महर्षिद्वारा च वेदसंप्रदायं लोके प्रवर्तयामास इति चत्वारो विमर्शा अन्ये ।

५—ईश्वरः स्वेच्छयैतेभ्योऽग्निवायुसूर्य्येभ्यो वेदानजनयत् ।

६—ईश्वरः स्वेच्छयैतस्मात् सूर्य्याद् वेदानजनयत् ।

७—ईश्वरः स्वेच्छया यज्ञपुरुषाद् वेदानजनयत् । इति त्रयो विमर्शा अन्ये ।

(३)—ईश्वरावतारकृता वेदाः पञ्चमतेषु

ईश्वरावतारकृता वेदा—इति तृतीयो मतविभागः

तत्र पञ्चमतानि—

१—ईश्वरावतारो ब्रह्मा वेदान् प्रादुर्भावयामास ।

२—ईश्वरावतारो मत्स्यो भगवान् वेदानुद्धारयामास ।

३—ईश्वरावतारा अग्निवायुसूर्य्याः पृथक् त्रीन् वेदान् जनयामासुः ।

४—ईश्वरावतारः सूर्य्यस्त्रीन् वेदान् जनयामास ।

५—ईश्वरावतारः सर्वहुद् यज्ञपुरुषो वेदान् जनयामास ।

(४)—प्रकृतिसिद्धा वेदाः सप्तमतेषु (७)

प्रकृतिसिद्धा वेदा—इति चतुर्थो मतविभागः ।

तत्र सप्तमतानि—

१—प्रकृतिसिद्धेभ्योऽग्निवायुसूर्य्येभ्यः खल्वभिन्ना इमे त्रयो वेदाः ।

२—सूर्य्य एवैते त्रयो वेदाः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—यज्ञ एवैते त्रयो वेदाः ।

४—कालचक्रक्रमादेते त्रयो वेदाः प्रकृतिवशात् स्वयमजायन्त ।

५—सृष्ट्यादावेवैते त्रयो वेदाः प्रकृतिवशात् स्वयमजायन्त ।

६—त्रिभ्यो लोकेभ्यः क्रमादेते त्रयो वेदा अजायन्त ।

७—त्रिभ्यश्छन्दोभ्यः, त्रिभ्यः स्तोमेभ्यः, त्रिभ्यः सवनेभ्यो वेदा अजायन्त ।

(५)—महर्षिकृता वेदाः सप्तमतेषु

महर्षिकृता वेदा—इति पञ्चमो मतविभागः ।

तत्र सप्तमतानि—

१—अथर्वाऽङ्गिरसो महर्षेर्वाक्यानीमे वेदाः ।

२—अजपृष्णिनामकानामृषीणां वाक्यानीमे वेदाः ।

३—अपान्तरतमःसंज्ञकस्य कस्यचिद् ऋषेर्वाक्यानीमे वेदाः ।

४—ऊर्ध्वरेतसां बहूनामृषीणां वाक्यानीमे वेदाः ।

५—वसिष्ठादीनां सप्तर्षीणां वाक्यानीमे वेदाः ।

६—स्वर्गस्थानां भिन्नभिन्नानां दिव्यर्षीणामाम्नायवचनेभ्यः संगृहीता इमे वेदाः ।

७—ईश्वरकृतस्य मन्त्रभागस्य अग्निवायुसूर्या ऋषयः संप्रदायप्रवर्तकाः । ब्राह्मणभागस्य तु तत्तन्नामान एवर्षयो निर्म्मातारः ।

(६)—ग्रामीणमनुष्यकृता वेदास्त्रिषु मतेषु

आदियुगीयसाधारणमनुष्यकृता वेदा—इति षष्ठो मतविभागः । तत्र मतत्रयम् ।

१—ब्राह्मणपुरोहितैः कृता यज्ञोपयोगिसाहित्यविशेषा वेदाः ।

२—कृषिगणानामादियुगीयभाषायां व्याहृता वेदाः ।

३—भण्ड—धूर्त्त—राक्षसानां साहित्यविशेषा वेदाः ।

इतीत्थं वेदविषये द्वाचत्वारिंशन्मतान्याविद्वत्कुलमापामरं च लोकैः प्रकल्पितानि । तेषामेषां तत्तन्मतसमर्थकानि तानि तानि विमर्शवाक्यान्यतः परं प्रदर्श्यन्ते

१—प्रथममतम्

ईश्वरो ज्ञानमयो ब्रह्मशब्दवाच्यः । वेदोऽपि ज्ञानमयो ब्रह्मशब्दवाच्यः ।

ईश्वरस्य तस्य वाचकः प्रणवः । त्रयी वेदस्याप्येष वाचकः प्रणवः ।

ईश्वरांशेभ्यो जगतः सृष्टिः । वेदशब्देभ्यो जगतः सृष्टिः ।

प्रलयेऽप्यविनाशी नित्य ईश्वरः । प्रलयेऽप्येते वेदा नित्या न विनश्यन्ति ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्थं धर्मैक्योपपत्तेरीश्वर एवैते वेदाः। अपि वा वेदा एवायमीश्वर एकत्वेन प्रतिपत्तव्यः ॥ यथाहुः श्रुतिस्मृतयः—

१—एष वेदो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ॥
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति। (श्वेताश्व० ४। १७)

२—स्वयंभूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा। शिवाद्या ऋषिपर्य्यन्ताः स्मर्तारोऽस्य न कारकाः ॥ (भागवतस्मृतिः)

३—वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम।

४—आद्यं यदक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता। स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ (मनुः ११। २६५)

५—ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत् तत् कवयो वेदयन्ते।
तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं च (प्रश्नो० ५)

६—ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानम्—भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। (माण्डूक्य)

७—ओमिति वै सर्वो वेदः। (श्रुतिः)

८—तस्य वाचकः प्रणवः।

९—चातुर्वर्ण्यं त्रयो वेदाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति। (म० १२। ९७)

१०—शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः। वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः॥ (मनुः १२। ९८)

२—द्वितीयमतम्

अथ द्वितीयं मतमालोचयामः—

ब्रह्मद्विविधम्—शब्दब्रह्म च परब्रह्म चेति। उभावप्येतावक्षरौ अनादी पृथक् पदार्थौ। तत्र शब्दब्रह्मणो विवर्तोऽयं शास्त्रलक्षणो वेदः। स एष स्वतःप्रमाणभूतो नित्यश्च। अथ परब्रह्मणोऽयं विवर्तो योऽयं शब्दस्यार्थः प्रतीयते। स प्रमेयभूतो नित्यश्च। आभ्यां च प्रमाणप्रमेयाभ्यां नातिरिच्यते किञ्चिदिदं जगत्। तत्र चैते वेदाः प्रमाणम्। अथेदं जगत् प्रमेयम्॥ तदिदं प्रमाणं च प्रमेयं चैतदुभयं कार्य्यतया परिणममानं सत्यमिथ्यारूपेणानुभूयमानं बाह्यस्थूलदृष्ट्या सर्वमनित्यवदेव दृश्यते। तथैव च सर्वैरभ्युपगम्यते किन्तु सूक्ष्मदृष्ट्या परिपश्यतां विदुषां सर्वमेवैतत् प्रमाणं च प्रमेयं च नित्यं निर्विकारमनाद्यनन्तमुपपद्यते। अपि चाहुः—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिरिति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपि च प्रमाणानुसारादेव प्रमेयसिद्धिर्भवति, न चान्तरेण प्रमाणं प्रमेयस्वरूपसत्तासिद्धिर्भवति । अतश्च वेदानुसारादेवेयं जगत्सृष्टिर्भवतीति कृत्वा वेदविरुद्धं किमपीह नोपपद्यते । अतएव च प्रकृतिसिद्धसनातनयोरप्यनयोः प्रमाणप्रमेयरूपयोर्वदजगतोः प्रथमे खल्विमे वेदाः तदनुसारादेव चेदं पश्चिमं जगदाविर्भवति । स यथैष जगद्रूपोऽयमीश्वरः प्रमेय एवमेव च वेदरूपोऽयमीश्वरः प्रमाणम् । एकस्यैवेश्वरस्येदमित्थं द्वैरूप्यं प्रतिपत्तव्यम् । एकस्यैव जीवपुरुषस्य जीवात्मशरीराभ्यां द्वैरूप्यवत् ॥ अत्रैतानि वचनान्यनुभावनीयानि ।—

१—द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।

२—एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म—यदोंकारः ॥ (प्रश्नो०)

३—अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं निरञ्जनम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥

४—चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥ मनुः १२ । ९७

५—शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ मनुः १२ । ९८ ।

३—तृतीयमतम्

अथ तृतीयं मतमित्थं द्रष्टव्यम् ।

नित्यसिद्धोऽयं वेद ईश्वरनिःश्वसितरूपः । स ईश्वरतः स्वयं शश्वदाविर्भवति । यथा निःश्वासः प्राणितः प्राणः सत्ताहेतुः—एवमेवायं वेद ईश्वरस्य प्राणः सत्ताहेतुः । यथा निःश्वासक्रियां कुर्वाणोपि प्राणी निःश्वासस्य कर्ता नास्ति एवमीश्वरः स्वयंभूतवेदस्य निर्माता नास्ति । अत एवायमकर्तृकोऽपौरुषेयो वेदः । अत्रैतानि वचनानि द्रष्टव्यानि—

स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग् धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्—यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि । इष्टं हुतमाशितं पायितम् । अयं च लोकः परश्च लोकः । सर्वाणि च भूतानि । अस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि ॥ स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनम्—एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ (शतपथश्रुतिः)

४—चतुर्थमतम्

अथ चतुर्थं मतमुच्यते । नित्यसिद्धं वेदमीश्वरानुग्रहाद् ब्रह्मा लेभे । सृष्ट्यादौ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वतः पूर्वं यो हिरण्यगर्भो नाम पुरुषोऽजायत स ब्रह्मा । यथाह । "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।" इति । अस्यैव हिरण्यगर्भस्य हृदये प्रथमतो वेदविकासोऽभूत् । यत्नमन्तरेणैव तस्य हृदि स्वयमुद्बुद्धोऽभूत् । सर्वे हि वेदोक्ताः सृष्टिपदार्था हिरण्यगर्भप्रादुर्भावकाले उत्पन्ना नासन् । वेदानुसारेणैव ते क्रमशः काले काले ब्रह्मणाऽसृज्यन्त । अत एवाहुः—ब्रह्मणोऽयं वेद ईश्वरेण दत्त इति । अत एव च सृष्टिरचनौपयिकोऽयं विज्ञानमयो वेदोऽपौरुषेय एवेष्यते । सृष्टेः पूर्वं सृष्टिपदार्थाभावात् तद्विषयकविज्ञानाशक्यतया विश्वविज्ञानलक्षणवेदनिर्माणस्य प्रथमपुरुषेण ब्रह्मणा कर्तुमशक्यत्वात् । अत्रैतानि वचनानि भवन्ति—

१—यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यश्चास्मै प्रहिणोति वेदम् । श्रुतिविशेषः ।

२—यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये । (श्वेताश्व० ६ । १८) ॥

३—चिकीर्षितमर्थमनुतिष्ठन् तस्य वाचकं शब्दं पूर्वं स्मृत्वा पश्चात् तमर्थमनुतिष्ठतीति सर्वेषां नः प्रत्यक्षमेतत् । तथा प्रजापतेरपि स्रष्टुः सृष्टेः पूर्वं वैदिकाः शब्दा मनसि प्रादुर्बभूवुः । पश्चात् तदनुगतानर्थान् ससर्जेति गम्यते । (शाङ्कर भाष्य १।३।२८) इति ॥

५—पञ्चममतम्

अथ पञ्चमं मतं यथा—

नित्यसिद्धोऽयं वेदो महर्षिभिरीश्वरानुग्रहात् प्राप्तः । सृष्टेः पूर्वं संभवतो हिरण्यगर्भेणानन्ता वेदा विनिर्म्मिताः स्युः तेष्वयं यज्ञवेदो भवति यमद्यत्वे वयमुपलभामहे । नायमनन्तः । अस्य शाखामण्डलमन्त्रपदाक्षराणां परिगणितत्वात् । सोऽयमीश्वरानुग्रहादूर्ध्वरेतसां बहूनामृषीणां हृदयेषु प्रादुरभवत् । ईश्वरेण प्रदत्तोऽयमित्यपौरुषेयः । अत्रैतानि वचनानि दृश्यन्ते—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान्महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ १ ॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥ २ ॥ स्मृतिः ।

६—षष्ठमतम्

अथ षष्ठं मतं दर्श्यते—

नित्यसिद्धोऽयं वेद ईश्वरानुग्रहादजपृष्ण्यादिभिः पुरायुगे प्राप्तः । आकृष्टा भाषा इत्यन्ये, सिकृता निवावरी इत्यन्ये । पृष्ण्योऽजा इत्यन्ये—इत्येवं द्विनामान एते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिविधा ऋषिगणा अजपृष्ण्यादयः स्युः । उक्तं च—अजान् ह वै पृष्णीन् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भु अभ्यानर्षत् । तद् ऋषयोऽभवन् । त एतं ब्रह्मयज्ञमपश्यन् ॥

७—सप्तममतम्

अथ सप्तमं मतं द्रष्टव्यम्—

नित्यसिद्धोऽयं वेद ईश्वरानुग्रहादथर्वांगिरसा ब्रह्मपुत्रेण प्राप्तः । अङ्गिरा नाम्ना कश्चिदासीत् पुरायुगे स्वर्गलोके महामहर्षिः । सोऽयं वैज्ञानिको यज्ञविद्यायां परमः प्रवीण आसीदिति हेतोरार्त्विज्ये सर्वश्रेष्ठो ब्रह्मा बभूव । अत एव च तमादिब्रह्मा वेदविद्याप्रवर्तनाय पर्षद्ब्रह्माणं चक्रे । अङ्गिरो गोत्रं चैष प्रवर्तयामास । अस्यैव चाङ्गिरसो ब्रह्मणः प्रभावेण सत्ययुगादारभ्य त्रेतायुगपर्य्यन्तमस्य वेदशास्त्रस्यातितरामभ्युन्नतिरासीत् । अत्रैतानि वचनानि दृश्यन्ते—

१—आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमापशुं नरः । १ । ६ । ४ । ४ ऋ०
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्य्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आगा आजदुशना काव्यः स चायमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ऋ० सं० १।६।४।५

२—ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत् ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ॥ स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा चेति ॥

३—मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यँस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि ॥ तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ (मुण्ड० १।२)

४—संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे । द्वापरे विप्लवं यान्ति वेदाः कलियुगे तथा ॥ (मा० भा० शां० मोक्षधर्म २३७)

८—अष्टममतम्

अथाष्टमं मतमुच्यते—नित्यसिद्धं वेदमीश्वरः सृष्ट्यादौ प्रोच्य तत्संप्रदायं प्रवर्तयामास । तत्र वचनानि यथा—

१—नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा । श्रुतिः ॥

२—तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्यया । वृष्णो चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ऋ० सं० ६।५।२५।६

३—अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा । (मुण्ड० २।१)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ (स्मृतिः)

५—उत्सर्गोऽप्ययं वाचः संप्रदायप्रवर्तनात्मको द्रष्टव्यः ।
अनादिनिधनाया अन्यादृशस्योत्सर्गस्यासंभवात् ॥ (शाङ्कर भा० १ । ३ । २८)

६—स्वयंभूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा ।
शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारोऽस्य न कारकाः ॥ (स्मृतिः)

९—नवममतम्

अथ नवमं मतमाह । नित्यसिद्धोऽयं वेदश्चतुर्मुखब्रह्मणो वाक्यम् । यथा नित्यसिद्धानि पुराणानि भगवान् कृष्णद्वैपायनो वेदव्यासो लोके प्रवर्तयामास न तु चकार एवमेवायं भगवान् ब्रह्मा प्रजापतिरेतान् वेदान् लोके प्रवर्तयामास न तु निर्म्ममे । यथोक्तं मत्स्यादिपुराणेषु—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् । अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः । ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ इत्यादिः श्रुतिः । अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा इत्यादिः स्मृतिः ।

१०—दशममतम्

अथ दशमं मतमुच्यते । नित्यसिद्धोऽयं वेदस्तपोबलाद् ऋषिभिरादौ विज्ञातश्चोक्तश्च । संप्रदायपरम्परया पुनः पुनः श्रवणादेव चैषां वेदेषु विज्ञानमजायत । नतु मुख्यतया कश्चिदृषिरस्य निर्माताऽसीत् । यथोक्तं वाजिश्रुतौ—

१—तद्वा ऋषयः प्रतिबुबुधिरे य उ तर्हि ऋषय आस । २ । २ । १ । १४

२—तद्वा ऋषीणामनुश्रुतमास ।

३—यमाप्नवामो भृगवो विरुरुचुः (ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः)

४—तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत् ॥
दिव्या सरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात् । (भा० शां० १८ । ३)

११—एकादशं मतम्

अथैकादशं मतमाहुः । विश्वपरिस्थितिविज्ञानरूपो नित्यसिद्धोऽयं वेदः । वेदे च अहोरात्रवज्जगतः कल्पद्वयमिष्यते । तत्रैतेषां सर्वेषामेवार्थानमुत्पत्तिक्रमो देशकालौ नामरूपकर्म्माणि पूर्वकल्पानुसारेणैवोत्तरकल्पे जायन्ते । ऋषीणामपि यन्नाम्नां यथा वेददृष्टिः पूर्वकल्पे तथैवाविकलमुत्तरकल्पे जायते । ईश्वरस्य च पूर्वकल्पे यथा ज्ञानमासीद् तथैवोत्तरकल्पेऽनुवर्तते स ईश्वरज्ञानराशिरेवायं वेदः । एतदर्थोपोद्बलकानि वचनानि यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—वेदेन नामरूपे व्याकरोत् सदसती प्रजापतिः । (श्रुतिः) ॥

२—धाता यथापूर्वमकल्पयद् दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ऋक् ॥

३—तथाभिमानिनो जीवास्तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा देवैरतीतैर्हि रूपैर्नामभिरेव च ॥ १ ॥
यस्मिन् योग्यः पुरा क्लृप्तो यस्मिन् देशे यथा स्थितिः ॥
तत्र तस्यानुरूपेण प्रजासर्गः प्रवर्तते ॥ २ ॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥ ३ ॥ स्मृतिः ।

१२—द्वादशं मतम्

अथ द्वादशं वेदान्तदर्शनमतम् । नित्यसिद्धेभ्यो वेदशब्देभ्य एवेश्वरो जगन्निर्मिमीते । शब्दा आरम्भणाः, शब्दाः प्रतिष्ठाः, शब्देभ्यो विभागाश्च । तथा च श्रूयते—

१—वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाचैव विश्वं बहुरूपं निबद्धम् ॥
तयैवैकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते । इति ।

२—अथो वागेवेदं सर्वम् । (ऐतरेयश्रुतिः)

३—एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमासवः । विश्वान्यभिसौभग इति ॥
एत इति प्रजापतिर्देवानसृजत ॥ असृग्रमिति मनुष्यान् ॥ इन्दव इति पितॄन् ॥
तिरः पवित्रमिति ग्रहान् । आसव इति स्तोत्रम् । विश्वानीति सहस्रम् । अभिसौभगेत्यन्याः प्रजाः ॥

४—स भूरिति व्याहरत् । स भूमिमसृजत । स भुव इति व्याहरत् । सोऽन्तरिक्षमसृजत् । स स्वरिति व्यहरत् स दिवमसृजत । (श्रुतिः)

५—भूरादिशब्देभ्य एव मनसि प्रादुर्भूतेभ्यो भूरादीन् लोकान् प्रादुर्भूतान् सृष्टान् दर्शयति ॥ (शारी० भाष्य० १ । ३ । ३८) इति ॥

६—वेदेन नामरूपे व्याकरोत् सदसती प्रजापतिः ॥ (श्रुतिः) ॥

७—सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (मनुः १ । २१)

८—नामरूपे च भूतानां कर्म्मणां च प्रवर्तनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः । स्मृतिः ॥

९—नामरूपे च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ (स्मृतिः)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३—त्रयोदशं मतम्

अथ त्रयोदशं मतमप्येवमन्ततो भवति ॥ नित्यसिद्धादस्माद्वेदादीश्वरः पूर्वकल्पस्थितिं स्मृत्वा सुप्तोत्थितो यथा स्मृत्वा पूर्वदिनक्लृप्तान् सर्वानेव व्यवहारानभिमनुते तथैतान् सर्वानेव विश्वव्यवहारान् प्रवर्तयति तदाहुर्वेदान्तदर्शनाचार्य्या विद्वांसः—

१—ननु क्षणिकत्वाभावेपि वियदादिवदादिमत्त्वेन परमेश्वरकर्तृकतया पौरुषेयत्वं वेदानामिति तव सिद्धान्तो भज्येतेति चेन्न । न तावत् पुरुषेणोच्चार्य्यमाणत्वं पौरुषेयत्वम् । गुरुमतेऽपि पौरुषेयत्वापत्तेः । नापि पुरुषाधीनोत्पत्तिमत्त्वं पौरुषेयत्वम् । नैयायिकाभिमतपौरुषेयत्वानुमानेऽस्मदादीनां सिद्धसाधनापत्तेः । किन्तु सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम् ॥ तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वरः पूर्वसिद्धवेदसमानुपूर्वीकं वेदं विरचितवान् । न तु तद्विजातीयं वेदमिति न सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वं वेदस्य । भारतादीनां तु सजातीयोच्चारणमनपेक्ष्यैवोच्चारणमिति तेषां पौरुषेयत्वम्—इति । (वेदान्तपरिभाषा)

१४—चतुर्दशं मतम्

एभिस्त्रयोदशमतैर्वेदानां नित्यसिद्धत्वमाख्यातं भवति । अथातः परं वेदानामीश्वरकृतत्वं प्रतिज्ञायते सप्तसु मतेषु ।

तत्र तावच्चतुर्दशं मतं यथा—नायं वेदः साक्षादीश्वरो न वा स ईश्वरसमानः ईश्वरस्य शरीरानाश्रितत्वान्नित्यत्वादनादित्वाच्च । वेदस्य तु शरीरव्यपाश्रितत्वादनित्यत्वात् सादित्वाच्च । नोत्पद्यते स ईश्वरः । वेदः पुनरयमीश्वरादुत्पन्नः । प्रतिकल्पं सृष्ट्यादावीश्वरो वेदान् जनयति । विश्वस्येतरपदार्थवदयं वेदोऽपि ईश्वरकृतः सृष्टिकल्पे उत्पद्यते प्रलयकल्पे विनश्यति । इति न्यायतत्त्वचिन्तामणिकारमतम् ॥ तदुक्तम्

१—प्रतिमन्वन्तरञ्चैषा श्रुतिरन्या विधीयते ॥ इति पुराणे ।

२—ऋचो यजूंषि सामानि शरीराणि व्यपाश्रिताः ।
जिह्वाग्रेषु प्रवर्तन्ते यत्नसाध्या विनाशिनः ॥ १ ॥
न चैवमिष्यते ब्रह्म शरीराश्रयसंभवम् ।
न यत्नसाध्यं तद् ब्रह्म नादिमध्यं न चान्तवत् ॥ २ ॥
ऋचामादिस्तथा साम्नां यजुषामादिरुच्यते ।
अन्तश्चादिमतां दृष्टो न त्वादिर्ब्रह्मणः स्मृतः ॥ ३ ॥
अनादित्वादनन्तत्वात् तदनन्तमथाव्ययम् ।
अव्ययत्वाच्च निर्दुःखं द्वन्द्वाभावस्ततः परम् ॥ ४ ॥ (भा० शा० मोक्षधर्म)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदेऽपि वेदानामीश्वरादुत्पत्तिः श्रूयते—

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत—भूयान् स्यां प्रजायेयेति । सोऽश्राम्यत् स तपोऽतप्यत । स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम् । सैवास्मै प्रतिष्ठाऽभवत् । तस्मादाहुः—ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति । तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत । सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात् । वागेवास्य साऽसृजत ॥ सोऽकामयत । आभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेयेति । सोऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत् । तत आण्डं समवर्तत । तदभ्यमृशत्—अस्त्विति । भूयोऽस्तु—इत्येव तदब्रवीत् । ततो ब्रह्मैव प्रथममसृजत—त्रय्येव विद्या । तस्मादाहुः—ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजम्—इति । अपि हि तस्मात् पुरुषाद् ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यत । तदस्य तन्मुखमेवासृज्यत । इति उखासंभरणश्रुतिः ।

१५—पञ्चदशं मतम्

अथ पञ्चदशं मतमुच्यते । यथा नित्यानां परमाणूनां संयोगसंगठनसिद्धाः शरीरवस्त्रगृहग्रामनगरोपवनारण्यादयः सर्वेऽप्यनित्या दृश्यन्ते एवमेव नित्यानां शब्दानां संयोगसंगठनसिद्धाः पदवाक्यादियोजनाक्लृप्ता इमे वेदग्रंथा अप्यनित्याः सन्ति । अपि स ईश्वरो यथा नित्यैर्भूतपरमाणुभिरात्मयोगेन चैतान् सूर्यचन्द्र-पृथ्वीपर्वतप्रभृतीनजनयत् तथैव स नित्यैः शब्दैरात्मयोगेन चैतान् वेदानजनयत् । अत्रेदं श्रुतिवचनं भवति—

स तया वाचा तेनात्मना इदं सर्वमसृजत—यदिदं किञ्च । ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांसि यज्ञान् प्रजाः पशून् इति ॥ (शत० बृ० आ०)

१६—षोडशं मतम्

अथ षोडशं मतमुच्यते । सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् सर्वतंत्रस्वतन्त्रोऽयं भगवानीश्वरः स्वेच्छाशक्तिप्रभावान्निरुपादानमेवैतं वेदं जगच्चोत्पादयति न तु वेदनिर्म्माणाय नित्यान् शब्दान् जगन्निर्म्माणाय वा नित्यान् परमाणूनपेक्षते । यथेमे सोममयाः पर्वताः आपोमयाः समुद्राः तेजोमयाः सूर्यास्तथैव चैते शब्दमया वेदाः स्वेच्छया तेनेश्वरेण निर्मिताः । यथा पर्वतानां शिलाभिः कारवोऽन्यान् शिलागृहान् यथा वा समुद्रजलान्यादाय मेघास्तत्र तत्र सिञ्चयन्तोऽन्यान् जलाशयान् यथा वा सूर्यज्योतिरादाय चन्द्रादयोऽन्यान् प्रकाशान् जनयन्ति एवमेवैतान् वेदशब्दानेवादाय सर्वानन्यान् पुराणकाव्यादीन् वाङ्मयनिबन्धाननित्यान् जनयामासुः । अत्रैतानि वचनानि श्रूयन्ते—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥

२—दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥

३—तस्माद् ऋचः सामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे ऋतवो दक्षिणाश्च । अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः । मुण्ड० क० २। १ ।

४—प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्रे आसीत् । नाहरासीन्न रात्रिरासीत् । स तपोऽतप्यत । तस्मात् तेपानाच्चत्वारो वेदा अजायन्त ॥ (श्रुतिः)

१७—सप्तदशं मतम्

अथ सप्तदशं मतमुच्यते । जगतो वेदस्य च निर्माताऽयमीश्वरो निराकारः । अत एव शरीरधारिणः कस्यचिज्जीवस्य हृदये प्रादुर्भावयन्नेवैतं वेदं तदुपदेश-श्रवणद्वारैव लोके प्रवर्तयति । न तु साक्षादुपदिशति । तथा चैते महर्षयः स्वस्व-हृदये ईश्वरप्रसादात् स्वयं स्फुरितं तदीश्वरप्रदत्तमेवैनं वेदं लेभिरे । एतदेवाह पुराणकारः । यथोक्तं भागवते—"तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये" इति ॥

१८—अष्टादशं मतम्

अथाष्टादशं मतमनुसंधेयम् । ईश्वरो लोकत्रयाधिष्ठातृदेवताभिरग्निवायु-सूर्यैर्लोकत्रयरसानग्निविशेषानुपादाय त्रीन् वेदानुदपादयत् । अग्नेर्ऋग्वेदम् वायोर्यजुर्वेदं सूर्यात् सामवेदमिति ॥ तथा च श्रूयते—

१—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् । तेषां तप्यमानानां रसान् प्राबृहत् । अग्निं पृथिव्याः । वायुमन्तरिक्षात् । आदित्यं दिवः । स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत् । तासां तप्य-मानानां रसान् प्राबृहत् । अग्नेर्ऋचः । वायोर्यजूंषि । सामान्यादित्यात् । स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत् । तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्राबृहत् । भूरिति ऋग्भ्यः । भुवरिति यजुर्भ्यः । स्वरिति सामभ्यः । छान्दो० उ० ४ । १९ ॥

२—प्रजापतिरकामयत—प्रजायेय भूयान् स्यामिति । स तपोऽतप्यत । स तपस्त-प्त्वेमान् लोकानसृजत—पृथिवीमन्तरिक्षं दिवमिति । तान् लोकानभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त—अग्निरेव पृथिव्या अजायत । वायुरन्तरिक्षाद् । आदित्यो दिवः । तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त । ऋग्वेद एवाग्नेरजायत । यजुर्वेदो वायोः । सामवेद आदित्यात् । तान् वेदानभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त । भूरित्येव ऋग्वेदादजायत । भुव इति यजुर्वेदात् । स्वरिति सामवेदात् । तानि शुक्राण्यभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त—अकारः उकारो मकार इति । तानेकधा समभरत् । तदेतद् ओ३मिति ॥ ० ॥ ऐत० ब्राह्मण ५ । ५ । ३२ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥ (मनुः)

१९—ऊनविंशं मतम्

अथोनविंशं मतमुच्यते। अग्निवायुसूर्येभ्यस्मात् सूर्य्यत एवैतां त्रयीं विद्यामीश्वरोऽजनयत्। तथा चाह--

तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्॥ वह्निरादित्यो भवति। स तिस्रो वाचः प्रेरयति ऋचो यजूंषि सामानि। ऋतस्यादित्यस्य कर्म्माणि ब्रह्मणो मतानि। एष एवैतत् सर्वमक्षरत्॥ (यास्कनिरुक्तिः परिशिष्टः १४)॥

२०—विंशं मतम्

अथ विंशं मतं भवति। यज्ञादुत्पन्नं वेदं लोका ऋषिष्वन्वविन्दन्। ऋषयश्चैते नानादेशीया आम्नायभेदेनास्य नानाशाखा अकल्पयन्। सप्तर्षयस्तु ऋषीणां सत्तमा वेदविज्ञानमतितरां समवर्द्धयन्। तदाह—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्। तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसंनवन्ते॥ ऋ० ८। २। २३। ३॥

२१—एकविंशं मतम्

अथेश्वरावतारकृता वेदा इति तृतीयो मतविभागः। तत्र पञ्चमतानि॥ तत्र तावदेकविंशं मतं यथा—

ईश्वरावतारेण ब्रह्मप्रजापतिनाऽयं वेदो विनिर्म्मितः। द्विविधः खल्वयमीश्वरोऽभिज्ञायते--निर्गुणः सगुणश्चेति। सगुणोऽप्येष द्विविधः। धर्म्मोपहितो धर्म्मविशिष्टश्च। तत्रायं विशिष्टस्त्रिविधः ईश्वरात्मा, जीवात्मा, शिपिविष्टात्मा चेति। तत्राप्येष ईश्वरात्मा त्रिविधः—सर्वज्ञः, हिरण्यगर्भः, विराट् चेति। जीवात्मापि त्रिविधः—क्षेत्रज्ञात्मा, महानात्मा, भूतात्मा चेति। अथ शिपिविष्टोपि त्रिविधः—असंज्ञः, अन्तःसंज्ञः समरभ्रूणादिरूपः, ससंज्ञश्चेति॥

स एतावानेष ईश्वरप्रपञ्चः। तत्रायं हिरण्यगर्भो ब्रह्मा नाम प्रजापतिः। तेनायं वेदो विनिर्मितः। उक्तं चैवं श्रुतिपुराणेषु—

१—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीद् इति श्रुतिः।

२—अध्यक्षं सर्वभूतानां धातारमकरोत् स्वयम्।

वेदविद्याविधातारं ब्रह्माणममितद्युतिम्॥ म० भा० शा० २०७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२२—द्वाविंशं मतम्

अथ द्वाविंशं मतं यथा—मत्स्यावतारेणायमुद्धृतो वेदः। यथाह मणिकारः ननु अशरीरात् कथं वेदघटादिशब्दव्यवहारसंप्रदायः। उच्यते। सर्गादावदृष्टोपगृहीतभूतभेदान्मीनशरीरोत्पत्तावदृष्टवदात्मसंयोगाददृष्टसहकृतप्रयत्नवदीश्वरसंयोगाद्वा सकलवेदार्थगोचरज्ञानाद् विवक्षा सहितान्मीनकलेवरकण्ठताल्वादिक्रियाजन्यसंयोगाद् वेदोत्पत्तिः॥ एवं कुलालादिशरीरावच्छेदेनादृष्टसहकृतप्रयत्नवदीश्वरसंयोगात् तद्बुद्धीच्छासहितचेष्टोत्पत्तौ सकलघटानुकूलव्यापारो घटोत्पत्तिः॥ एवं प्रयोज्यप्रयोजकज्ञानाय व्यापाराभिमतशरीरावच्छेदेनापि अदृष्टसहकृतेश्वरज्ञानेच्छाप्रयत्नादेव व्यवहारः॥ ततस्तत्सुशीलो बालो व्युत्पद्यते। सोऽयं भूतावेशन्यायः। यत्तु यथा लिप्यादिना मौनिश्लोकोऽनुमाय पठ्यते तथा सर्गान्तरोत्पन्नतत्त्वज्ञानवता भोगार्थं सर्गादावुत्पन्नेन मन्वादिना सर्वज्ञेन ईश्वराभिप्रायस्य वेदः साक्षात्कृत्यानूद्यते ततोऽग्रिमसंप्रदायः। स एव कायव्यूहं कृत्वा वाग्व्यवहारं करोतीति मतम्। तन्न। प्रतिसर्गाद्यनन्तसर्वज्ञकल्पनायां गौरवात्। तेषामेवाक्षित्यादिकर्तृत्वसंभवेन ईश्वराननुगमाच्च।

२३—त्रयोविंशं मतम्

अथ त्रयोविंशं मतं यथा। यावन्तोऽचेतनाः पदार्था जगति भासन्ते तेषामभिमानी एकैको देवो भवति। स च मनुष्येण तुल्यो देहधारी चेतनो जीवः प्रतिपत्तव्यः॥ ऊर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालस्तु मूलतः सर्गः। मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः।। इत्येवं सांख्यशास्त्रे आप्यवायव्यसौम्यचतुर्दशविधभूतसर्गेषु सत्त्वविशालत्वेनायमष्टविधो देवसर्गरूपः सौम्यजीवश्चरणरहितोऽष्टाविंशतीन्द्रियश्चन्द्रज्योतिषि सर्वत्र यातायातं कुर्वाणोऽभ्युपगम्यते। तेषु त्रयो देवाः श्रेष्ठाः। अग्निः, वायुः, सूर्यश्चेति। तानीमानि वर्गनामानि न तु व्यक्तिविशेषनामानि। अनन्ता एवाग्निजातीयव्यक्तयो वायुजातीयव्यक्तयः सूर्यजातीयव्यक्तयः काले काले जन्ममृत्युभाजो भवन्ति। यथा वयं वायव्यप्राणाः, यथा मत्स्यमकरादय आप्यप्राणास्तथैते सौम्यप्राणाः सोमत एव निश्वासप्रश्वासं कुर्वन्तो जीवन्ति। जन्मसिद्धाश्चैषामष्टसिद्धयो नवतुष्टयश्च। तैरेव चैतैरग्निवायुसूर्यैस्त्रिभिर्देवैर्जीवविशेषैरिमे त्रयो वेदा मनुष्यद्वारा यज्ञकर्मसंसाधनार्थं विनिर्मिताः। अग्निना ऋग्वेदो वायुना यजुर्वेदः सूर्येण सामवेद इति॥ ते चैते वेदा मनुष्यविशेषद्वारैव काले काले भूमौ प्रकटीकृताः। ईश्वरावताराश्चैते देवाः अष्टसिद्धिमाहात्म्याद् ज्ञानविशेषसंपन्नाः शक्तिविशेषसंपन्नाश्चेष्यन्ते। अत एवैते वेदा ईश्वरावतारकृता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यस्ति प्रतिपत्तिः ॥ अत्रेयमैतरेयश्रुतिर्भवति । ऋग्वेद एवाग्नेरजायत । यजुर्वेदो वायोः । सामवेद आदित्यादिति । (५ । ३२)*

२४—चतुर्विंशं मतम्

अथ चतुर्विंशं मतं यथा—ये तावदिमे चेतनास्त्रयो देवा उक्ताः तेषां श्रेष्ठः सूर्य्यः । तत एव वाय्वग्निजन्मनो बृहद्देवतायां शौनकेनोक्तत्वात् । स एष सूर्य्य एवेश्वर-विभूतिरीश्वरनियुक्तो वेदान् जनयामास निरुक्तपठितात् तिस्रोवाच ईरयतीति मन्त्रवर्णात् ।

२५—पञ्चविंशं मतम्

अथ पञ्चविंशं मतं यथा—सर्वहुद्यज्ञो यज्ञाभिमानी विष्णुर्देवः स इमान् वेदानजनयत् । तथा च श्रुतिराह ॥ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायतेति ॥

२६—षड्विंशं मतम्

उक्तं वेदानामीश्वरसिद्धत्वम् । अथातः परं सप्तसु मतेषु प्रकृतिसिद्धा वेदा इति चतुर्थं मतमुच्यते ।

तत्र षड्विंशं मतं यथा—य एते प्रकृतिसिद्धा इमेऽग्निवायुसूर्य्यास्त्रयो देवाः त एवैते त्रयो वेदा इष्यन्ते । तेषामेवैतेषु प्रतिपाद्यत्वात् । व्याकरणादिविद्याप्रतिपादक-शास्त्रेषु व्याकरणादिशब्दव्यपदेशवत् वेदेष्वप्यग्न्यादिशब्दव्यवहारस्याप्रति-बन्धादग्न्यादिवद् वेदानां प्रकृतिसिद्धत्वमास्थीयते । अत एव चाथर्ववेदो वेदानां देवानां चाभेदं दर्शयति—

१—ये अर्वाङ् उत वा पुराणे वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ॥ आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं तृतीयं च हंसम् इति । (अथ० सं० १० । ८) (तै० आ० २ अ)

२७—सप्तविंशं मतम्

अथ सप्तविंशं मतं यथा—वेद एव सूर्य्यः, सूर्य एव वायं वेदः । यथा तावदागम-शास्त्रे पृथ्वीपदार्था विशिष्य व्याख्यायन्ते एवमेवैतस्मिन् निगमशास्त्रे वेदे सूर्य्यपदार्था विशिष्य निरूप्यन्ते । सौरब्रह्माण्डमयजगद्विज्ञानमेवैष वेदो नाम शास्त्रम् । अत एवैष सूर्य्यस्त्रयीविद्यावेदः श्रूयते—

---

* जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वादिति वेदभाष्यकारसायणाचार्य्यवचनं चेहोपष्टम्भकं द्रष्टव्यम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—सैषा त्रयी विद्या तपति य एष तपति । आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । तत्र ता ऋचः । तद् ऋचां मण्डलम् । स ऋचां लोकः ॥ अथ य एष एतस्मिन्मण्डले अर्चिर्दीप्यते तानि सामानि । स साम्नां लोकः । अथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुषः तानि यजूंषि । स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति । य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ॥ (नारायणोपनिषत्)

२—यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् । ता ऋचः स ऋचां लोकः । अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् । तानि सामानि स साम्नां लोकः ॥ अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निः । तानि यजूंषि स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति । तद्धैतदप्यविद्वांस आहुः—त्रयी वा एषा विद्या तपति इति । वागेवैतत् पश्यन्ती वदति । (शत० १० । ५)

३—सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता—ऋचो यजूंषि सामानि ॥

४—सा या सा वाग् असौ स आदित्यः ।

५—मण्डलमेव ऋचः । अर्चिः सामानि । पुरुषो यजूंषि ॥ शत० १० । ५ ॥

२८—अष्टाविंशं मतम्

अथाष्टाविंशं मतं यथा—यज्ञो वेदः । वेदो यज्ञः । सर्वस्यैवास्य यज्ञस्वरूपनिरूपकत्वात् । हौत्रमौद्गात्रमाध्वर्य्यवमिति यज्ञरूपाणि तानि मन्त्रसाध्यानि । ते मन्त्रा वेदः ॥ श्रूयते चैवम्—

१—ब्रह्म वै यज्ञः ।

२—सैषा त्रयीविद्या यज्ञः ।

३—एतावान् वै सर्वो यज्ञो यावानेष त्रयो वेदाः । (शत० ५ । ५ । ६) ॥

२९—ऊनत्रिंशं मतम्

अथोनत्रिंशं मतं यथा । प्रजापतिमारभ्यायं समस्तो जगत्प्रपञ्चः कालचक्रगत्योत्पद्यते । तत एवायं वेदोऽपि कालचक्रानुसाराद्भवति । उक्तं च—

सप्तचक्रा वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं त्वक्षः ॥

स इमा विश्वा भुवनान्यर्वाङ् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ १ ॥

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ॥ ३ ॥

काले ह भव्यं भूतं च मन्त्रो अजनयत् पुरा ॥

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ४ ॥ अथर्व० १९ । ५३ । ५४ ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३०—त्रिंशं मतम्

अथ त्रिंशं मतमुच्यते ॥ वक्तृपुरुषानपेक्षं यत्र नानाविधा अलौकिकविद्या उपदिष्टा दृश्यन्ते न ते वेदा मनुष्येणोपदिष्टाः संभवन्ति । यथा खलु पर्वतसमुद्रादिपदार्थनिर्म्माणं मनुष्यशक्तिबाह्यं तथैव खलु वेदनिर्माणमपि सृष्ट्यादौ प्रकृतिप्रभावात् स्वयमेव समभवदिति प्रत्येतव्यम् । यदि तावदीश्वरः कश्चिदभ्युपगम्येत अथापि स क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टत्वाद् रागद्वेषशून्यत्वाच्च प्रवृत्तिनिरपेक्षो वेदं न कुर्य्यात् न वाऽसौ जगत्कुर्य्यात् । आतश्च यथा सूर्य्यचन्द्रपृथिव्यादयो भावाः सृष्ट्यादौ प्रकृत्या स्वयमेवोदपद्यन्त एवमेवायं वेदोऽपि संभाव्यते । त्रिविधा हि विश्वपदार्था व्यवतिष्ठन्ते—नित्यसिद्धाः प्रकृतिजाताः पुरुषकृताश्चेति । आकाशादयोऽनुत्पन्ना नित्याः । अथ सूर्य्यचन्द्रपृथिव्यादयः स्वयमुत्पन्नतया प्राकृताः । अथ घटपटगृहच्छत्रादयः पुरुषोत्पादितत्वात् पौरुषेयाः । इत्येवमभिमन्यन्ते । वस्तुतस्तु तेऽप्येते भेदा व्यवहारबुद्ध्यैवोपकल्पिताः संभाव्यन्ते । सूक्ष्मदृष्ट्याऽभिपश्यतां तु न नित्यो नामानुत्पन्नः कश्चिदर्थः प्रतिपद्यते न वा पुरुषेणोत्पादितः कश्चिदर्थो व्यतिरिच्यते । अद्यत्वे वा परार्ध्यकाले पुरात्वे वा सर्वेषामेषां जगदर्थानां जन्ममृत्युस्वरूपसंगठनस्वभावमनोवृत्तिचेष्टाकर्म्मणामनित्यत्वात् प्रकृतिपारतन्त्र्येणैवोत्पन्नत्वाच्च साधर्म्यदर्शनात् । तथा चायं वेदोपि निःसंदिग्धं द्यावापृथिव्यादिवत् सृष्ट्यादौ स्वयमेवोत्पन्नः प्रकृतिसिद्धः पदार्थः । तथा चैतदर्थे श्रुतिः श्रूयते—

१—सैषा त्रयी विद्या प्रथमं जायते । यथैवादावमुत्राजायतैवम् । (शत० २ । ३ । १०)

२—वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः । म० भा० शा० कपिलवाक्यम् ॥

३१—एकत्रिंशं मतम्

अथैकत्रिंशं मतं यथा—लोकत्रयतो वेदत्रयमुदपद्यत । पृथिव्या ऋग्वेदः । अन्तरिक्षाद् यजुर्वेदः दिवः सामवेदः इति । एतल्लोकत्रयपदार्थविद्यानामेवैतेष वेदेषु क्रमेणोपदिष्टत्वात् । अत एव च ऋग्वेदस्यादौ पृथ्वीदेवोऽयमग्निः प्रस्तूयते । अग्निमीडे पुरोहितमिति । अत्र पुरोहितमिति पृथ्वीलोकलिङ्गम् ॥ अथ यजुर्वेदस्यादावन्तरिक्षदेव एष वायुरभिनीयते—"इषे त्वा, ऊर्जे त्वा, वायवः स्थेति"—वायुरयमग्निविशेष इत्यतोऽग्निं पठति । "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामीति ॥" अथ सामवेदस्यादौ द्युलोकदेवोऽसौ दिव्योऽग्निः प्रार्थ्यते—"अग्न आयाहि वीतये" इति । आयाहीति द्युलोकलिङ्गम् ॥ दिवः स्थानात् पृथिव्यामागमनस्यार्थप्राप्तत्वात् । अपि च श्रूयते वचनम्—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्। तामभ्यतपत्। तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त—भूर्भुवः स्वरिति। (छां० उ० २। २३)॥

३२—द्वात्रिंशं मतम्

अथ द्वात्रिंशं मतं भवति। यथैते त्रयो लोकाः सन्ति तथा त्रीणि छन्दांसि, त्रयः स्तोमाः, त्रीणि सवनानि च भवन्ति। एषां विशिष्य व्याख्यानं वेदसमीक्षायां सप्तमे वेदधर्मव्याख्याने चास्माभिः कृतमस्तीति जिज्ञासुभिस्तत्र द्रष्टव्यम्॥ लोकवदेवैते वेदत्रयानुबन्धाः प्रतिपत्तव्याः॥

इत्थं मतसप्तके प्रकृतिसिद्धत्वं वेदानामाख्यातम्। अथातः परं मतसप्तके महर्षिकृतत्वं वेदानामाख्यायते॥ तदिदं पञ्चमं मतं विद्यात्॥

३३—त्रयस्त्रिंशं मतम्

तत्रादौ त्रयस्त्रिंशं मतं यथा—अग्निवायुसूर्य्यास्त्रयो देवजातीया जीवविशेषाः सत्वविशाला वैज्ञानिकसिद्धान्ते सिद्धाः। तेषु देवेषु केचिदग्निवायुसूर्य्यास्त्रैलोक्य-पदार्थानां साक्षात्कारात् तदनुवक्तारो मनुष्यशिक्षार्थं बभूवुः। तथा चैते द्रष्टारः साक्षात्कृतधर्माणः सन्तोऽनूचाना अभवन्निति कृत्वा देवर्षय आख्यायन्ते। तैर्देवर्षिभिः प्रयुक्ता वाचो वेदमन्त्राः स्युः॥ तदभिप्रायेणैवोक्तं वेदभाष्यकारेण सायणाचार्य्येण—"जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वादिति"। अत्र मते देवानामेषां सौम्य-जीवानमृषित्वमास्थीयते इति विशेषः॥

३४—चतुस्त्रिंशं मतम्

अथ चतुस्त्रिंशं मतमुच्यते। मनुष्यर्षिवर्गे अजपृष्णिनामकास्तपस्विनो वेदमन्त्र-प्रवक्तार आसन्। तथा चोक्तं श्रुतौ—

१—अजान् ह वै पृष्णींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भु अभ्यानर्षत्। तद् ऋषयोऽभवन्। त एतं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्॥ इति॥

३५—पञ्चत्रिंशं मतम्

अथ पञ्चत्रिंशं मतं भवति। ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः—इत्येते त्रयो वेदा एकाग्निब्रह्म। तज्ज्येष्ठं ब्रह्म। तथा भृगुवेदः। अङ्गिरोवेदः—इत्येतौ द्वौ वेदावेकं सोमब्रह्म तत् सुब्रह्म॥ ज्येष्ठब्रह्मलक्षणोऽयमग्निर्लोकत्रयायतनभेदात् त्रेधा भिद्यते—अग्निर्भूस्थानः। वायुरन्तरिक्षस्थानः। सूर्य्यो द्युस्थान इति। तेऽमी त्रयो लोका भिद्यन्ते। तस्मात् त्रयो देवा भिद्यन्ते। तस्मादेव चैषां त्रयो वेदा भिद्यन्ते॥ ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद इति॥ अथ पुनरस्ति वै चतुर्थो देवलोक आप इति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रुतिसिद्धान्तनिगमादापो नामैकश्चतुर्थो लोकः । तत्रैकस्मिन्नेव लोके द्विविधः सोमः प्रतितिष्ठति—भृगुश्चाङ्गिराश्चेति । आपो वायुः सोम—इति भृगवः । अग्निः यमः आदित्य इत्यङ्गिरसः । तेनैतानि षड्ब्रह्माण्येकमेव लोकमधितिष्ठन्ति यतोऽयमेषामेको लोकस्तस्मादयमेको देवः सोम एव । अत एव चैषामयमेको वेदोऽथर्ववेद इति । तथा चैते चत्वारो वेदाः सिद्धाः ॥ तेषां प्रवर्तकश्चतुर्मुखो ब्रह्मा । अत्रेदं बोध्यम् । वेदशास्त्र-प्रवर्तको जगद्गुरुर्ब्रह्मा नामोच्यते । तत्र चत्वारो गुरवो वैज्ञानिकाचार्य्या भिन्नभिन्नै-र्मुखैर्भिन्नभिन्नान् वेदान् प्रवर्तयामासुः । तेषु चतुर्ष्वपि वेदप्रवर्तकत्वसामान्याद् व्यासज्ज्यवृत्त्यैकं ब्रह्मत्वमुपपद्यते । तस्मादेको ब्रह्मा चतुर्मुखो व्यपदिश्यते । अथवा विवक्षाभेदात् पुनरिमे चत्वारो ब्रह्माणो द्वैविध्येन विभज्यन्ते एकस्तावदादिब्रह्मा स्वयंभूर्नाम । अथ हिरण्यगर्भो ब्रह्मा द्वितीयः । अपान्तरतमाः प्राचीनगर्भो नाम तृतीयः । अथ भृगुर्वारुणिरंगिरा ब्रह्मसुतश्चेति द्वौ संहत्यैकोऽथर्वा नाम ब्रह्मा चतुर्थः ॥ तत्रा स्वयंभूरादिब्रह्मा देवसंस्कृतात्मत्वाद्देवानां सर्वतः प्रथमजो देवः पुष्करनाम-स्थानाभिजनः । अथ भृगुर्वारुणिः । स च वरुणो बाह्लीकाभिजनः । तस्मादयं भृगुरपि पूर्वं बाह्लीकाभिजनः सन् पश्चादस्य ब्रह्मणो दत्तकपुत्रो भूत्वा पुष्करोपगतोऽभवत् । अंगिराश्चैवं पुष्कराभिजनः । अथायमपान्तरतमाः प्राचीनगर्भो ब्रह्मणः कृत्रिमपुत्रः सरस्वतीग्रामाभिजन आसीत् ॥ वितस्तासिन्धुसंगमस्थानसंनिहितप्रान्ते चायं सरस्वती-नदीसंगमोपलक्षितः सरस्वतीग्रामः पुराणे स्मर्य्यते ॥ तेष्वेतेषु स्वयंभूहिरण्यगर्भ-प्राचीनगर्भास्त्रयो ब्रह्माणः स्वर्गभूमौ प्राग्मेरुस्थाने हिरण्यशृंगपर्वतोपरि जम्बूनद्या विनिर्गमासन्नस्थाने यजुर्नद्याः संस्रवस्थाने तिष्ठन्तस्त्रयीवेदं प्रादुर्भावयामासुः । अथार्वाग् भृग्वंगिरसौ बाह्लीकप्रान्ते स्वं वेदमुपदिदिशतुः । तस्मादयमथर्ववेद इत्युच्यते । अत्र स्वयंभूरादिब्रह्मा पिता । हिरण्यगर्भप्राचीनगर्भभृग्वंगिरसो ब्रह्मणो मानसपुत्राः पर्षद्-ब्रह्माणः । स एक एवादिब्रह्मा हिरण्यगर्भादिभिश्चतुर्भिर्मुखैर्वेदं प्रावर्तयतेति कृत्वा चतुर्मुखो ब्रह्मा वेदमजनयदिति वा चतुर्मुखत्वोपपत्तिं केचित् संभावयन्ति । सर्वथापि चतुर्भिर्मुखैश्चत्वारो वेदाः प्रादुरभूवन्निति सिद्धान्तः ।

अत्रेदं महाभारतवाक्यं द्रष्टव्यम् ।

१—अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्य्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥ (शान्ति० मोक्ष०)

२—ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ (मुण्डकोपनिषत् १-१)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३६—षट्त्रिंशं मतम्

अथ षट्त्रिंशं मतं भवति। ऊर्ध्वरेतसामृषीणां वाक्यं वेदः॥ इह खलु पृथिवीलोके पुरायुगे परमाश्चर्य्यमयविश्वविज्ञानाय प्रयत्नवतां वैज्ञानिकानां विदुषां समवाये प्रवर्तमाने विज्ञानविद्यातिशयिताभ्युन्नतिः क्रमेणाभूत्॥ तत्र गृहस्थानामृषीणां पञ्चाशत्सहस्राणि कालेनाजायन्त। आबालब्रह्मचारिणां तूर्ध्वरेतसामष्टाशीतिसहस्राणि सांसारिकस्त्रीपुत्रादिसुखसाधनपरित्यागपूर्वकं परविद्याभ्युन्नतिसाधनप्रवणानि जगत्तत्त्वानुसंधानपरायणान्यासन्। तेषां योगविद्यानिष्णातानां योगदृष्टिमतां परिपूर्णगवेषणाफलमेवेदमुपलभामहे यदद्यत्वे वेदशास्त्रं नामेदमपूर्वं विज्ञानं पश्यामः। एतावता महता कालेनापि यत्समकक्षं शास्त्रं नैव केनाप्याविर्भावितमिति परमं गौरवस्थानमस्माकम्। दृश्यते चायमर्थो भारतीयेतिहासग्रन्थे—

१—अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
प्रजावतां च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव॥

(महाभारत सभापर्व ११ अध्याये॥)

२—ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे।
लोकसंभवसंदेहः समुत्पन्नो महात्मनाम्॥
तेऽतिष्ठन् ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थाय निश्चलाः।
त्यक्ताहाराः पवनपा दिव्यं वर्षशतं द्विजाः॥
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत्।
दिव्या सरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात्॥

(महाभा० शान्ति० मोक्षधर्म—१८३ अध्या०)

३—१—यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः॥ (शत० ब्रा०)
२—एष वै ऋषिरार्षेयो यः शुश्रुवान्॥ (शत० ब्रा०)
३—तस्मादेतद् ऋषिणाऽभ्यनूक्तम्॥ (शत० ब्रा०)
४—तदेतद् ऋषिः पश्यन्नभ्यनूवाच॥ (ऐत० ब्रा०)
५—ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः। तानेव तदभ्यतिवदति। (ऐ० ब्रा० ६।४)
६—नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः॥ मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्रादुर्दैवीं वाचमुद्यासम्॥ (मैत्राय० ब्रा०)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७—यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण । तां दैवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥

८—ऋषिवचनाच्च । ऋषिवचनं वेदः । यथा किञ्चिदिज्यार्थं मधुरमाहरेत् इति ॥

(सुश्रुतः—सू अ० ३०) ॥

३७—सप्तत्रिंशं मतम्

अथ सप्तत्रिंशं मतमुच्यते । वसिष्ठादिसप्तर्षिवाक्यं वेदः । एष खलु सप्तर्षिवर्गोऽनेकधा दृश्यते । तत्र त्रयो मुख्याः वेदप्रवर्तकाः, गोत्रप्रवर्तकाः, सृष्टिप्रवर्तकाश्चेति ॥ तेषु सृष्टिप्रवर्तकाः प्राणा ऋषयः इमे खल्वेकर्षयोऽन्ये सप्तर्षयोऽन्ये । एषामसंख्यत्वेपि प्राजापत्यसृष्टिप्रयोगसाहित्यापेक्षः सप्तशब्दः । चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छमित्येवं ते स्वभावतः सप्तैव सहयुक्ता एकं प्राजापत्यरूपमादधते । एषामेव सृष्टिकर्तॄणां प्राणानां ये द्रष्टारो विद्वांसः ते तत्प्राणकृतात्मत्वात् तत्प्राणसमानशब्दाः लोके प्रसिद्ध्यन्ति । साक्षात्कृतभृगुप्राणो विद्वान् भृगुमहर्षिर्नाम । एवं साक्षात्कृताङ्गिरःप्राणो विद्वानङ्गिरा महर्षिरित्यादिः ॥ त एते प्राणिरूपाः सुप्रसिद्धाः केचित्सप्तर्षयो गोत्रप्रवर्तका इष्यन्ते । विद्यामहिम्ना सुप्रसिद्धानां तेषां वंशपरम्पराया अपि सुप्रसिद्धत्वात् तथैव लोके व्यवहारभूयस्त्वात् ॥ अथ वेदप्रवर्तकास्त्वमी ऋषयो द्विविधाः—प्राणविधाश्च प्राणिविधाश्च । शब्दलक्षणवाङ्मयवेदानां शास्त्रसंज्ञानां प्राणिविधा ऋषयः प्रवर्तकाः । अग्निलक्षणवाङ्मयवेदानां तु ब्रह्मसंज्ञानां प्राणविधा ऋषयः प्रवर्तका भवन्ति ॥ तेषां च प्राणविधानां प्राणिविधानां वा बहुविधानि नामानि श्रूयन्ते यथा—भृगुः[१], अङ्गिराः[२], अत्रिः[३], कश्यपो मारीचः[४], मत्स्यः[५], वसिष्ठः[६], अगस्त्यः[७], विश्वामित्रः कौशिकः[८], पुलस्त्यः[९], पुलहः[१०], क्रतुः[११], दक्षः[१२] प्राचेतसः—इत्येवमादीनि ॥ एतेषामेव मत्स्यभिन्नानां पुलस्त्यादिभिन्नानां च गोत्रेषु वंशपरम्परया वेदविद्याप्रचारः प्रायेण त्रिपुरुषं बहुतिथं नैरन्तर्य्येणासीदिति विज्ञायते। तत्र क्वचिद्गोत्रे मूलपुरुषस्यैवातितरां प्रसिद्धिः—यथा वसिष्ठागस्त्यात्रिकश्यपानाम् । क्वचित्तु मूलपुरुषवंशधरयोः समप्रसिद्धिः । यथा विश्वामित्रस्य मधुच्छन्दोदेवरातयोश्च ॥ अथ क्वचित्पुनर्वंशधराणां भूयसी प्रसिद्धिः—यथा भृगुगोत्रे गृत्समदस्य, अथाङ्गिरोगोत्रेऽथर्वबृहस्पत्योः गोतमभरद्वाजकण्वप्रगाथानां वामदेवकक्षीवतोश्चेति । अथ वंशधराणां वेदविद्यामाहात्म्यविशेषोदयादेव तु गोत्रप्रवर्तकेष्वन्यः सप्तर्षिः प्रासिद्ध्यत । यथा—भरद्वाजः[१], गोतमः[२], अत्रिः[३], कश्यपः[४],

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वसिष्ठः[५], कौशिकः[६], जमदग्निः[७]—इति। अद्यत्वे सर्वेऽपि ब्राह्मणा एतेषामेव सप्तर्षीणां वंशधरा उपलभ्यन्ते। एतेषां त्रिविधानामपि सप्तर्षीणां विशेषविज्ञानाय ऋग्वेदानुक्रमणिका बृहद्देवताप्रकरणानि इतिहासपुराणानि च विशेषतोऽनुशीलनीयानि। यथा हि श्रूयते—

(१) यज्ञेन वाचः पदवीयमायंस्त मन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसंनवन्ते। (ऋ० सं० ८।२।२६।३)

३८—अष्टत्रिंशं मतम्

अथाष्टत्रिंशं मतं यथा। यः कश्चित् प्रवादो लोकपरम्परातः कर्णाकर्णिप्रवाहविधया श्रूयते मूलप्रवर्तकस्तु नाध्यवसीयते तदाम्नायवचनमिष्यते। तस्य मिथ्यात्वे यावत् पर्याप्तं प्रमाणं नोपलभ्यते तावदिदमाम्नायवचनमैतिह्यप्रामाण्यात् प्रमाणमेवोपपद्यते॥ एतन्नियमानुरोधादेव भौमस्वर्गलोकेऽन्तरिक्षे पृथिव्यां च भिन्नभिन्नदेशेषु भिन्नभिन्नर्षिसमाजेषु अज्ञातविज्ञतमपुरुषपरीक्षासिद्धा नानाविधा धर्मविज्ञानप्रवादाश्चिरकालान्निर्विवादं लोके प्रसिद्धिमागता आम्नायवचनग्रामा ये यथा क्वचिदश्रूयन्त, तेषामज्ञातवक्तृकाणां जनश्रुतिपरम्परासिद्धानां विज्ञानवाक्यानां महाभारतयुद्धसमयात् किञ्चित्पूर्वकाले अपान्तरतमोमहर्ष्यवतारेण कृष्णद्वैपायनेन मुनिना तत्तदृषिसमाजतो विशेषानुसन्धानपुरस्सरं संग्रहो व्यधीयत। तेन च कर्मणाऽयं मुनिर्वेदव्यास इति नाम्ना प्रसिद्धिमगमत्। तेषां वचनानामेष संग्रहो मंत्रसंहितानाम्ना प्रासिद्ध्यत। तदुक्तं महाभारते शान्तिपर्वणि—

१—आम्नायवचनं सत्यमित्ययं लोकसंग्रहः। आम्नायेभ्यः पुनर्वेदाः प्रसूताः सर्वतोमुखाः॥ (म० भा० शां० ३६१ अ० २५९ अ०)

२—आम्नायमार्षं पश्यमि यस्मिन् वेदाः प्रतिष्ठिताः। तं विद्वांसोऽनुपश्यन्ति ब्राह्मणस्यानुदर्शनात्॥ (म० भा० शां० गोकपिलीये)

३९—ऊनचत्वारिंशं मतम्

अथोनचत्वारिंशं मतमप्येकं प्रचरति। वेदशब्देनाद्यत्वे ब्राह्मणानां सिद्धान्ते द्विविधो ग्रंथः प्रतिपद्यते—मन्त्रसंहिता ब्राह्मणं चेति। तत्र मन्त्रसंहिताया एवेदं वेदत्वमध्यवसेयम्। मन्त्राणामीश्वरप्रोक्तत्वात्॥ ब्राह्मणग्रंथानां तु पैङ्ग्यकौषीतकैतरेयतैत्तिरीय-शतपथ-ताण्ड्यादीनां तत्तन्नामकैर्ऋषिभिः प्रोक्तत्वाद् वेदत्वं नेष्यते इति॥

तदिदमवैज्ञानिकसाधारणजनस्वकपोलकल्पितं मतमस्ति न त्वत्र वेदपुराणेतिहासादिशास्त्रवचनं किञ्चिदुपष्टम्भकं दृश्यते। तस्मादिह विरम्यते॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदित्थमत्र सप्तसु मतेषु वेदानां महर्षिकृतत्वमुपपादितम् अथातः परं वेदानां साधारणमनुष्यकृतत्वं त्रिभिर्मतराख्यास्यामः ।

४०—चत्वारिंशं मतम्

तत्र तावदज्ञानान्धकारपराभूतहृदयानां प्रतिनिविष्टमूर्खनास्तिकानां विचारेण चत्वारिंशं मतं भवति ॥ ते ह्याहुः—त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ॥ जीवहिंसां प्रशंसन्ति यज्ञे मांसाशनेच्छया ॥ १ ॥ दर्शयन्ति च देहान्ते स्वर्गसौख्य-प्रलोभनम् ॥ देवदुश्चरितं चाहुर्मनोरंजनहेतवे ॥ २ ॥ असारं सर्वमत्रोक्तं न किञ्चित् तत्त्वमस्ति हि ॥ नास्तीश्वरस्ततस्तस्माद्भयं मिथ्या प्रदर्श्यते ॥ ३ ॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ४ ॥ यत्प्रत्यक्षं तत् प्रमाणं श्रद्धेयान्नत्वनिन्द्रिये । वेदेऽस्त्यनिन्द्रियं सर्वं प्रमाणं न ततोऽस्ति सः ॥ ५ ॥

४१—एकचत्वारिंशं मतम्

अथैकचत्वारिंशं मतं वैदेशिकानां साधारणबुद्धीनाम् । अतिप्राचीनोऽयमृग्वेद-ग्रंथः । मनुष्यबुद्ध्यङ्कुरोदयमात्रं तदानीमासीत् । कृषिविद्ययाऽन्नमुत्पाद्य सुखेन जीवन-मेवैतेषां परमा बुद्धिः । आतश्च तदात्वेग्निवायुसूर्य्या अपां वृष्टिकर्ता चैषामीश्वराः कृषिवर्द्धका आराध्या बभूवुः । तेषां प्राचीनकालसिद्धेयं ग्रामीणभाषा यस्यामग्नि-वाय्वाद्यनेकपरमेश्वरप्रार्थनावाक्यसंग्रहरूपोऽय वेदग्रंथः कर्णाकर्णिश्रवण-परम्पराप्रभावेणाद्य यावत्संरक्षितः ॥ नात्र किञ्चिदपूर्वं विज्ञानं पश्यामः । बुद्धि-विकासक्रमस्तु मनुष्याणामिह कथंचिदिव दृश्यते । पुरायुगे तावदग्निवाय्वाद्यनेके-श्वराभिमानिनामेषां बहुयुगान्ते बुद्धिपरिपाकादुपनिषन्निर्माणकाले पुनरेकेश्वरबुद्धि-रजायत । सोऽयमेषां साधारणमनुष्याणां कृषिकर्मपराणामुपासकमध्यमानामीश्वर-विचारपरमाणां बुद्धिविकासक्रमस्यायमितिहासग्रंथो विज्ञायते । योऽयं वेदो नाम ग्रंथो दृश्यते । अत्र वेदग्रंथे पूर्वयुगसम्बन्धिनो भाषाचारव्यवहारधर्मव्यवस्था-दयो लभ्यन्ते सोऽयमेतावान् परमो लाभो द्रष्टव्यः ॥

४२—द्वाचत्वारिंशं मतम्

अथ पुनरिहात्यन्तपरिपक्वबुद्धीनां वैज्ञानिकदृष्टिविचारसमर्थानां वैदे-शिकानामेतद्भारतवर्षीयवैदिकविज्ञानसंबन्धेऽनुभावयतां यथानुमतिः सेह शर्म्मण्य-देशाभिजनस्य मोक्षमूलरभट्टस्य, शापनहावरस्य च व्याख्यानुसारेण इङ्गलिशभाषया प्रदर्श्यते । तथा हि—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

The quotations are taken from **Purohit Gopinath Joshis' The Veda and the Vedant**—their great importance and supremacy in the eyes of Maxmuller and other savants of the West.

Maxmuller on the Vedas

Many times have I been asked, but what is the Veda? What are we likely to learn from a book composed nearly four thousand years ago? Are we, the people of England or of Europe, in the nineteenth century, likely to gain any new light on religious, moral, or philosophical questions from the old songs of the Brahmans?

I shall endeavour to answer some of these questions and to remove some of these doubts, by explaining to you, first, what the Veda really is, and secondly, what importance it possesses, not only to the people of India, but to ourselves in Europe—and here again, not only to the student of Oriental languages, but to every student of history, religion or philosophy; to every man who has once felt the charm of tracing that mighty stream of human thought on which we ourselves are floating onward, back to its distant mountain sources.

We try to find in the Veda the key to many of the riddles of our life.

I venture to say without fear of contradiction, that there exists no literary relic so precious as the Veda in telling us the oldest history of the primitive man.

The language of the Veda the Sanskrit is the most ancient type of the English of the present day and the Veda is the oldest book we have in which we have to study the first beginnings of our language and of all that is embodied in language.

The Vedic people were the true ancestors of our race. We are by nature Aryan, Indo-European, not Semitic: our spiritual kith and kin are to be found in India, Persia, Greece, Italy, Germany, not in Mesopotamia, Egypt or Palestine.

Whatever the intrinsic value of the Veda, if it simply contained the names of kings, the description of battles, the

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

dates of famines, it would still be, by its age alone, the most venerable of books.

The ancient history of the world before Cyrus, before 500 B. C., consists of but meagre lists of Egyptian, Babylonian, Assyrian dynasties? What do the tablets of Karnak, the palaces of Ninevch, and the cylinders of Babylon tell us about the thoughts of men? All is dead and barren. The Veda is the oasis in that vast desert of ancient Asiatic history.

In the Aryan world, the Veda is certainly the oldest book and its preservation amounts almost to a miracle.

The idea of revelation, of book-revelation is not peculiar to Cnristianity only, but the literature of India is saturated with this idea from beginning to end.

In no country has the theory of revelation been so minutely elaborated as in India. The name for revelation is Sruti. This title distinguishes the Vedic hymns and the Brahmanas also. The whole of the Veda is the work of the Deity. The Veda was God-given.

The real history of man is the history of religions and not of the foundation or destruction of Empires, the migrations of races end revolutions, but of the wonderful ways by which the different families of the human rece advanced towards a truer knowledge and a deeper love to God.

As Sanskrit is the earliest deposit of Aryan Speech, the Veda is the earliest deposit of Aryan faith.

The Rig-Veda is the most ancient monument of Eastern religion, the root of all the later religious growth of India, in a certain sense, the key also to Buddhism.

All the Principal elements of real religion are present in the Veda.

There are also such passages and really important passages, as marking the highest points to which the ancient life of the ancient poets of India had reached.

In the Veda passages occur where immortality of the soul, personal immortality and personal responsibility after death are clearly proclaimed.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Note—Schopenhauer:—The real religion of the Jews as it is represented and taught in all the historical books to the end of chronicles, is the rudest of all religions, because it is the only one which has no doctrine of immortality.

Human Interest of Sanskrit Literature.

The true history of the world must always be the history of the few; and as we measure the Himalaya by the height of Mount Everest, we must take the true measure of India from poets of the Veda, the sages of the Upanishads, the founders of the Vedant and Sankhya philosophies and the authors of the oldest law books, and not from the millions who are born and die in their villages.

What then, you may ask, do we find in that ancienf Sanskrit literature and cannot find anywhere else ? My answer is, We find there the Aryan man whom we know in his various characters, as Greek, Roman. German, Celt and Slav in an entirely new character. Whereas in his migrations northward his active and political energies are called out and brought to their highest perfection; we find the other side of the human character, the passive and meditative carried to its fullest growth in India.

It is at all events a problem worth considering whether, as there is in nature a South and a North, there are not two hemispheres, also in human nature, both worth developing—the active, combative and political on one side, the passive, meditative and philosophical on the other; and for the solution of that problem no literature furnishes such ample materials as that of the Veda, beginning with the hymns and ending with the Upanishads. We enter into a new world not always an attractive one, least of all to us; but it possesses one charm, it is real, it is of natural growth, and like every thing of natural growth, I believe it had a hidden purpose, and was intended to teach us some kind of lesson that is worth learning, and that certainly we could learn no where else.

Who are we ? What is this life on earth meant for ? Are we to have no rest here, but to be always toiling and building

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

up our own happiness out of the ruins of the happiness of our neighbours, and when we have made our home on earth as comfortable as it can be made with steam and gas and electricity, are we really so much happier than the Hindu in his primitive homestead ?

We all lead fighting life, our highest ideal of life is a fighting life. We work till we can work no longer and are proud, like old horses, to die in harness. We point with inward satisfaction to what we and our ancestors have achieved by hard work, in founding a family, or a business, a town or a state. We point to what we call the marvels of civilization—our ships, our railways, our telegraphs, our electric light, our pictures, our statues, our music, our theatres. We imagine we have made life quite perfect, in some case so perfect that we are almost sorry to leave it again. But the lesson which both Brahmans and Buddhists are never tired of teaching is that this life is but a journey from one village to another, and not a resting place.

We call the Indian notions of life dreamy, unreal, unpractical, but may not they look upon our notions of life as short-sighted, fussy, and, in the end, most unpractical, because involving a sacrifice of life for the sake of life.

His (Aryan) very view of life, though we can not adopt it in this Northern climate, may yet act as a lesson and a warning to us, not for the sake of life to sacrifice the highest objects of life.

The highest wisdom of Greece was 'to know ourselves' the highest wisdom of India is 'to know ourself.'

If I were asked to indicate by one word the distinguishing feature of the Indian character, I should say it was Transcendent, as denoting a mind bent on transcending the limits of Empirical knowledge.

But, for all that, there is a Beyond, and he who has once caught a glance of it, is like a man who has gazed the sun—wherever he looks, everywhere he sees the image of the sun.

To us the senses seem to be the organs, the tools, the most

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

powerful engines of knowledge; to him (Aryan of India) they are, heavy fetters, checking the flight of the spirit.

The transcendent temperament acquired no doubt a more complete supremacy in the Indian character than anywhere else: but no nation, and no individual, is entirely without that 'yearning beyond;' indeed we all know it under a more familiar name—namely, Religion.

Only when the finite character of all human knowledge has been received, is it possible for the human mind to conceive, that which is beyond the Finite, call it what you like, the Beyond, the Unseen, the Infinite, the Supernatural or the Divine. That step must have been taken before religion of any kind becomes possible.

Now let us look to the ancient inhabitants of India. With them, first of all, religion was not only one interest by the side of many. It was the all absorbing interest; it embraced not only worship and prayer, but what we call philosophy, morality, law and government—all was pervaded by religion. Their whole life was to them a religion—everything else was, as it were, a mere concession made to the ephemeral requirements of life.

I maintain then that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda.

Who can deny that the Veda is the oldest monument of Aryan speech and Aryan thought which we possess.

The discovery of the Veda has thrown a new light on the origin and growth of religion, not only in India, but in every part of the world.

We meditate on the Divine, as discovered in the deepest depth of the human heart.

The earliest name for the Infinite discovered by man within himself is called Atman in the ancient Upanishads.

A loving homage paid to the ancestor of all ancestors, the father of all fathers, satisfies one of the deepest and oldest yearnings of the human heart.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prince Dara, the unfortunate son of Shah Jehan translated the Upanishads from Sanskrit into Persian. It was this Persian translation of the Upanishads which Anquetil Duperron translated again into Latin in 1795, and it was Duperron's Latin translation which inspired Schopenhauer and furnished to him the fundamental principles of his own philosophy.

Schopenhauer's philosophy was founded on the Upanishads. He writes 'From every sentence of the Upanishads, deep, original and sublime thoughts arise and the whole is pervaded by a high and holy and earnest spirit. In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Oupnekhet,

I maintain that the ancient records of religion, more particularly in India, supply historical evidence that the human mind was able, by its own inherent powers, to ascend from nature to nature's gods, and in the end, to the God of nature.

Nowhere in the whole world does ancient literatrue enable us to study the development of religious thought so fully and so uninterruptedly as in ancient India.

We have a right to say that, as in India so in Egypt, the concept of something divine arose first from a contemplation of the wondeful activities of nature.

Though we can clearly perceive in these and similar passages that there were physical ingredients in the character of the Supreme God of the Jews, nowhere but in the hymns of the Veda can we watch the gradual elimination of these physical ingredients, and the historical unfolding of the idea of God out of these primitive germs.

The Veda may be more modern, if we measure antiquity by the revolution of the heavenly bodies, but the Veda is far more ancient than anything in China ,Babylon or Egpyt, when we measure antiquity by the revolution of Ideas.

We can not know Infinite as we know the Finite, but we can know it in the only way in which we can expect to know it, namely, behind the Finite.

All the phenomena of nature would teach the lesson that

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

the human mind is capable of discovering the supernatural in the natural.

If there is a purpose running through the ages, if nature is not blind, if there are agents, recognised at last as the agents of one Will, behind the whole phenomenal world, then the evolution of man's belief in that Supreme Will is itself the truest revelation of that Supreme Will, and must remain the adamantine foundation on which all religion rests, whether we call it natural or supernatural.

The true meaning of a miracle was the natural perceived as the supernatural; it was the reading of a new and deeper meaning both in the workings of natural and in the acts of inspired men it was the recognition of the Divine, reflected in the light of common day.

A French philosopher and poet, Amiel, has truly said. 'A miracle depends for its existence far more on the subject who sees than on the object that is seen. A miracle is a perception of the soul, the vision of the divine behind nature. There is no miracle for the indifferent. Religious souls only are capable of recognising the finger of God in certain events.

Before the great miracle of the manifestation of God in nature, all other miracles vanish. There is but one eternal miracle, the revelation of the Infinite in the finite.

It has been the chief object of my lectures to show that the concept of God arises by necessity in the human mind, and is not, as so many theologians will have it, the result of one special disclosure, granted to Jews and Christians only.

The highest attributes which we claim for the deity are likewise ascribed to it by the sacred books of other religions.

A true concept of God is within the reach of every human being, is, in fact, the common inheritance of mankind.

There is a common fund of truth in all religions.

All religions spring from the same soil—the human heart.

There is a common fund of truth in the most essential doctrines which various religions teach.

Love thy neighbour as thy self, has long been proved to

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

form an integral part of that eternal religion which has never been quite extinct in the human heart and has found utterance by the mouths of many prophets, poets and philosophers.

All other religions also contain all that is necessary for salvation.

Nowhere else can we watch the natural evolution of the concept of God, as the Prime Agent of the world, better than in the ancient hymns of the Rig-Veda.

यः देवेषु आदिः देवः एकः आसीत् ।

'He who above the gods, was the one God.'

That line was composed in the North of India at least 1000 B. C.

It was the natural outcome of man's thoughts such as they had been fashioned in response to the impressions of nature.

The line from the Veda proves that the human mind, such as it is, assisted only by the eternal miracles of nature did arrive at the concept of God.

Indian philosophical speculations are bound up with the highest and dearest interests of our life, though no one will ever be able to take out a patent and make money by it.

The Indian system of philosophy is chiefly concerned with the Soul and its relation to God. It comes to us from India, and is probably more than two thousand years old.

I can not convince myself that the observations now made in the so-called physico-psychological laboratories of Germany, however interesting to physiologists, would have proved of much help to our Vedanta philosophers. The rest and peace which are required for deep thought, or for accurate observations of the movnment of the soul, were more easily found in the silent forests of India than in the noisy streets of our so-called centres of civilization.

Schopenhauer certainly not a man given to deal in extravagant praise to any philosophy but his own, thoroughly acquainted with all the hisiorical systems of philosophy, delivered his opinion of the Vedanta philosophy, as contained n the Upanishads, in the following words: In the whole world there is no

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life and the solace of my death.

If philosophy is meant to be a preparation for a happy death or euthanasia, I know of no better preparation for it than the Vedanta Philosophy.

Sir William Jones, no mean authority as an oriental as well as a classical scholar, remarks, 'That it is impossible to read the Vedanta, without believing that Pythagoras and Plato derived their sublime theories from the same fountain with the sages of India.'

Victor Cousin, the greatest among the historians of philosophy in France, spoke in the following terms before an audience of two thousand gentlemen at Paris in 1828, 'When we read with attention the political and philosophical monuments of the East, above all, those of India which are beginning to spread in Europe, we discover there many a truth, and truths so profound, and which make such a contrast with the meanness of the results at which the European genius has sometimes stopped, that we are constrained to bend the knee before the philosophy of the East, and to see iu this cradle of the human race the native land of the highest philosophy.

German philosophers have always been the most ardent admirers of Sanskrit literature and more particularly, of Sanskrit philosophy.

Frederick schlegel, one of the earliest students of Sanskrit, is the true discoverer of the existence of an Indo-European family of speech. He remarks: Even the loftiest philosophy of the Europeans, the idealism of reason, as it is set forth by Greek philosophers appears in comparison with the abundant light and vigour of Oriental Idealism, like a feeble promethean (a kind of lucifer match) spark in the full flood of heavenly glory of the noonday sun—faltering and feeble, and ever ready to be extinguished.

With regard to the Vedanta Philosophy Schlegel says: 'The divine origin of man is continually inculcated to stimulate his efforts to return to animate him in the struggle, and incite him

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

to consider a re-union and reincorporation with divinity as the one primary object of every action and exertion.'

What distinguishes Vedanta Philosohy from all other philosophies is that it is at the same time a religion and a philosophy. With us the prevailing opinion seems to be that religion and philosophy are not only different but they are antagonistic.

Nowhere, do we find what we find in India, where philosophy is looked upon as the natural outcome of religion; nay, as its most precious flower and fragrance.

Veda, the Hindu Bible consists of three portions, the Samhitas, or collections of metrical prayers and hymns of praise, the Brahmanas, or prose treatises on the sacrifices, and the Aranyaka, books intended for the dwellers in the forest, the most important portion of which is formed by the Upanishads. These Upanishads are philosophical treatises and their fundamental principle might seem with us to be subversive of all religion. Yet they are looked upon as the highest consummation of the Brahmanic religion.

We shall now see how the sages of the Upanishads discovered at last the true relation between what we call the Divine or the Infinite, as seen objectively in nature, and the Divine or the Infinite as perceived subjectively in the soul of man. We shall then be better able to understand how they erected on this aneient foundation what was at the same time the most sublime philosophy and the most satisfying religion—the Vedanta.

The Brahmans reduced the ancient philosophical institutions to a system, and they reasoned them out with an exactness which may well excite our surprise and admiration.

The doctrine in the Upanishads is that Brahman is both the material and the efficient cause of the world, that the world is made not only by God, but also of God. This doctrine is illustrated by giving the instance of a spider and its web.

Man is immortal as soon as he knows himself, or rather hisself, that is, as soon as he knows the eternal Self within

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

him. The fear not of death, but of birth runs through the whole of Indian philosophy.

We get the impression that the life described in the Upanishads was a real life, that in the very remotest times the settlers in that beautiful and over fertile country were occupied in reasoning out the thoughts which are recorded in the Upanishads, that they were really a race of men different from us, different from any other race, that they cared more for invisible than for visible things, and that kings and princes among them really descended from their thrones and left their palaces, in order to meditate in the dark and cool groves of their forests, on unsolved problems of life and death.

'He who is in the fire, and He who is in the heart, and He who is in the sun, are all one and the same.' He who knows this becomes one with the One. 'As birds and deer do not approach a burning mountain, so sins never approach those who know Brahman.'

'Through the serenity of this thought he kills all actions, good or bad; his self serene, abiding in the self, obtains imperishable bliss!'

'Thoughts alone, he says, 'cause the round of a new birth and a new death; let a man therefore strive to purify his thoughts. What a man thinks that he is, this is the old secret.'

If the thoughts of men were so fixed on the Eternal or Brahman, as they are on the things of this world, who would not be freed from bondage? Water in water, fire in fire, ether in ether, no one can distinguish them; likewise a man whose mind has entered into the Eternal, into Brahman, obtains liberty.

The Vedanta philosophy has room for almost every religion, nay, it embraces them all.

The whole Vedanta philosophy was built on the conviction that every human being has its true being in Brahman and this feeling, though it is chiefly metaphysical, breaks out occasionally as a moral power also. We say we should love our neighbour as ourselves. The Vedantist says, We should love

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

the first expressions of surprise and suspicion, the first discovery that behind this visible and perishable world there must be something invisible, imperishable, eternal or divine. The growth of the Divine idea is laid bare in the Veda as it is no where else.

Prof. Max Muller :—I spend my happiest hours in reading Vedantic books. They are to me like the light of the morning, like the pure air of the mountains,—so simple, so true, if once understood.

"The Upanishads are the.....sources of..... the Vedanta philosophy, a system in which human speculation seems to me to have reached its very acme."

Dr. Paul Deussen:—"The Vedanta is, now as in the ancient time, living in the mind and heart of every thoughtful Hindu—.....This fact may be for poor India in so many misfortunes a great consolation, for the eternal interests are higher than the temporary; and the system of the Vedanta, as founded on the Upanishads and Vedanta-Sutras and accomplished by Sankara's Commentaries on them, is one of the most valuable products of the genius of mankind in its search for the eternal truth."

Dr. Goldstucker:—"The Vedanta is the sublimest machinery set into motion by oriental thought."

Oriental Scholars enjoying a wide reputation and accepted as undoubted authorities on the subject are unanimous in their praise of the Vedanta as philosophy. Professor Max Muller's views on the subject are too well-known to need repetition here. In his lectures on the Vedanta he says, for instance: "Such speculations are apt to make us feel giddy; but whatever we may think about them they show at all events to what a height Indian philosophy had risen in its patient climb from peak to peak, and how strong its lungs must have been to be able to breathe in such an atmosophere."

As, on the one hand, the religion of Vedanta embraces the

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

special religions of the world, and the highest ideals of all the scriptures of the world, so on the other hand, the philosophy of Vedanta embraces the highest ideals and ultimate conclusions of the greatest scientists, the deepest philosophers, the profoundest thinkers and the best metaphysians of the world; therefore this religion is truly universal. Its scope is unlimited and there is no other religion in the world which can be compared to it in its universality and its infinite scope.

The religion of Vedanta is inseparable from true science and from true philosophy. Why? Because all sciences and all philosophies are nothing but so many attempts of human minds to grasp some particular phase of the Eternal Truth, the Infinite Reality. As truth is the goal of all science and all philosophy, the same truth is the goal of Vedanta; and, as Vedanta attempts to lead all human minds to the realization of that absolute truth of the oneness, so it embraces all the philosophies of the world. In particular doctrines, in particular arguments and discussions and particular points there may be diversity, but the ideal is one, and hence Professor Max Muller said that "Vedanta is the most sublime of all philosophies and the most comforting of all religions."

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—उपनिषच्छास्त्रनिरुक्तिः

१—अग्निवेदोपनिषदामार्षेयादेशाः

वेदान्ता उपनिषदः । तत्र शास्त्रवेदप्रतिपादितविज्ञानवेदानामात्मपदार्था आदिश्यन्ते । तथा हि—

अथादेशा उपनिषदाम् । वायुरग्निरिति शाकायनिन उपासते । आदित्योऽग्निरित्यु हैक आहुः । संवत्सरोऽग्निरित्यु हैव विद्यात् । स एष संवत्सरो नारायणश्च भूतानां पतिश्चाख्यायते । तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत् । सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता—ऋचो यजूंषि सामानि । तेनाग्निस्त्रेधा विहितः । सोऽनेन त्रेधा विहितेनाग्निनैतं त्रेधा विहितं दैवममृतमाप्नोति । सा या सा वागसौ स आदित्यः । स एष मृत्युः । तद् यत् किञ्चार्वाचीनमादित्यात् सर्वं तन्मृत्युनाप्तम् । स यो हैनमतोऽर्वाचीनं चिनुते—मृत्युना हैनं स आप्तं चिनुते । मृत्यवे ह स आत्मानमपि दधाति ॥ अथ य एनमत ऊर्ध्वं चिनुते स पुनर्मृत्युमपजयति । विद्यया ह वा अस्यैषोऽत ऊर्ध्वं चितो भवति । सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता—ऋचो यजूंषि सामानि । मण्डलमेव ऋचः । अर्चिः सामानि । पुरुषो यजूंषि । अथैतदमृतं यदेतदर्चिर्दीप्यते । इदं तत् पुष्करपर्णम् । तद् यत् पुष्करपर्णमुपधायाग्निं चिनोति—एतस्मिन्नेवैतदमृते ऋङ्मयं यजुर्मयं साममयमात्मानं संस्कुरुते सोऽमृतो भवति ॥ यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् । ता ऋचः स ऋचां लोकः । अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् । तानि सामानि स साम्नां लोकः । अथ य एष तस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि । स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति । स एष एव मृत्युर्य्य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । अथैतदमृतं—यदेतदर्चिर्दीप्यते । तस्मान्मृत्युर्न म्रियते । अमृते ह्यन्तः । तस्मादु न दृश्यते । अमृते ह्यन्तः । तदेष श्लोको भवति—

अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् ।
मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति ॥ इति ॥

अवरं ह्येतन्मृत्योरमृतम् । एतस्मिन् हि पुरुषे एतन्मण्डलं प्रतितिष्ठितं तपति । असौ वा आदित्यो विवस्वान् । एष ह्यहोरात्रे विवस्ते । तमेष वस्ते । सर्वतो ह्येतेन परिवृतः । एतस्मिन् हि मण्डले एतस्य पुरुषस्यात्मा ॥ तयोर्वा एतयोरुभयोरेतस्य चार्चिष एतस्य च पुरुषस्यैतन्मण्डलं प्रतिष्ठितम् ॥ इति ॥ शत० १० । ३ । ४ ॥ प्रजापतिर्वा अयमात्मा । स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमय इति ॥ आत्मनो महिमा वेदः । प्राजापत्यो ह्ययं वेदः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उभयं हैतदग्रे प्रजापतिरास मर्त्यं चैवामृतं च । तस्य प्राणा एवामृता आसुः । शरीरं मर्त्यम् । स एतेन कर्म्मणा, एतयाऽऽवृता, एकधाऽजरममृतमात्मानमकुरुत । इति । शत० १० । १ । ४ ॥

२—उपनिषदां वेदान्तप्रकरणत्वम्

मन्त्रब्राह्मणारण्यकोपनिषद्भिश्चतुर्धा विभक्तानि वेदप्रकरणानि भवन्ति । तत्र वेदशास्त्रस्यायमन्त इत्युपनिषच्छास्त्रे वेदान्तशब्दः । तथा च वेदशाखाभेदादेकत्रिंशदधिकैकादशशतप्रभेदा उपनिषदो भवन्ति । तत्र षोडशातितरां प्रसिद्ध्यन्ति ॥ यथा—

३—षोडशोपनिषदां परिसंख्यानम्

१ कौषीतकम्	ऋ०	५ वाजसनेयकम्	य०	९ मैत्रायणीयकम्	सा०	१३ गर्भः	अ०
२ ऐतरेयकम्	ऋ०	६ बृहदारण्यकम्	य०	१० श्वेताश्वतरम्	कृ०	१४ प्रश्नः	पैप्पलादः
३ छान्दोग्यम्	सा०	७ तैत्तिरीयकम्	कृ०	११ आत्मा	अ०	१५ मुण्डकः	अ०
४ तलवकारः	सा	८ काठकम्	कृ०	१२ ब्रह्म	अ०	१६ माण्डूक्यम्	अ०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एभ्योऽतिरिक्तान्यपि शतसंख्यान्युपनिषत्प्रकरणानि क्वचित्पठ्यन्ते । यथा—

१	अथर्वशिरा	२१	क्षुरिका	४१	नृसिंहपूर्वतपन	६१	सूर्य	८१	दक्षिणामूर्तिः
२	अथर्वशिखा	२२	चुलिका	४२	नृसिंहोत्तरतापनी	६२	पाशुपत	८२	स्कन्दः
३	अमृतनाद	२३	वज्रसूचिका	४३	रामपूर्वतापनी	६३	गणपति	८३	शारीरकम्
४	अमृतबिन्दु	२४	गारुड	४४	रामोत्तरतापनी	६४	कृष्ण	८४	एकाक्षरः
५	नादबिन्दु	२५	वैतथ्य	४५	गोपालपूर्वतापनी	६५	हयग्रीव	८५	हृदययोगः
६	ध्यानबिन्दु	२६	अजातशांति	४६	गोपालोत्तरतापनी	६६	त्रिपुरा०	८६	रुद्राक्ष
७	तेजोबिन्दु	२७	नीलरुद्र	४७	रामरहस्य	६७	अन्नपूर्णा	८७	योगचूडामणि
८	ब्रह्मबिन्दु	२८	कालाग्निरुद्र	४८	सरस्वतीरहस्य	६८	सीता०	८८	कुण्डलिनी
९	ब्रह्मविद्या	२९	जाबाल	४९	शुकरहस्य	६९	सावित्री	८९	अक्षि
१०	ब्रह्म	३०	बृहज्जाबाल	५०	नारदपरिव्राजक	७०	वासुदेव	९०	सुबालमंत्रिका
११	अद्वैत	३१	नारायण	५१	परमहंसपरिव्राजक	७१	दत्तात्रेयः	९१	बह्वृचम्
१२	कैवल्य	३२	महानारायण	५२	भिक्षु०	७२	आरुणिः	९२	सौभाग्यम्
१३	योगतत्त्व	३३	बृहन्नारायण	५३	तुरीयातीत	७३	मैत्रायणी	९३	निर्वाण
१४	योगशिखा	३४	गर्भ	५४	मुक्तिका	७४	याज्ञवल्क्यः	९४	आवक्रकंडिका
१५	आश्रम	३५	पिण्ड	५५	अध्यात्म	७५	शाट्यायनी	९५	सारभः
१६	संन्यास	३६	मैत्री	५६	तारसार	७६	मुद्गल	९६	अक्षमालिका
१७	सर्वसार	३७	प्राणाग्निहोत्र	५७	तारक	७७	त्रिशिखब्राह्मण	९७	देवीभावना
१८	हंसः	३८	वराह	५८	निरालम्ब	७८	मंडलब्राह्मण	९८	ब्रह्मजाबाल
१९	परमहंसः	३९	कलिसंतरण	५९	पञ्चब्रह्म	७९	पैङ्गल०	९९	कठरुद्रः
२०	आत्मा	४०	अवधूत०	६०	अद्वयम्	८०	शाण्डिल्य०	१००	आत्मप्रबोधः

४—अष्टोत्तरशतोपनिषदां परिसंख्यानम्

अथ वेदभेदात् पञ्चधा विभक्ता अष्टोत्तरशतोपनिषदः प्रदर्श्यन्ते । तथा हि—ऋग्वेदे दश । शुक्लयजुर्वेदे एकोनविंशतिः । कृष्णयजुर्वेदे द्वात्रिंशत् । सामवेदे षोडश । अथर्ववेदे एकत्रिंशदिति ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिलेखो यथा—

ऋग्वेदे १०	शुक्लयजुर्वेदे १९	कृष्णयजुर्वेदे३२	सामवेदे १६	अथर्ववेदे ३१
१ ऐतरेय	१ ईशावास्य	१ कठवल्ली	१ तलवकारः	१ ब्रह्ममुण्डक
२ कौषीतकि	२ बृहदारण्य	२ तैत्तिरीयक	२ छान्दोग्य	२ मुण्डक
३ नादबिन्दु	३ जाबाल	३ ब्रह्म	३ आरुणि	३ माण्डूक्य०
४ आत्मप्रबोध	४ हंस	४ कैवल्य	४ मैत्रायणि	४ अथर्वशिरः
५ निर्वाण	५ परमहंस	५ श्वेताश्वतर	५ मैत्रेयी	५ अथर्वशिखा
६ मुद्गल	६ सुबालमंत्रिका	६ गर्भ	६ वज्रसूचिका	६ बृहज्जाबाल
७ अक्षमाला	७ निरालम्ब	७ नारायण	७योगचूडामणि	७ नृसिंहतापनी
८ त्रिपुरा	८ त्रिशिखी	८ अमृतबिन्दु	८ वासुदेव	८ नारदपरिव्राजक
९ सौभाग्य	९ ब्राह्मणमंडल	९ अमृतनाद	९ महत्	९ सीता
१० बह्वृच	१० ब्राह्मणद्वय	१०कालाग्निरुद्र	१० संन्यास	१० सरभ
	११ तारक	११ क्षुरिका	११ कक	११ महानारायण
	१२ पैङ्गल	१२ सर्वसार	१२ कुण्डिका	१२ रामरहस्य
	१३ भिक्षु	१३ शुक्लरहस्य	१३ सावित्री	१३ रामतापनी
	१४ तुरीयातीत	१४ तेजोबिन्दु	१४ रुद्राक्ष	१४ शाण्डिल्य०
	१५ अध्यात्म	१५ ध्यानबिन्दु०	१५ जाबालदर्शन	१५ परमहंसपरिव्राजक
	१६ तारसार	१६ ब्रह्मविद्या	१६ जाबालि	१६ अन्नपूर्णा
	१७ याज्ञवल्क	१७ योगतत्त्व		१७ सूर्य
	१८ शाट्यायनी	१८ दक्षिणामूर्ति		१८ आत्म
	१९ मुक्तिका	१९ स्कन्द		१९ पाशुपत
		२० शारीरक		२० परब्रह्म
		२१ योगशिखा		२१ त्रिपुरातपन
१० ऋग्वेदे		२२ एकाक्षर		२२ देवी
१९शु० यजुर्वेदे		२३ अक्षि		२३ भावना
३२ कृ०यजुर्वेदे		२४ अवधूत		२४ ब्रह्मजाबाल
१६ सामवेदे		२५ कठरुद्र		२५ गणपति
३१ अथर्ववेदे		२६ हृदययोग		२६ महावाक्य०
		२७ कुण्डलिनी		२७ गोपालतपन
		२८ पञ्चब्रह्म		२८ कृष्ण
		२९ प्राणाग्निहोत्र		२९ हयग्रीव
१०८उपनिषदः		३० वराह		३० दत्तात्रेय
		३१कलिसंतरण		३१ गारुड
		३२सरस्वतीरहस्य		

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अष्टोत्तरशतोपनिषदां परिसंख्यानम्

तदेतदुपनिषदां संख्यानं मुक्तिकोपनिषदि दृश्यते। तद्यथा—

भक्त्या शुश्रूषया रामं स्तुवन् पप्रच्छ मारुतिः।
वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद ॥ १ ॥

भगवान् श्रीराम उवाच—

निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः।
तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

पुनर्मारुतिः पप्रच्छ—

राम वेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव।
तासूपनिषदः काः स्युः कृपया वद तत्त्वतः ॥ ३ ॥

श्रीराम उवाच—

ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः।
तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा ॥ ४ ॥
ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः।
एकाधिकं शतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ॥ ५ ॥
सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परंतप।
एकैकस्य तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता ॥ ६ ॥
ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥ ७ ॥
माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये।
विदेहमुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ ॥ ८ ॥
ब्रह्मकैवल्यजाबालश्वेताश्वो हंस आरुणिः।
गर्भो नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरः शिखा ॥ ९ ॥
मैत्रायणी कौषीतकी बृहज्जाबालतापनिः।
कालाग्निरुद्रमैत्रेयीसुबालक्षुरिमन्त्रिका ॥ १० ॥
सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम्।
तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥ ११ ॥
परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडानिर्वाणमण्डलम्।
दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाद्वयम् ॥ १२ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहस्यं रामतपनं वासुदेवञ्च मुद्गलम् ।
शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकं शिखा ॥ १३ ॥
तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका ।
अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका ॥ १४ ॥
सावित्र्यात्मा पाशुपतं परंब्रह्मावधूतकम् ।
त्रिपुरा तपनं देवी त्रिपुरा कठभावना ॥ १५ ॥
हृदयं पुण्डरीभस्मरुद्राक्षगणदर्शनम् ।
तारसारमहावाक्यपञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ॥ १६ ॥
गोपालतापनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम् ।
शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम् ॥ १७ ॥
कलिजाबालिसौभाग्यरहस्यऋचमुक्तिका ।
एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् ॥ १८ ॥
गृहीत्वाष्टोत्तरशतं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः ।
प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥ १९ ॥
इदं शास्त्रं मयादिष्टं गुह्यमष्टोत्तरं शतम् ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पठतां बन्धमोचकम् ॥ २० ॥

५—उपनिषदां शान्तिपाठमन्त्राः

अथाष्टोत्तरशतोपनिषदां शान्तिपाठमन्त्रा विधीयन्ते—

१—ऐतरेय[१], कौषीतकि[२], नाद[३], बिन्द्वात्मप्रबोधनिर्वाण[४], मुद्गलाक्ष[५], मालिका[६], त्रिपुरा[७], सौभाग्य[८], बह्वृचानामृग्वेदगतानां दशसंख्यकानामुपनिषदां[९] वाङ्मे मनसीति[१०]शान्तिः ।

वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् ।
आविराविर्म एधि । देवस्य स आणीस्थः ॥ १ ॥
श्रुतं मे मा प्रहासीः, अनेनाधीतेनाहोरात्रा न संदधामि ।
ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ २ ॥
तन्मावतु तद्वक्तारमवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।
ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ३ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
२—ईशावास्य, बृहदारण्य, जाबाल, हंस, परमहंस, सुबालमन्त्रिका, निरालम्ब,
८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
त्रिशिखी, ब्राह्मणमण्डल, ब्राह्मणाद्वय, तारक, पैङ्गलभिक्षु, तुरीयातीताध्यात्म,
१६ १७ १८ १९
तारसार, याज्ञवल्क्य, शाट्यायनीय, मुक्तिकानां शुक्लयजुर्वेदगतानामेकोनविंशति-संख्यकानामुपनिषदां पूर्णमदः इति शांतिः ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
३—कठवल्ली, तैत्तिरीयक, ब्रह्म, कैवल्य, श्वेताश्वतर, गर्भनारायणा-
८ ९ १० ११ १२ १३ १४
मृतबिन्दुमृतनाद, कालाग्निरुद्र, क्षुरिका, सर्वसार, शुक्लरहस्य, तेजोबिन्दु,
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
ध्यानबिन्दु, ब्रह्मविद्या, योगतत्त्व, दक्षिणामूर्ति, स्कन्दशारीरक, योगशिखैका-
२३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
क्षराक्ष्यवधूत, कठरुद्र, हृदययोग, कुण्डलिनी, पञ्चब्रह्म, प्राणाग्निहोत्र, वराह,
३१ ३२
कलिसंतरण, सरस्वतीरहस्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्यकानामुपनिषदां सह नाववत्विति शान्तिः ।

सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
४—केन, छान्दोग्यारुणि, मैत्रायणि, मैत्रयी, वज्रसूचिका, योगचूडामणि,
८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
वासुदेव, महासंन्यासा, कक्ष, कुण्डिका, सावित्री, रुद्राक्ष, जाबालदर्शन,
१६
जाबालीनां सामवेदगतानां षोडशसंख्यकानामुपनिषदां आप्यायन्तु इति शान्तिः ॥ ४ ॥

आप्यायन्तु ममाङ्गानि—वाक्प्राणचक्षुःश्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् । माहं ब्रह्म निराकुर्यां—मा मा ब्रह्म निराकरोत् । अनिराकरणमस्तु—अनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्माः ते मयि सन्तु—ते मयि सन्तु ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

१ २ ३ ४ ५
५—प्रश्न, मुण्डक, माण्डक्याथर्वशिरो, शर्वशिखा, बृहज्जाबाल, नृसिंह-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
तापनी, नारद, परिव्राजक, सीता, शरभ, महानारायण, रामरहस्य, रामतापनी,
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
शाण्डिल्य, परमहंस, परिव्राजकान्नपूर्णा, सूर्य्यात्म, पाशुपत, परब्रह्म, त्रिपुरातपन,
२३ २४ २५ २६ २७ २८ २९
देवीभावना, ब्रह्मजावाल, गणपति, महावाक्य, गोपालतपन, कृष्ण हयग्रीव,
३० ३१
दत्तात्रेय, गारुडानामथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्यकानामुपनिषदां भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ १ ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २ ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति शास्त्रब्रह्मनिरुक्तौ उपनिषच्छास्त्रप्रसङ्गः पूर्णः ।

६—विवेचनीयचत्वारिंशच्छन्दतालिका

आसूपनिषत्सु जगदुत्पत्तिमूलं विविच्यते । तत्र ब्रह्मणः प्रजापतेरात्मनो जगत्कारणत्वं नियम्यते । द्वेधा हीदं प्रजापतिलक्षणं ब्रह्म व्यवतिष्ठते—ईश्वरो जीवश्चेति । बाह्यजगत्कारणमीश्वरः । आभ्यन्तरजगत्कारणं जीवः । एतयोरेव तटस्थलक्षणस्वरूपलक्षणोपपादकानीमानि सर्वाण्येवोपनिषत्प्रकरणानि । किन्त्वेतेषूपनिषत्प्रकरणेषु विश्वसृट्परतया प्रयुक्ताश्चत्वारिंशच्छन्दाः संकीर्णविप्रकीर्णार्थाः सन्ति । ते यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१	ब्रह्म	१	मनोमयः	१	आयतनम्	१	अव्यक्तम्
२	अन्तरात्मा	२	प्राणशरीरः	२	भूमा	२	अजा
३	आकाशः	३	भारूपः	३	अक्षरम्	३	पञ्चजनः
४	प्राणा अनूचीनाः	४	आकाशात्मा	४	ओंकारः	४	कारणम्
५	ज्योतिः	५	हृद्य उपास्यः	५	दहरः	५	कर्ता
६	छन्दः	६	अत्ता	६	भारूपः	६	भोक्ता
७	प्रज्ञा	७	गुहाहितः	७	अङ्गुष्ठप्रमितः	७	प्रकृतिः
८	प्राणो मुख्यः	८	चाक्षुषः	८	भयङ्करः शास्ता		
९	अमृतम्	९	अन्तर्यामी	९	ज्योतिः		
१०	वायुः	१०	भूतयोनिः	१०	आकाशः		
११	इन्द्रः	११	वैश्वानरः	११	विज्ञानमयः		
इति भूतेश्वरसाधारणाः पुरुषोपनेयाः		इति जीवेश्वरसाधारणाः पुरुषोपनेयाः		इति विचालिनः पुरुषोपनेयाः		इति पराव्ययदिष्टा प्रकृत्युपनेयाः	
निरूढशब्दाः		यौगिकशब्दाः		विशेषणशब्दाः		उपादानशब्दाः	
प्रथमे पादे निरूपिताः		द्वितीये पादे निरूपिताः		तृतीये पादे निरूपिताः		चतुर्थे पादे निरूपिताः	

तेऽमी नैकान्ततोऽद्धा ब्रह्मनिष्ठतया प्रकाशन्ते । अत एव च भिन्नभिन्नान्यनेकविधानि जगन्मूलानि वेदान्तेषु विपश्यन्तो मनीषिणः स्वबुद्ध्यनुसारेण निर्धारयन्तो नानादर्शनानि प्रलपयन्ति स्म । तेषु चानेकविधेषु जगन्मूलेषु प्रलीयमानेषु साक्षाद्द्रष्टृमहर्षीतरसाधारणमनुष्याणां लौकिकदृष्ट्या युक्तिमात्रसाहाय्येनातिगम्भीरमर्थं दिदृक्षमाणानां बुद्धिदोषाज्जगत्स्रष्टृविषये नानाविधानि दर्शनानीदानीं परस्परप्रतिद्वन्द्वीनि लोके प्रचारमायातानि । तानि यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—दर्शनशास्त्रनिरुक्तिः

अष्टादशदर्शनानि (१८)

	केचित्तावदाहुः	परे तु त्रेधा	षड्दर्शनान्याहुः	
१	लौकायतिकम् चार्वाकीयम्	लौकायतिकम्	न्यायः	सौरम्
२	वैनाशिकम् सौगतम्	वैभाषिकम्	वैशेषिकं च	शाक्तम्
३	स्याद्वादिकम् ३ आर्हतम्	सौत्रान्तिकम्	सांख्यम्	शैवम्
४	वैशेषिकम् काणाद औलुक्यम्	क्षणिकवैज्ञानिकम्	योगश्च	वैष्णवम्
५	प्राधानिकम् कापिलम्	माध्यमिकम्	पूर्वमीमांसा	गाणपत्यम्
६	शारीरकम् वैयासिक्यम्	स्याद्वादिकम्	उत्तरमीमांसा च	स्मार्तम्
	इति नास्तिकास्तिक- भेदात् षड्दर्शनानि जगन्मूलतन्त्राणि	इति नास्तिकानि षड्दर्शनानि कर्म्मतन्त्राणि	इति नैगमकानि षड्दर्शनानि ज्ञानतन्त्राणि	इत्यागमकानि षड्दर्शनानि भक्तितन्त्राणि

षट्त्रिंशद्दर्शनानि (३६)

अथान्ये षट्त्रिंशद्दर्शनानि कल्पयन्ति । तथा चाहुः—

बौद्धाश्चतुर्विधा लौकायतिका आर्हता इति ।
दर्शनानि षडेतानि नास्तिकानां विदुर्बुधाः ॥ १ ॥
सांख्ययोगाः पाशुपताः शैवा अपि रसेश्वराः ।
कापालिकाश्च काणादा केवलेश्वरवादिनः ॥ २ ॥
अखण्डं च विशिष्टं च शुद्धं द्वैतमिति क्रमात् ।
अद्वैतान्यथ चैतन्यं द्वैतं सप्रकृतीश्वराः ॥ ३ ॥
शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि ॥ ४ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संप्रदायाः स्मृता ऊर्ध्वपूर्वदक्षिणपश्चिमाः ।
उत्तरश्चाधरश्चेति चाम्नायाः षडिहागमे ॥ ५ ॥
शब्दो मीमांसनं न्यायः पुराणमितिहासकः ।
साहित्यमित्येकदेशि दर्शनानि प्रचक्षते ॥ ६ ॥

१ लौकायतिकाः २ माध्यमिकाः ३ वैज्ञानिकाः ४ सौत्रान्तिकाः ५ वैभाषिकाः ६ स्याद्वादिकाः इति नास्तिकाः	१ सांख्य-प्रवचनाः २ शैवाः ३ पाशुपताः ४ कारुकाः ५ कापालिकाः ६ वैशेषिकाः इति प्राकृतिकाः	१ निर्विशेषाद्वैतम् २ विशिष्टाद्वैतम् ३ द्वैतम् ४ शुद्धाद्वैतम् ५ द्वैताद्वैतम् ६ चैतन्याद्वैतम् इति प्रपन्नाचार्याः	१ सौराः २ शाक्ताः ३ शैवाः ४ वैष्णवाः ५ गाणपत्याः ६ स्मार्ताः इत्युपासकाः	१ ऊर्ध्वाम्नायः २ पूर्वाम्नायः ३ दक्षिणाम्नायः ४ पश्चिमाम्नायः ५ उत्तराम्नायः ६ अधराम्नायः इति सांप्रदायिकाः	१ शाब्दिकाः २ मीमांसकाः ३ नैयायिकाः ४ आलंकारिकाः ५ पौराणिकाः ६ ऐतिहासिकाः इति तार्किकाः

अथैषां षट्त्रिंशद्दर्शनशास्त्राणां विभागपरिलेखः—

अनीश्वराः लौकायतिकाः	केवलेश्वराः नैगमिकाः सांख्यप्रवचनाः	प्रकृतिमदीश्वराः नैगमिकाः निर्विशेषाद्वैतवादः	विभूतिमदीश्वराः नैगमागमिकाः सौराः	अस्त्रायपराः शुद्धागमिकाः ऊर्ध्वाम्नायः	ऐकदेशिका शाब्दिकाः
माध्यमिकाः वैज्ञानिकाः सौत्रान्तिकाः वैभाषिकाः	शैवाः नकुलीशाः पाशुपताःकारुकाः सिद्धान्तिनः कापालिकाः	विशिष्टाद्वैतवादः द्वैतवादः शुद्धाद्वैतवादः द्वैताद्वैतवादः	शाक्ताः शैवाः वैष्णवाः गाणपत्याः	पूर्वाम्नायः दक्षिणाम्नायः पश्चिमाम्नायः उत्तराम्नायः	मीमांसकाः नैयायिकाः आलङ्कारिकाः पौराणिकाः
स्याद्वादिकाः	वैशेषिकाः	चैतन्यवादः	स्मार्ताः	अधराम्नायः	ऐतिहासिकाः
इति षट्— नास्तिकाः	इति षट्— स्वतन्त्रेश्वराः	इति षट्— प्रकृतितन्त्रेश्वराः	इति षट्— विभूतितन्त्रेश्वराः	इतिषट्— साम्प्रदायिकः	इति षट्-दार्शनिकाभासाः
एषां मध्यमाश्चत्वारः वैनाशिकाः १	एषां मध्यमाश्चत्वारः माहेश्वराः २	एषां मध्यमाश्चत्वारः भागवताः ३	एषां मध्यमाश्चत्वारः प्रपन्नाः ४	एषां मध्यमाश्चत्वारः दैशिकाः ५	एषां मध्यमाश्चत्वारः तार्किकाः ६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—तत्र नास्तीश्वरो नास्ति वेदप्रामाण्यमित्यातिष्ठमानाः केवलयुक्तिमुपष्टम्भमाना नास्तिकाः ॥ १ ॥

२—अथ प्रकृतिद्वारमनपेक्ष्य स्वतन्त्रेच्छया जगत्कर्तारमीश्वरं मन्यमानाः स्वतन्त्रेश्वराः ॥ २ ॥

३—अथ प्रकृतिसापेक्षं जगत्कर्तारमीश्वरं मन्यमानाः प्रकृतितन्त्रेश्वराः । तेऽमी उभये स्वसिद्धान्तस्थापने वेदप्रामाण्यमभ्युपगच्छंतीति नैगमिका इष्यन्ते ॥ ३ ॥

४—अथैते देवताविशेषा ईश्वरविभूतयः । तद्द्वारेश्वरे बुद्धिं कुर्वन्तो विभूतितन्त्रेश्वराः स्युः । तेषु अनन्योपासकत्वं प्रपन्नत्वम् । ते चैते नैगमिकं सिद्धान्तमातिष्ठमानास्तदीश्वरोपासनायामागमोक्तप्रकारमातिष्ठन्ते तस्मात्ते नैगमागमिकाः ॥ ४ ॥
तत्रैते स्वतन्त्रेश्वराः प्रकृतितन्त्रेश्वराः विभूतितन्त्रेश्वराश्चेत्येते त्रयोऽप्युपासकाः स्युः ।

५—अथ षडाम्नायविदः सांप्रदायिकाः शुद्धागमिका भवन्ति ॥ ५ ॥

६—एभ्योऽन्ये त्वैकदेशिका दार्शनिकाभासाः । तेषामुपपाद्यविषयाणामैकदेशिकतया दार्शनिकत्वप्रयोजकसृष्टिविद्यात्वाभावात् । एषां हि विश्वसाधारणोत्पत्तेरनिर्वक्तव्यत्वेऽपि आनुषङ्गिकतया विश्वप्रभवे दृष्टिकोणप्रक्षेपः । तथा हि—शाब्दिकास्तावत् पदविद्यां निरूपयन्तो वर्णाक्षरपदवाक्यादिशब्दस्फोटानुषङ्गादीश्वरं पश्यन्ति । स्फोटस्याव्ययपुरुषरूपत्वेनेश्वरांशत्वात् । अथान्ये तार्किका वाक्यन्यायविदो वेदवाक्यानां कर्म्मकाण्डज्ञानकाण्डभेदाद् द्वेधा विभक्तानां कर्म्मब्रह्मभेदेन प्रतिपाद्यविषयभेदात् पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसाभेदेन पृथगिवैतद्वाक्यमहावाक्यतात्पर्य्यार्थं मीमांसमाना अपि वेदवाक्योपदिष्टानुषङ्गेणेश्वरे सज्जन्ते। वाक्यविद्यानां तेषां वाक्यार्थसिद्धिर्मुख्यतो लक्ष्या न तु विश्वप्रभवतयेश्वरसिद्धिः । सृष्टिविद्यात्वाभावात् । एवमेते नैयायिका अन्ये तर्कन्यायविदः कथाविद्यत्वात् कथामार्गनिरूपकाः प्रमाणप्रमेयनिरूपणाय प्रवर्तमाना दार्शनिकानां द्वदशविधप्रमेयविषयेषु—आत्मशरीरेन्द्रियार्थमनोबुद्धिप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गलक्षणेषु वादानुवादकथा उदाहरणविधया प्रदर्शयन्तस्तत्प्रसङ्गेनेश्वरे सज्जन्ते । तेषां कथकेष्वात्मपरमात्मोपपादकानामेकस्य विजयसिद्धिर्लक्ष्या न तु विश्वोत्पत्तिः स्वातन्त्र्येण । तस्मात्तदैकदेशिकं भाव्यम् ॥

तदित्थमेतानि सर्वाणि वेदशास्त्रविरुद्धानि तर्कशास्त्राणि तर्काप्रतिष्ठानात्तु अनिर्धारितार्थानीमानि सत्यादपेतानि वाग्बुद्धिविलासमात्राणि पर्य्यवसीयन्ते । अद्रष्टृभिस्तर्कितार्थत्वात् । एवं स्थिते परस्परव्याहतार्थतयैषामविशेषेण सर्वेषाम-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रामाण्यापत्तौ तत्सहयोगेनोपनिषत्प्रकरणानामेषां विरुद्धाविरुद्धनानाविधसृष्टिप्रतिपादकानां परस्परव्याहतार्थतया संदिग्धविषयाणां कदाचिदप्रामाण्यं कैश्चिदुपकल्प्येत। विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेऽपि दृष्टवाक्यत्वाभिमानेनैषामुपनिषत्प्रकरणानां प्रामाण्याभ्युपपत्तौ तु तत्सामान्यादन्येषामपि दर्शनतन्त्राणां प्रामाण्यमभ्युपपद्येत। तथा च किं प्रमाणं किमप्रमाणमित्येवमेकत्राप्यर्थे निर्धारणायोगाद् जगत्स्रष्टृसम्बन्धे सत्यं विज्ञानमत्यन्तं तिरोहितमेव स्यात्। तत्र यथेच्छसविचारण यत्किञ्चित् प्रतिपद्यमानो निःश्रेयसा प्रतिहन्येत। अनर्थञ्च्चेयात्। तस्मात् तदुद्धारार्थं संदिग्धार्थानामेषामुपनिषत्प्रकरणानां पदार्थनिर्धारणमत्यन्तमावश्यकं भवतीत्यारभ्यते खल्विदं ब्रह्ममीमांसाशास्त्रम्॥

ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य द्विविधो निष्कर्षः

तत्र चैतस्मिन् ब्रह्ममीमांसाशास्त्रे निष्कर्षद्वयं विशिष्य निरूपयितुमिष्यते। तथा हि—

१—प्रथमं तावत् प्रतिज्ञायते—"जन्माद्यस्य यतः। शास्त्रयोनित्वात्। तत्तु समन्वयात्। इति।

उपनिषदादेशाः शास्त्रम्। तत्रास्य विश्वस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतो निर्धार्य्यते तद् ब्रह्मेति स्थितिः प्रतिज्ञायते॥ यत्तु कश्चिद् ब्रूयात्—नात्यन्तं ब्रह्मत एवास्य जन्माद्याख्यायते। उपनिषत्स्वेव हि पृथक् पृथगन्यान्यतो नानाविधविश्वसृष्टेराख्यानादिति चेत्तत्राह—'तत्तु समन्वयादिति"—। उपनिषत्सु सृष्टिक्रमभेदेनानेकधा विश्वजन्माद्याख्यानेऽप्येकस्मिन्नेव तस्मिन् ब्रह्मण्यन्ततस्तेषां सृष्टिप्रकरणानां समन्वयोपपत्तेस्तत्रैव सृष्टिकर्तृत्वं निष्कृष्यते॥ सोऽयमेको ब्रह्ममीमांसा शास्त्रार्थः॥ १॥

अथ वेदान्तोपनिषद्भ्यो भिन्नानि तु लोके प्रचरितानि योगिमहर्षीतरसाधारणमनुष्यैरसाक्षात्कृतधर्म्मभिर्लोकदृष्ट्या दृष्टानि युक्तिमात्रसाराणि दर्शनान्यवैज्ञानिकतया सत्यादपेतानि सन्तीति कृत्वा नात्यन्तं श्रद्धानमर्हन्ति तदेतद्द्वितीयं प्रतिज्ञायते—"ईक्षतेर्नाशब्दमिति।" अशब्दं श्रुतिभिन्नं विश्वसृष्टिप्रतिपादकं सर्वमेव तन्त्रं न ग्राह्यम्। ईक्षतिर्दृष्टिः तस्या एव सत्यार्थतया प्रामाण्यात्। अशब्दानां तु महर्षिभिरदृष्टार्थत्वेनाप्रामाण्यादिति। सोऽयंद्वितीयो ब्रह्ममीमांसाशास्त्रार्थः॥ २॥

दृष्टियुक्त्योरिव शब्दविशेषयोः श्रुतिस्मृत्योः प्रत्यक्षानुमानशब्दः।

अत्रेदं बोध्यम्। याथातथ्यं सत्यम्। यथास्ति तथा प्रतिपत्तिः प्रमा। प्रमाजनकं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रमाणम् ॥ प्रत्यक्षं शब्दोऽनुमानमिति प्रमाणानि ॥ तत्रानुमानं च शब्दश्च प्रत्यक्ष-मूलकत्वे सत्येव प्रमाणे भवतः इत्यतस्ते परतः प्रमाणे इष्येते । प्रत्यक्षं त्वितरानपेक्षं प्रमाणानां प्रमाणं भवति । तस्मात् स्वतःप्रमाणं तदिष्यते । चक्षुषि वै मनुष्येभ्यः प्रकृत्या सत्यं निहितमाम्नायते—

"नानृतं वदेत् ॥ विचक्षणवतीं वाचं वदेत् । चक्षुर्वै विचक्षणम् । एतद्वै मनुष्येषु सत्यं निहितं यच्चक्षुः । यत्र द्वौ विवदमानावेयातां—अहमदर्शमहमश्रौषमिति । य एव ब्रूयादह-मदर्शमिति—तस्मा एव श्रद्दध्याम"— इति ॥

तस्मादियं दृष्टिरितरानपेक्षं स्वतःप्रमाणं प्रत्यक्षं नामेति स्थितिः ॥ १ ॥

(२)—अथैष परीक्षकोऽर्थद्रष्टा तमेतमार्षेण चक्षुषा दृष्टमर्थं परेभ्य उपदेशाय व्याचष्टे इत्येतस्य द्रष्टुरेतद् दृष्ट्यनुसारिशब्दः श्रुतिः । तथा चाहुः—

साक्षात्कृतधर्म्माण ऋषयो बभूवुः । ते असाक्षात्कृतधर्म्मभ्योऽवरेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्राहुः—दैवीं वाचमुद्यासमिति ।

तत्रैषा दृष्टिरेव हि तेन शब्देन विषयीक्रियते—इति शब्दार्थयोस्तादात्म्याध्य-वसायात् सा दृष्टिरेवेयं श्रुतिरिष्यते । तथा हि—द्रष्टुरयं शब्द इति ज्ञानोत्तरमस्य शब्दस्य प्रामाण्याय नान्यत्किञ्चिदपेक्ष्यते । अपि त्वस्मादेव शब्दादितरानपेक्षं नान्तरीयकतया साक्षादिवार्थः श्रूयते । तेनाऽयं द्रष्टुः शब्दः श्रुतिरित्याख्यायते । निरपेक्षो रवः श्रुतिरिति सिद्धान्तात् । एतेन द्रष्टुः शब्दस्य दृष्टिसापेक्षत्वादितरान-पेक्षत्वं नास्तीति नेतरानपेक्षत्वलक्षणमेतच्छ्रुतित्वमुपपद्यते इति केषांचिदुक्तिः परास्ता । श्रवणप्रयोजकतया श्रुतिशब्देन तमेतं दृष्टमर्थं दर्शयतीति कृत्वा दृष्टेरेव साक्षादुपसंगृहीतत्वात् तस्या इतरानपेक्षत्वात् । तस्मादियं श्रुतिर्दृष्टित्वात् प्रत्यक्षं प्रमाणमिष्यते ॥ २ ॥

(३)—अथाऽयं श्रोता श्रुतमेतमर्थमन्येभ्यो व्याचष्टे स तस्यायं श्रुतिशब्द-समानार्थः शब्दः स्मृतिः । अनेन चार्थश्रुतिः श्राव्यते नार्थदृष्टिः ॥ व्यवहिता त्वेवार्थ-दृष्टिरनुमीयते तस्मादियं स्मृतिरनुमानम् । तदित्थं प्रत्यक्षमनुमानं शब्द इत्येतेषां प्रमाणानां मध्ये योऽयमन्यतमः शब्दस्तस्येदं पृथगिवैतद् द्वैविध्यमाख्यायते । प्रत्यक्षं चानुमानं चेति । श्रुतिर्नामायं शब्दस्तावद् दृष्टिमूलकत्वात् स्वतःप्रमाणं प्रत्यक्षम् । स्मृतिस्तु शब्दः श्रुतिमूलकत्वात् परतः प्रमाणमनुमानम् । "अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्"—(ब्रह्मसूत्र—३।२।२४) इत्यादिसूत्रेषु मीमांसायां श्रुतिस्मृत्योर्विवक्षितत्वात् ॥ शब्दातिरिक्ते तु प्रत्यक्षानुमाने भिद्येते । तथा चेदं चाक्षुषं ज्ञानमशाब्दी दृष्टिः । श्रुतिस्त्वेषा शाब्दी दृष्टिः । इत्येवं द्वे प्रत्यक्षे ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ स्मृतिरेषा शाब्दस्तर्को, युक्तिस्त्वशाब्दस्तर्क—इत्येवं द्वे अनुमाने। इत्थं च शब्दस्य द्वैविध्योपगमात् चत्वारि प्रमाणानि निष्कृष्यन्ते ॥ ३ ॥

१—प्रत्यक्षम्=अशाब्दम् दृष्टिः स्वतःप्रमाणम्

२—अनुमानम्=अशाब्दम् युक्तिः परतःप्रमाणम्

३—प्रत्यक्षम्=शाब्दं श्रुतिः स्वतःप्रमाणम्

४—अनुमानम्=शाब्दं स्मृतिः परतःप्रमाणम्—इति।

(४)—प्रत्यक्षपूर्वकं त्वनुमानप्रामाण्यं क्लृप्तमित्यतः स्मृतिशब्दे यत्रोपष्टम्भकतया तावदियमीक्षतिर्दृष्टिर्मूलतो नोपतिष्ठते सा स्मृतिरप्रमाणं भवति। परतःप्रमाणानां स्वतःप्रामाण्यानुपपत्तेः। श्रुतिशब्दसंवादात्तु स्मृतीनां प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्ति। "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्"—इति जैमिनिस्मरणाच्छ्रुतिविरुद्धमशब्दं तदप्रमाणं भवतीति न ग्राह्यम्॥ ईक्षतेरेवार्थग्रहणे निदानत्वात्। योगजार्षेयदृष्टिमन्तरेणातीन्द्रियार्थविषयकज्ञाने याथार्थ्यस्य संदिग्धत्वात् ॥ तस्मादेतान्युपनिषद्भ्यो विरुद्धार्थप्रतिपादकानि सर्वाण्येव दर्शनतन्त्राणीक्षतिवैकल्यादप्रमाणानीति सिद्धम् ॥ ४ ॥

(५)—ननु ईक्षतेर्नाशब्दमित्याह—स्मृतितन्त्रं तु नाशब्दमिति चेन्न। प्रमाणशब्दव्यतिरेकस्य तत्र विवक्षितत्वात्। आप्तवाक्यं तु शब्दः प्रमाणम्। द्रष्टा हि साक्षात्कृतधर्म्मा विषयमन्वाप्तो भवति। न स्मर्ता। अपरीक्षकत्वेन स्वयमर्थद्रष्टृत्वाभावात् ॥ अथेदमुपनिषच्छास्त्रं तु योगजार्षेयदृष्ट्या साक्षात्कृतधर्मणां महर्षीणां दृष्टिः शब्देनाभिनीतमस्तीति स श्रुतिशब्दः प्रत्यक्षं प्रमाणम्। तदुक्तमभियुक्तैः—

आविर्भूतप्रकाशानामनभिप्लुतचेतसाम्। अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥ १ ॥

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा। ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥ २ ॥

तस्मादौपनिषदं ब्रह्मविज्ञानमेवैकं याथार्थ्यादुपादेयम्। अन्यानि तु सांख्यादीनि तन्त्राण्यनुपादेयानीति ब्रह्ममीमांसासिद्धान्तः सिद्धः ॥

॥ इति शास्त्रब्रह्मनिरुक्तौ दर्शनशास्त्रप्रसङ्गः पूर्णः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५—षोडशपदीपदार्थनिरुक्तिर्नाम-

ब्रह्ममीमांसापरिष्कारप्रकरणम्

अस्मिंश्च ब्रह्ममीमांसाशास्त्रे चत्वारोऽध्यायाः प्रत्यध्यायं चत्वारः पादा इति षोडशकला भवन्ति। तथा हि—

ईश्वरानुगतशब्दसमन्वयाध्यायो नाम पदविवेचनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥ तत्र चत्वारः पादाः—

१—निरूढशब्दपादो नाम भूतेश्वरसाधारणपदविवेचनापादः प्रथमः ॥ १ ॥

२—विशेषणशब्दपादो नाम जीवेश्वरसाधारणपदविवेचनापादो द्वितीयः ॥ २ ॥

३—पराश्रयशब्दपादो नाम विचालिपदविवेचनापादस्तृतीयः ॥ ३ ॥

४—प्रधानशब्दपादो नाम परगृहीतपदविवेचनापादश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अथ दर्शनसमन्वयाध्यायो नाम मतविवेचनाध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥ तत्र चत्वारः पादाः—

१—आक्षेपपादो नाम परकृताक्षेपनिरासः प्रथमः पादः ॥ १ ॥

२—मतान्तरपादो नाम वेदान्तविरूद्धमतनिरासो द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

३—विरोधाभासपादो नाम वेदान्तविरोधाभासनिरासस्तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

४—प्राणस्थितिपादो नाम प्राणविसंवादनिरासश्चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

एवमध्यायद्वयमीश्वरपदार्थः ॥

अथ ईश्वराधीनकर्तव्यताकजीवधर्मविवेचनाध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥ तत्र चत्वारः पादाः—

१—मृत्युजन्मप्रबोधावस्था = प्रेत्यभावपादः प्रथमः ॥ १ ॥

२—स्वप्नत्रयावस्था = ईश्वरपरिष्वङ्गपादो द्वितीयः ॥ २ ॥

३—अपरमुक्त्यवस्था = ईश्वरोपासना पादस्तृतीयः ॥ ३ ॥

४—परममुक्त्यवस्था = आत्मज्ञानपादश्चतुर्थः ॥ ४ ॥ इति ॥

अथ जीवाधीनकर्तव्यताकजीवधर्म्मविवेचनाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥ तत्र चत्वारः पादाः—

१—परविद्याक्रमः प्रथमो विद्यापादः ॥ १ ॥

२—क्रममुक्तिविषयोत्क्रान्तिक्रमो द्वितीय उत्क्रान्तिपादः ॥ २ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—गतिपर्य्यवसानं तृतीयः परागतिपादः ॥ ३ ॥

४—मुक्तावस्थात्मरूपं चतुर्थो मुक्तिपादः ॥ ४ ॥

एवमध्यायद्वयं जीवपदार्थः। एतावन्तो विषयाः सुनिरूपिताः शारीरकमीमांसाशास्त्रं भवति। तदेतदिह संक्षेपेण विविच्यते ॥

शास्त्रस्य मुख्यलक्ष्यो जीवः

तत्र पूर्वेणाध्यायद्वयेन शारीरकजीवानुग्रहीताऽसावीश्वरः पश्चिमेन त्वध्यायद्वयेनायं शारीरको जीवो निरूप्यते—इत्युक्तम् किन्तु उभयत्राऽप्यनुस्यूतोऽयं जीवात्मैव प्रत्याश्रयभूतोऽनुव्याचिख्यासितोऽस्तीति सुनिभृतं प्रत्येतव्यम् ॥

ईश्वरमूलको जीवः

अपि चेह शारीरकमीमांसायामीश्वरनिरूपणप्राथम्यादीश्वरपूर्वका जीवा इति सिद्धान्तः संगृहीतो भवति। तथा हि—समुद्रादुत्थिताभ्योऽद्भ्यो मेघवृष्टिद्वारा नानाविधप्रवाहोत्पत्तिवदमुष्मादीश्वरात् प्रवृत्ताभ्यः कलाभ्यो योगमायासंनिवेशद्वारा नानाविधा जीवा उत्पद्यन्ते—इति कृत्वैषां जीवानामीश्वरपूर्वकत्वसिद्धिः। तत्र भिन्नभिन्नानेकयोगमायापरिच्छेदवशाद् भेदेन चित्तमनोबुद्धिसंस्थाने बुद्धिधर्म्माऽविद्यादोषैः पृथक् पृथगव्ययावरणात् पृथक्त्वेनोपपद्यमानाश्चिदाभासभूता इमे जीवा नात्यन्तमीश्वरादतिरिच्यन्ते न चात्यन्तमीश्वरादभेदेनोपनीयन्ते। अपि तु भिन्नाभिन्ना निर्धार्य्यन्ते। विभिन्नधर्म्मोपसंक्रमणेनौपाधिकभेदादीश्वरांशत्वेन तदभेदाच्चेति दिक्। एतेन स्वयंभूतानामनाद्यनन्तप्रवाहाणां जीवानां समष्टिरेवायमीश्वर इति कृत्वा जीवपूर्वकोऽसावीश्वर इति केषांचिदपि सिद्धान्तः प्रत्याख्यातो भवति। ईश्वरपूर्वकत्वात्तु शारीरकाणां जीवानामस्यां शारीरकमीमांसायामीश्वरः प्रथमतोऽपेक्ष्यते इत्यतः प्रथमतोऽयमीश्वरो मीमांस्यते ॥

तत्र चेश्वरानुबंधिधर्म्मनिरूपके पूर्वार्द्धे सांख्यकल्पितं प्रधानस्य जगत्कर्तृत्वं प्रत्याख्यायाखिलजीवपरायणत्वेनेश्वरं प्रतिपाद्य तस्य जगत्स्रष्टृत्वं, जगन्मयत्वं जगत्प्रविष्टत्वं जगदाधारत्वं च व्यवस्थाप्यते। तत्र चैतस्मिन् सिद्धान्ते व्यवस्थापनीये ब्रह्मेतरवाचितया लोके प्रसिद्धा वेदान्तेषु चैतज्जगत्स्रष्टृपरतयाम्नाताः कतिचिच्छब्दा विप्रलम्भकतया प्रत्युपतिष्ठन्ते। बहूनां चान्येषां स्मृतिकाराणां दर्शनान्यपि जगत्सृष्टिसम्बन्धेऽन्यान्यनामरूपान् निर्म्मातॄनुपदर्शयन्ति सन्तीश्वरकारणकत्वपक्षं विसंवादितयोत्तिष्ठमानान्यपलापयन्ति। अतश्चैषां शब्दानामस्मिन्नीश्वरे ब्रह्मण्येव समन्वयं दर्शयितुं तथा पुनः—अन्यान्यस्मृतिमतानां चैतद्ब्रह्मकारणताविरोधिनामप्रामाण्यं प्रदर्शयितुं क्रमेणेदमध्यायद्वयं प्रवर्तते ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्दसमन्वयलक्षणः शब्दविमर्शाध्यायः प्रथमः

तत्र तावल्लोके कार्यब्रह्मविशेषणपरतया प्रसिद्धानां केषांचिच्छब्दानां जगत्स्रष्टृपरतयोपनिषत्सु प्रयोगाद् ब्रह्मणि जगत्स्रष्टृत्वसिद्धान्तः संदिग्धो भवति । तेनैतेषां संदिग्धार्थानां चत्वारिंशच्छब्दानां ब्रह्मण्येव समन्वयमुपपादयितुमयं तावत् प्रथमः शब्दसमन्वयाध्यायः प्रवर्तते । ते चैते शब्दाश्चतुर्धा वर्गीकृता भवन्ति ॥

(१) निरूढशब्दपादः

१—ब्रह्म—अकारणमुपादानकारणं निमित्तकारणं कार्य्यं चेति भेदाच्चतुर्लक्षणम् ।

२—आत्मा—सच्चिदानंदलक्षणः ।

३—अन्तरात्मा—सर्वान्तरलक्षणः ।

४—आकाशः—परायणलक्षणः ।

५—प्राणः—प्रस्तावलक्षणः ।

६—ज्योतिः—चतुष्पाल्लक्षणम् ।

७—छन्दो—गायत्र्यादिलक्षणम् । छन्दो—महोक्थमहाव्रताग्निलक्षणम् ।

८—प्राणः—इन्द्रप्रज्ञायुरमृतलक्षणम् ।

इत्यष्टावेते भूतदेवताप्राणानुबन्धिनः । कर्म्मावस्थापरिवर्तितेश्वरप्रतीकाभिप्राया निरूढशब्दाः प्रथमः पादः ॥ १ ॥

(२) विशेषणशब्दपादः

१—मनोमयः प्राणशरीरो भारूप आकाशात्मा ।

२—अत्ता चराचरौदनः ।

३—गुहाहितो गुहाप्रविष्टो गूढोत्मा ।

४—चक्षुषोऽन्तरश्चाक्षुषः ।

५—अन्तर्य्यामी ।

६—भूतयोनिः ।

७—वैश्वानरः ।

इति सप्तैते जीवदेवताप्राणानुबन्धिनः कर्म्मावस्थापरिवर्तितेश्वरप्रतीकाभिप्राया विशेषणशब्दा द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

(३) पराश्रयशब्दपादः

१—द्युभ्वाद्यायतनम् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—भूमा ।

३—अक्षरमोंकारः ।

४—दहराकाशः ।

५—ज्योतिषां ज्योतिः ।

६—अंगुष्ठादिप्रमितः ।

७—प्रकम्पनः प्राणानां प्राणः ।

८—परज्योतिः ।

९—नामरूपनिर्वाहकोऽन्तराकाशः ।

१०—विज्ञानमयोऽर्थो हृत्प्राणस्थः ।

इति दशैते हृदयस्थजीवानुबन्धिनः कर्म्मावस्थापरिवर्तितेश्वरप्रतीकाभिप्रायाः पराश्रयशब्दाः तृतीयः पादः ॥

(४) प्रधानपरशब्दपादः

१—अव्यक्तम् ।

२—अजा ।

३—पञ्चजनः ।

४—कारणम् ।

५—कर्ता ।

६—भोक्ता ।

७—प्रकृतिः ।

इति सप्तैते जगत्स्रष्टृवाचकतया परैः प्रयुक्ताः प्रधानपरशब्दाश्चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

स इत्थं चतुर्भिः पादैरयं प्रथमः शब्दविमर्शाध्यायो वृत्तः ॥ १ ॥

जगत्कर्तृनिर्णयलक्षणो मतविमर्शाध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

अथैतज्जगत्प्रभवोपपादनविषयी मतविमर्शाध्यायो द्वितीयो भवति । तत्रेश्वरसर्वमतप्रत्युत्थानपूर्वकमीश्वरस्य जगत्कर्तृत्वमतं चतुर्भिः पादैरास्थीयते । तथा हि—

(१) परकृताक्षेपनिरासपादः

वेदान्तसिद्धान्ते तावदितरदार्शनिकैर्बहवोऽनुपपत्तयः प्रदर्श्यन्ते । तत्समाधानरूपेण तावत् परकृताक्षेपनिरासः प्रथम पादः । *

---

* अत्रत्यः पाठस्त्रुटितः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) परमतनिरासपादः

वेदान्तसिद्धान्तविरुद्धनि षड्दर्शनानि नोपपद्यन्ते । अतस्तदनुपपत्तिप्रदर्शनाय प्रवृत्तः परमतनिरासो द्वितीयः पादः—

१ - प्राधानिकाः = सांख्याः = कापिलाः ।

२—वैशेषिकाः = काणादाः = औलूकाः ।

३—वैनाशिकाः = सौगताः = बौद्धाः ।

४—स्याद्वादिकाः = आर्हताः = जैनाः ।

५—अप्रकृतिकेश्वरकारणिकाः माहेश्वराः ।

६—सप्रकृतिकेश्वरकारणिकाः भागवताः ।

इत्येते वेदान्तविरुद्धाः षट्सिद्धान्ता इह विविच्य निरस्यन्ते ॥

(३) भूतकरणजीवविषयः स्वगतविरोधाभासनिरासपादः

अथ भूतानां करणानां जीवानां प्राणानां चेश्वरादुत्पत्तौ तत्र विलयने च वेदान्तानामन्योन्यं विप्रतिपत्तयः प्रतिभासन्ते । तत्समाधानाय तु वेदान्तीयस्वगतविरोधाभासनिरासौ तृतीयचतुर्थौ पादौ भवतः । भूतकरणजीवविषया विचारास्तृतीये प्राणविषयास्तु चतुर्थे पादे द्रष्टव्याः । तथा हि—

१—आकाशवायुतेजोऽप्पृथिवीनां मनोबुद्ध्योश्चेश्वरजन्यत्वे वेदान्तानां परस्परविरोधपरिहारः ।

२—जीवानामीश्वरमूलकत्वे वेदान्तानां परस्परविरोधपरिहारः ।

३—जीवानां नित्यागन्तुकचैतन्याचैतन्याभ्यां चेतनाविरोधेन तद्व्यवस्था ।

४—जीवानां विभुत्वपरिच्छिन्नत्वाभ्यां परिमाणविरोधेन तद्व्यवस्था ।

५—जीवानां बुद्धियोगादिस्वरूपाश्रितधर्म्मसंशये तद्व्यवस्था ।

६—जीवानां कर्तृत्वाकर्तृत्वसंशये तद्व्यवस्था ।

७—जीवानां स्वातन्त्र्येश्वरपारतन्त्र्यसंशये तद्व्यवस्था ।

८—जीवेश्वरभेदाभेदसंशये तद्व्यवस्था । इत्येतैरर्थैस्तृतीयः पादः ।

(४) प्राणविषयः स्वगतविरोधाभासनिरासपादः

अथ प्राणविषयका एकादशविमर्शाश्चतुर्थः पादः । तत्र प्राणानाम्—

१—उत्पत्तिः
२—संख्या
३—परिमाणम्
४—श्रैष्ठ्यम्
५—स्वरूपोपकरणत्वं
६—पञ्चवृत्तित्वम्
७—देवतासाधिष्ठानत्वम्
८—जीवाधिष्ठितत्वम्
९—मुख्यप्राणतत्त्वान्तरत्वम्
१०—संज्ञामर्तिक्लृप्तिः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्येतेऽर्था निरूप्यन्ते । स इत्थं चतुर्भिः पादैरयं द्वितीयो मतविमर्शाध्यायो वृत्तः ॥

इति द्वाभ्यामध्यायाभ्यामीश्वरविषयं शास्त्रस्य पूर्वार्द्धं नेयम् ॥

जीवनिर्णयलक्षणो जीवस्वरूपधर्म्मविवेकाध्यायस्तृतीयः ।

अथ तृतीयचतुर्थाभ्यामध्यायाभ्यां जीवविषयमुत्तरार्द्धं नेयम् । तत्र तावत् तृतीयेऽध्याये जीवस्य जीवत्वोपपादकाः स्वरूपधर्म्मा विविच्यन्ते—

(१)—१—जाग्रत्, स्वप्नः, सुषुप्तिः, मोहः, मूर्च्छा, मृत्युः – इत्येताः षडवस्थाः ।

२—निर्गुणात्मज्ञाननिबन्धना परा मुक्तिः ।

३—सगुणेश्वरोपासनानिबन्धना चापरा मुक्तिः ।

४—संसारयात्रालक्षणा कर्म्मगतिः ।

५—ऊर्ध्वाधरलोकेष्वारोहावरोहलक्षणः प्रेत्यभावश्च ॥

इति जीवलक्षणस्य पुरुषस्य स्वे धर्मा भवन्ति ईश्वरलक्षणे पुरुषे तेषां धर्म्माणामत्यन्ताभावात् ॥

(२)—जीवानामन्यत्रान्यत्र लोके संचारः संसारः । देवलोकः पितृलोको जीवलोकः—इत्येते त्रय एव लोकाः जीवानां संसाराय कल्पन्ते । (बृ० आ० १। ५६) जीवलोको, मनुष्यलोकः, पृथ्वीलोक—इत्येकोऽर्थः ॥ लोकाल्लोकान्तरं संचरन्तो जीवा एषामेवान्यतमे क्वचिल्लोके कर्म्मभोगायोपस्थितास्तिष्ठन्ति ।

(३)—द्विविधा हीयं जीवयात्रा भवति । संपरायः प्रेत्यभावश्चेति । जीवलोकात्प्रस्थितस्य देवलोके पितृलोके वा गतिः संपरायः । अथ देवलोकात्पितलोकाद्वा प्रस्थितस्य पुनरस्मिन् जीवलोके प्रत्यागतिः प्रेत्यभावः ॥

(४)—कर्म्म च विद्या चैतस्या जीवयात्राया निमित्ते भवतः । तत्र कर्म्म द्विविधमशुद्धं विद्यासमुच्चितं चेति । विद्यानिरपेक्षत्वे शुद्धं लौकिकं कर्म्म—इष्टम् आपूर्तं दत्तं चेत्यादि । अथ विद्यापेक्षित्वे विद्यासमुच्चितं वैदिकं कर्म्मयज्ञः तपो दानमित्यादि । तत्र विद्यासमुच्चितकर्म्मणा देवलोके गतिर्भवति । ब्रह्मपथेन ब्रह्ममयेऽपुनर्मारलोके वा, देवपथेनाग्निमये स्वर्गलोके वा अथ शुद्धेन कर्म्मणा पितृलोके गतिर्भवति सोममये धर्म्मलोके वा यममये नरकलोके वा ।

(५)—अथ विद्याप्येषा विशुद्धसमुच्चितभेदाद् द्विविधा—सगुणब्रह्मविद्यालक्षणेश्वरोपासनाकर्म्मसमुच्चिता विद्या । अथ निर्गुणब्रह्मविद्यालक्षणमात्मज्ञानं विशुद्धा विद्या । तत्रोपासनावशादपरा मुक्तिः । ज्ञानात्तु परा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुक्तिः ॥ विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः । न तत्र दक्षिणा यन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः ॥

(६) १—तत्र विशुद्धकर्म्मणा—उदन्वती, पीलुमती, प्रद्यौरित्येते त्रयः पितृस्वर्गाः ।

२—अथ विद्यायुक्तकर्म्मणा—अपोदकः, ऋतधामा, अपराजितः, ब्रध्नस्य विष्टपम्, अतिद्यौः, प्रद्यौः, रोचनः, इति सप्तविधा देवस्वर्गाः ।

३—अथ सगुणविद्यायां कामप्रलोकगतस्यापुनर्मारसंज्ञिका मुक्तिः । तत्रोपास्यदेवतासंबन्धेन सालोक्यं, सामीप्यं, सारूप्यं, सायुज्यमित्येताः सिद्धयो भवन्ति ।

४—अथ निर्गुणविद्यायामशोकमहिमलोकगतस्यापुनर्मारसंज्ञिका मुक्तिः । तत्र कर्म्मबन्धात्यन्तापवर्गो निःश्रेयसं कैवल्यं निर्वाणं वा सिद्धयो भवन्ति । क्षीणोदर्को वा भूमोदर्को वा कैवल्यम् ।

ता एताश्चतुर्विधा लोकान्तरेषु जीवयात्राः ❀ । अथ जीवलोके तु मनुष्यपशुपक्षि-

---

संसारः ❀

१—संपरायः—ब्रह्मपथदेवपथाभ्यामग्निमये देवलोके गतिः । विद्यामूला ब्रह्मलोके स्वर्गलोके वा ।

२—संपरायः—पितृपथयमपथाभ्यां सोममये पितृलोके गतिः । कर्म्ममूला यमलोके धर्मलोके वा ।

३—प्रेत्यभावः—सुषुम्णापथेन ..... मनुष्यमये जीवलोके गतिः । कर्म्मशेषमूला सत्त्वविशाले रजोविशाले तमोविशाले ।

संसार-निमित्तानि

१—विद्या विशुद्धा निर्गुणविद्या आत्मज्ञानम् परामुक्तिः = भूमोदर्कक्षीणोदर्कौ ।

२—विद्याकर्मसमुच्चिता सगुणा विद्या ईश्वरोपासना अपरा मुक्तिः = कामप्रलोकः, अशोकमहिमः ।

३—कर्म्म विशुद्धं लौकिकम्—इष्टम् आपूर्तम् दत्तम् पितृस्वर्गः = धर्म्मलोकः, यमलोकः ।

४—कर्म्म विद्यासमुच्चितं वैदिकम्—यज्ञः तपः दानम् देवस्वर्गः = त्रिविष्टपो ब्रध्नस्यविष्टपो वा ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कीटकृमिद्रुमयोनिभेदप्रतिपत्तिलक्षणसंसारो जीवयात्रा भवति । तेऽमी जीवधर्म्माः प्रतिपत्तव्याः ।

ते चैते जीवधर्म्मास्तृतीयाध्याये चतुर्भिः पादैर्विभज्योपपद्यन्ते । तथा हि—

१—प्रथमे जीवयात्रालक्षणे प्रेत्यभावपादे जीवस्य मृत्युजन्मलक्षणा कर्म्मगतिः ।

२—द्वितीये जीवेश्वरभेदाभेदलक्षणे वैधर्म्यपादे जीवेश्वरयोर्धर्म्मभेदोपपादनम् ।

३—तृतीये सगुणविद्यालक्षणे उपासनापादे जीवस्य ईश्वरोपासनामूला सिद्धिः ।

४—चतुर्थे निर्गुणविद्यालक्षणे ज्ञानपादे जीवस्य आत्मज्ञानमूला सिद्धिः ।

तत्र तावज्जीवधर्म्मनिरूपणे प्रथमे प्रेत्यभावपादे पञ्च विमर्शा भवन्ति—

१—पृथ्वीलोकाद्देवलोकपितृलोकादूर्ध्वलोकयात्राक्रमोपपादनरूपा आरोहणविद्या ।

२—ऊर्ध्वलोकगतानां जीवानां पुनः पृथ्वीलोके अवतरणक्रमरूपा अवरोहणविद्या ।

३—ऊर्ध्वलोकान् गन्तुमशक्नुवानानां क्षुद्रनारकिजीवानां नरकारोहावरोहौ ।

४—कर्म्मविशेषवशादगतिकानां जीवानामारोहावरोहाभावस्थानम् ।

५—ऊर्ध्वलोकात् पृथ्वीलोकं प्रत्यागच्छतां जीवानामवरोहक्रमः—इति ॥

अथेश्वरालम्बितजीवनिरूपणलक्षणे द्वितीये वैधर्म्यपादे सप्त विमर्शाः । तथा हि—

१—स्वप्नसुषुप्तिमोहावस्थानिरुक्तिः ।

२—ईश्वरे स्वप्नाद्यवस्थानामभावः ।

३—ईश्वरात्मनो धर्म्मिधर्म्मद्वैविध्यम् ।

४—ईश्वरात्मनो निरुक्तानिरुक्तद्वैविध्यम् ।

५—ईश्वरात्मनो भेदाभेदद्वैविध्यम् ।

१—शङ्करमते ईश्वरात्मनो निर्विशेषत्वम् । निर्विशेषैकानन्ते च तस्मिन् भेदवासनामिथ्यात्वम् ।

२—रामानुजमते ईश्वरात्मनः सर्वदोषास्पृष्टानन्तकल्याणगुणकत्वम् ।

३—शङ्करमते निर्विशेषाभेदे भेदव्यवहारोपपादनम् ।

४—रामानुजमते विशिष्टाभेदे विशेषणभेदाद् भेदव्यवहारोपपादनम् ।

५—शङ्करमते ईश्वरात्मनः सर्वप्रभवत्वे आत्मातिरिक्ततत्त्वाभावः ।

६—रामानुजमते ईश्वरातिरिक्तपरतत्त्वाभावः ।

७—ईश्वरस्य फलप्रयोजकत्वम् । इति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४० विद्यानिरुक्तिः

तृतीयाध्यायस्य तृतीये पादे उपासना निरूप्यते । सगुणब्रह्मविद्या हीयमुपासना नाम । द्विविधं च तत्सगुणब्रह्मोपपद्यते । सर्वगुणमेकमङ्गि किञ्चित् । तदीश्वरो नामाख्यायते । तस्य च भिन्ना भिन्ना एकैके गुणा अङ्गानि । तत्राङ्गनिरूपणादङ्गी स ईश्वरो निरूपितो भविष्यतीत्येकैके गुणाः पृथगिव निरूप्यन्ते । ता एता एकस्या एव सगुणब्रह्मविद्याया नानाविधा अङ्गविद्या भवन्ति—

१	शाण्डिल्यविद्या	२१	आत्मविद्या
२	प्रतर्दनविद्या	२२	आत्मगतिविद्या
३	बालाकिविद्या	२३	प्राणविद्या
४	जाबालविद्या	२४	प्राणनग्नताविद्या
५	उपकोशलविद्या	२५	प्राणसंवादविद्या
६	मधुविद्या	२६	मनोविद्या
७	परिसरविद्या	२७	ब्रह्मविद्या
८	संवर्गविद्या	२८	उक्थविद्या
९	दैवस्मरविद्या	२९	सद्विद्या
१०	सामविद्या	३०	प्राजापत्यविद्या
११	सामगतिविद्या	३१	ओंकारविद्या
१२	पञ्चाग्निविद्या	३२	उद्गीथविद्या
१३	षोडशकलविद्या	३३	ब्रह्मसत्यविद्या
१४	भूमविद्या	३४	देवसत्यविद्या
१५	वसुधानीकोशविद्या	३५	वैश्वानरविद्या
१६	पञ्चकोशविद्या	३६	दहरविद्या
१७	आनन्दमयविद्या	३७	गायत्रीविद्या
१८	अक्षरविद्या	३८	पुरुषविद्या
१९	सप्तविद्या	३९	उत्क्रान्तिविद्या
२०	यज्ञविद्या	४०*	... ...

इत्यादयः । ता एता विद्या वैदिकानां कर्म्मणामुपनिषदीभवन्ति । एतयैवोपनिषदा यज्ञतपोदानानां कर्म्मणामितिकर्त्तव्यताप्रकारविशेषा अवतिष्ठन्ते । कर्म्मणामितिकर्तव्यतोपपादिका विद्या उपनिषत् ॥

ताश्चैता विद्या भिन्नभिन्नासूपनिषत्सु क्वचित्काश्चित्प्रदर्शिता अपि समाननामरूपाश्च विभिन्ननामरूपाश्च । तासां समाननामरूपाणामपि शाखभेदाद्

* अत्र त्रुटिरादर्शपुस्तके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भेदः प्राप्नोति । एकैकस्या अपि विद्याया नानानामरूपप्रकल्पनाभेदाद् भेदः संभाव्यते। तथा चैतासामेकत्वं वा भिन्नत्वं वेति संशयः प्राप्नोति । अन्येऽपि संशयाः सम्भवन्ति ततस्तन्निर्णयार्थमस्मिन्नुपासनापादे विद्यासंबन्धिनः कतिपये विमर्शाः प्रवर्तन्ते—

भेदाभेदसामञ्जस्यविमर्शः । गुणोपसंहारविमर्शः । कर्म्मानङ्गत्वविमर्शः । कर्म्मणां विद्याङ्गत्वाभावविमर्शः । फलोपधायकत्वविमर्श इत्यादयः । तत्र तावत्—

(१) विद्यानां भेदाभेदसामञ्जस्यविमर्शो यथा—

१—नामरूपफलोपदेशादीनां विज्ञानगुणानामविशेषविद्यैकत्वं भवति न तु शास्त्रभेदादुपदेष्टृभेदाद् गुणभेदात्स्वाध्यायधर्म्मभेदाद्वा विद्याभेदो भाव्यः।

२—रूपभेदान्नामभेदादेकार्षेयप्रवचनभेदात् फलसंयोगभेदात् प्रक्रमभेदात् प्रकरणभेदाद् आवापोद्वापभेदाद् भेद्यभेदाच्च विद्याभेदोऽवकल्पते ।

३—अन्तर्गतविद्यायां रूपाद्यैक्येऽपि विद्याभेदोऽवकल्पते ।

(२) विद्यानां परस्परभेदापादकगुणोपसंहारविमर्शोऽन्यः ।

१—विद्योपदेशयोरेकत्र गुणाधिक्ये तस्यान्यत्राप्यन्तर्भाव उपसंहारः ॥

२—समानेऽपि तन्त्रे गुणोपसंहाराद्विद्यैकत्वम् ।

३—विद्यैकत्वेऽपि प्रतिज्ञानादांशिकभेदानुप्रवेशः ।

४—विरुद्धधर्म्मोपदेशोऽनुपसंहारः ।

५—नामैकत्वेऽपि रूपादिभेदेऽनुपसंहारः ।

६—असंबद्धार्थाऽनुपसंहारः ।

७—शाखान्तरप्रामाण्याद्वाक्यशेषोपसंहारः ।

८—वाक्यशेषादर्शनिर्णयः ।

(३) विद्यानां कर्म्मानङ्गत्वविमर्शोऽन्यः ।

१—कर्म्मप्रकरणपठितानामपि विद्यानां विद्यालिङ्गसत्वे विद्यात्वम् ।

२—विद्याविशेषस्य कर्म्माङ्गत्वाभावः ।

३—विद्याप्रकरणोक्तानां कर्म्माङ्गस्तुतीनां कर्म्माङ्गत्वाभावः ।

४—उपनिषत्सु आख्यातानां कर्म्माङ्गत्वभावः ।

(४) कर्म्मणां विद्याङ्गत्वाभावविमर्शोऽन्यः ।

१—ऊर्ध्वरेतसां कृतविद्यानां यज्ञादिकर्मानपेक्षा ।

२—विद्योत्पत्तौ यज्ञादिकर्म्मानपेक्षा ।

३—कर्म्मविशेषाणां विद्याङ्गत्वम् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—सर्वान्नादनस्य आपद्धर्म्मस्य विद्याङ्गत्वभावः ।

५—अकामकृतानां नित्यानां यज्ञादिकर्म्मणां विद्याङ्गत्वम् ।

६—अनाश्रमिणां यज्ञादिकर्म्मविधुराणामपि विद्यायामधिकारः ।

७—आश्रमच्युतानां विद्यायामनधिकारः ।

८—कर्म्माङ्गकर्म्मवत् कर्म्माङ्गविज्ञानानामपि ऋत्विक्कर्तृकत्वम् ।

९—चतुर्थाश्रमधर्म्माणां मौनबाल्यादीनां विद्यासहकारित्वम् ।

१०—कर्म्मसाध्यविद्यायाः विद्यासाध्यमुक्तेश्च सम्पत्तौ कालनियमः ।

(५) विद्यानां फलाधायकत्वविमर्शोऽन्यः ।

१—सगुणब्रह्मविद्याया मुक्तिफलत्वम् ।

२—समफलविद्याविकल्पः ।

३—ईश्वरकर्म्मफलभोक्तृत्वम् ।

१—एकप्रधानसंबद्धा धर्म्मा एकत्रैवोच्यमाना सर्वत्राप्युपनेयाः इति न्यायात् प्राणसंवादविद्यायाः छान्दोग्यश्रुतौ वाजिश्रुतौ कौषीतकश्रुतौ च गुणतारतम्येनोपदेशाद् रूपभेदेऽपि गुणोपसंहाराद् रूपैकत्वमुपपद्यते तेन विद्यैकत्वमिष्यते ।

२—समाने नामरूपफलोपदेशे विद्यैकत्वप्रतिपत्तेरेकत्रोपदिष्टानामन्यत्रोपसंहारः कार्य्य इति सर्वत्र प्रतिपत्तिः ॥

३—प्रकरणरूपाद्यपेक्षया संज्ञाया दौर्बल्यमिति कृत्वा वाजिश्रुतिसंमताया उद्गीथविद्याया अथ छन्दोगसंमताया उद्गीथविद्यायाश्च नामसाम्येऽपि विद्यारूपभेदात्प्रकरणभेदाच्च विद्याभेदः ॥ ५ ॥ संवर्गविद्यापरिमरविद्ययोः संज्ञाभेदेऽपि रूपैकत्वाद् विद्यैकत्वमित्येवमन्यत्रान्यत्राप्यूह्यम् ॥ ६ ॥

४—स्वरूपेतरधर्म्माणां परब्रह्मवृत्तित्वं नास्ति इति न्यायात् पञ्चकोशविद्यायां प्रियशिरस्त्वादीनां सगुणधर्म्मत्वं द्रष्टव्यं न ब्रह्मधर्म्मत्वम् । सत्यकामत्वसंपद्धामत्वादीनां सगुणधर्म्मत्वं नेयं न ब्रह्मधर्म्मत्वम् । निर्गुणब्रह्मणो निर्धर्म्मकत्वम् । इति विद्यासामान्यपरिभाषा व्याख्याता ॥ अत ऊर्ध्वं विद्याविशेषा विविच्यन्ते ॥

५—उपक्रमोपसंहारयोरेकत्राप्यात्मशब्दोपादाने सत्यात्मविद्यात्वं भवति यथा सद्विद्याया आत्मविद्यात्वम् । एवमन्यत्रापि नेयम् ॥ १ ॥ विनिगमकप्रतिज्ञाविशेषाद्वा अज्ञानेन तदर्थोपादानाद्वा अत एव च ईश्वरात्मजीवात्मभेदेनात्मद्वैविध्येऽप्यात्मविद्यायां विश्वसृष्टिकर्तृत्वोपदेशे ईश्वरात्मनो ग्रहणं कार्य्यम् । जीवात्मन्यसंभवात् ॥२॥ आत्मनो निर्धर्म्मकत्वमुच्यमानमाश्रितधर्म्मं प्रतिषेधयति न स्वरूपधर्मम् । तस्यानिवार्य्यत्वादनाधेयत्वात् ॥ ३ ॥ आधेयस्यैव च धर्मस्य परिहार्य्यत्वसंभवात् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—जीवयात्राभेदनिरुक्तिः

अथ चतुर्थाध्याये औपचारिको जीवविशुद्धिक्रमो निरूप्यते । तत्र प्रथमपादे त्रयो विमर्शाः ।

(१) निर्गुणोपासनारूपायाः विद्यायाः स्वरूपम्—

१—आत्मभावनापौनःपुन्यम् ।

२—ईश्वरानतिरिक्तजीवभावना ।

३—ईश्वरप्रत्यगात्मत्वेन जीवभावना ।

४—प्रतीकप्रत्यगात्मैक्यभावनाप्रतिषेधः ।

५—प्रतीकेष्वहंत्वभावनाप्रतिषेधः ।

६—प्रतीकप्रत्यगात्मैक्यभावनाप्रतिषेधः ।

७—प्रतीकोपासना (उद्गीथादिष्वादित्यादिप्रतीकदृष्ट्योपासना)

(२) उपासनोपचारः (भक्तियोगप्रकारः)

आसनं ध्यानं निश्चलैकाग्रत्वम् (यावज्जीवनमेषां कर्तव्यता)

(३) निर्गुणोपासनाफलम्=विद्यानाश्याः कर्मभेदाः ॥

अथ द्वितीये पादे उत्क्रान्तिक्रमः ।

१—इन्द्रियमनःप्राणभूतमात्रासहकृतविज्ञानस्योत्क्रान्तिक्रमः ।

२—विद्वदविद्वत्साधारण उत्क्रमः ।

३—आमुक्ति सूक्ष्मशरीरानुपक्षयः ।

४—शंकरमते विद्यानिर्दग्धकर्म्मणां देहपातकालाऽनुत्क्रान्तिमुक्तिः ।

रामानुजमते सूर्य्यमण्डलभेदितालक्षणमुक्तिः ।

५—विदुषां सूक्ष्मशरीरविलयनात् परेण सर्वात्मनैक्यलक्षणा क्रममुक्तिः ।

रामानुजमते [illegible] परेणाविभक्तसहावस्थानलक्षणा क्रममुक्तिः । इति विदुषामुत्क्रान्तिक्रमविवेकः ।

६—मृत्युपक्रमः शंकरमतेन रामानुजमतेन च ।

अथ तृतीये पादे आत्मगतिः ।

१—देवयानगतिक्रमे आरोहणमार्गपर्वाणि ।

२—अर्चिरादिनामातिवाहिकत्वे कार्य्यब्रह्मावसाना गतिर्बादरिमते । कार्य्यब्रह्मोपासनायामेव तथेति रामानुजः ।

३—परब्रह्मावसाना गतिः जैमिनिमते । परब्रह्मोपासनायामेव तथेति रामानुजः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—प्रतीकोपासकानां विदुषामपि मुक्त्यभावो बादरिमते। उभयविधब्रह्मोपासनायामेव तथेति रामानुजः ।

अथ चतुर्थे पादे मुक्तिनानात्वविमर्शः ।

१—ज्योतिरावरककषायात्यन्तविनिवृत्त्या ज्योतिराविर्भावस्य कैवल्यमुक्तित्वम् ।

२—कैवल्यमुक्तौ जीवात्मनः परमात्मना सर्वथैकीभावः शंकरमते ।

कैवल्यमुक्तौ जीवात्मनः परमात्मना सात्मकत्वानुभावो रामानुजमते ।

३—कैवल्यमुक्तौ विशुद्धज्ञानमात्रस्यापि सत्यकामत्वादिब्राह्मरूपवैशिष्ट्यम् । कैवल्यमुक्तौ निर्दोषगुणवच्चेतनात्मरूपाभिसंपत्तिः रामानुजमते । इति कैवल्यमुक्तिः परा ।

४—मुक्तात्मनः स्वातन्त्र्येण संकल्पोपनतसर्वकामत्वम् ।

५—मुक्तात्मनः सशरीरत्वाशरीरत्वव्यवस्था । इति निःश्रेयसमुक्तिरपरा ॥ ३ ॥

६—मुक्तात्मनां जगद्व्यापारातिरिक्तसर्वैश्वर्य्यसंपत्तिः ।

इति शारीरकमीमांसाविमर्शे जीवयात्राभेदनिरुक्तिः ।

शारीरकजीवयात्रालोकनिरुक्तिः

अथ चन्द्रज्योतिःसंस्थानं पितृलोकः । स यद्यप्येष चन्द्रः पृथिवीं परिक्रममाणो गतिवैशेष्यात् कदाचित् सूर्य्यपृथ्वीमध्यवर्ती संभवति तथाप्येष सृष्टिक्रमे ब्रह्माश्वत्थवल्शायाः स्वयंभूपरमेष्ठिसूर्यपृथ्वीचन्द्रैः पञ्चपर्वकतया चन्द्रः पृथिव्याः पश्चाद्गतिरेवास्तीति स्थितिः । अत एवैतस्मात् पृथ्वीपृष्ठात् सूर्य्यविपर्य्ययदिशि चन्द्रसंस्थानमनु लोकालोकं यावत् पितृयाणः पन्था व्यवतिष्ठते । तत्रापि चन्द्रमसमारभ्य शनैश्चरादर्वाक् त्रिविधः पितृलोक आख्यायते । त्रिवृत्स्तोमान्ता ज्योतिर्मयी द्यौः प्रद्यौर्नाम । तदूर्ध्वं षट्सु स्तोमेषु पञ्चदशस्तोमान्ता द्यौः पीलुमती । तदूर्ध्वं षट्सु स्तोमेष्वेकविंशस्तोमान्ता द्यौरुदन्वती । तेऽमी त्रयः प्रदेशाः सोमप्राणाक्रान्ताः सन्तीति सौम्याः पितृलोका भवन्ति । ते चापेक्षिकसुखावहत्वात् पितृस्वर्गा उच्यन्ते । तेषु चोर्ध्वाधरलोकाः सुखातिशयतारतम्यात् कल्प्यन्ते ।

अथातः पश्चात् त्रयः स्तोमाः । तत्र शनैश्चरादारभ्य सूर्य्यप्रकाशसीमानं यावत्सप्त वा एकविंशतिर्वा अष्टाविंशतिर्वा चतुरशीतिर्वा लोकाः नारकाः । ते पुनरसूर्य्या अल्पसूर्य्यप्रकाशा वा नारकिनः शनैश्चराख्ययमवायुपर्य्याक्रान्ताः प्रदेशाः सूर्य्यविरोधिनः पर्य्यावर्तन्ते इति सूर्य्यज्योतिर्मयस्यैतस्य जीवात्मनो व्याघाताय प्रभवन्ति ।

"असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्याम्नायते। नरकशब्दे नरशब्दो मरुद्गणवचनः। सूर्य्येण दूरत्वादपरिष्कृता अनिष्टकारिणो नरा मरुतो नरकाः। कुत्सायां कः। त एतावन्तो द्वेधा विभक्ताः पितृयाणगन्तव्या लोका भवन्ति। इत्थं चामी अधोलोका व्याख्याताः।

त्रय ऊर्ध्वा देवलोकः। त्रयोधस्तात् पितृलोकः। एकश्चायं मध्यमो मनुष्यलोकः पृथ्वीलोक इति। सप्तैते जीवगन्तव्या लोकाः। य एवामी सप्तलोकास्त एवैते त्रयो लोकाः। अयमत्र निष्कर्षः। इयं पृथिवी तावन्मनुष्यलोको मर्त्याग्निलोकः। स मध्यमः। अथैतां पृथिवीं सूर्य्यं चान्तरा देवलोकोऽमृताग्निलोकः। सूर्य्यादूर्ध्वं तु ब्रह्मलोको देवलोकस्यैव स परमो भागः परमधाम। अथ पृथिव्या दक्षिणतः सोमं यमं चान्तरा पितृलोकः। सोमश्चन्द्रमाः। यमः शनैश्चरः। तथा च चन्द्रादारभ्य शनैश्चरं यावदयं सोममयः पितृलोको विज्ञायते। शनैश्चरादस्माद्दक्षिणतो लोकालोकपर्य्यन्तं यमप्राणमयो यमलोकः। यमश्चायं सोमप्राणप्रतिद्वन्द्वी सूर्य्यप्राणविरोधी प्राणः। तेनायं सूर्य्यप्राणमयो विज्ञानात्मा जीवप्राणः प्रत्याहतः पीडितो भवति। स एष यमलोकः पितृलोकस्यैवावमो भागस्तमोमयत्वाच्छीतवातावरणप्राचुर्य्याच्च निकृष्टतमः। अन्धकारे चास्मिन्नात्मविरुद्धवातावरणदुःखप्रचुरेऽयमात्मा गन्तुं नोत्सहते। स्वभावादेवायमात्मा ततो व्यपवर्गमिच्छति। श्रूयते च—"तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय" इति।

इदं पुनरत्रापरं बोध्यम्। एष खलु जीवात्मा जीवलोकादस्मात् पृथ्वीलोकादुत्क्रममाणोऽपि न त्वेवास्याः पृथिव्याः सीम्नो बहिर्धा गन्तुं क्षमते। तस्मादेतद्गतिविज्ञानायैतस्यां पृथिव्यां लोकक्कृप्तिः प्रदर्श्यते। श्रूयते च—त्रयो वाव लोकाः मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति। (श० १४। ३। ३।)

इयं पृथ्वी मनुष्यलोकः। पृथिव्या ऊर्ध्वा उत्तरा देवलोकः। पृथिव्या अधो दक्षिणा पितृलोकः। अयुक्स्तोमछन्दोमस्तोमाभ्यामष्टाचत्वारिंशस्तोमा हीयं पृथ्वी विज्ञायते। तत्रोपरितने देवलोके उत्तरोत्तरसुखवृद्धिहेतौ पंच विभागाः—

१—सप्तदशस्तोमान्तमग्निवायुप्राणमयकर्मलोकलक्षणं साधारणलोकयात्रास्थानम्।

२—तत उत्तरम्—अष्टादशस्तोमादारभ्य चतुर्विंशतिस्तोमान्तमग्नीन्द्रमयं देवलोकलक्षणं सप्तस्वर्गस्थानम्।

३—अथ कर्मविशेषप्रभावसाध्यं सप्तदशैकविंशपञ्चविंशात्मकत्रिस्वर्गलक्षणं नाकस्थानम्। तत्र सप्तदशस्तोमं ब्रह्मविष्टपम्। अथैकविंशस्तोमं ब्रध्नस्य विष्टपं नाम विष्णुविष्टपम्। अथ पंचविंशस्तोमं पुनरिन्द्रविष्टपम्। तेष्वपि तारतम्यादुत्तरोत्तरं सुखाधिक्यं तेऽमी कर्मसाध्यलोका उक्ताः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्ममीमांसापरिष्कारे—षोडशपदीपदार्थनिरुक्तिः
शारीरकजीवयात्रायां लोकनिरुक्तिः

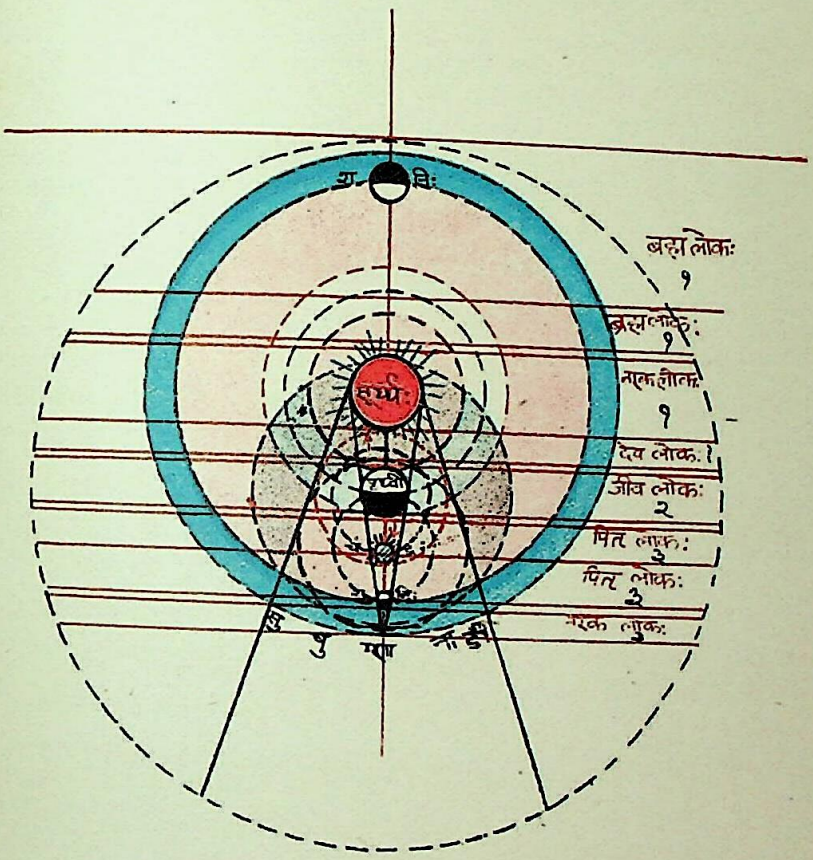

१—सूर्य्यादूर्ध्वं ब्रह्मलोकः परमो देवलोकस्योत्तमो भागः।
२—सूर्य्यपृथिव्योरन्तरं देवलोकः।
३—पृथ्वीचन्द्रयोरन्तरं जीवलोकः।
४—चन्द्रयमयोरन्तरं पितृलोकः।
५—यमादधो नरकलोको निकृष्टः पितृलोकस्यावमो भागः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्ममीमांसापरिष्कारे षोडशपदीपदार्थनिरुक्तिः
शारीरकजीवयात्रायां लोकनिरुक्तिः

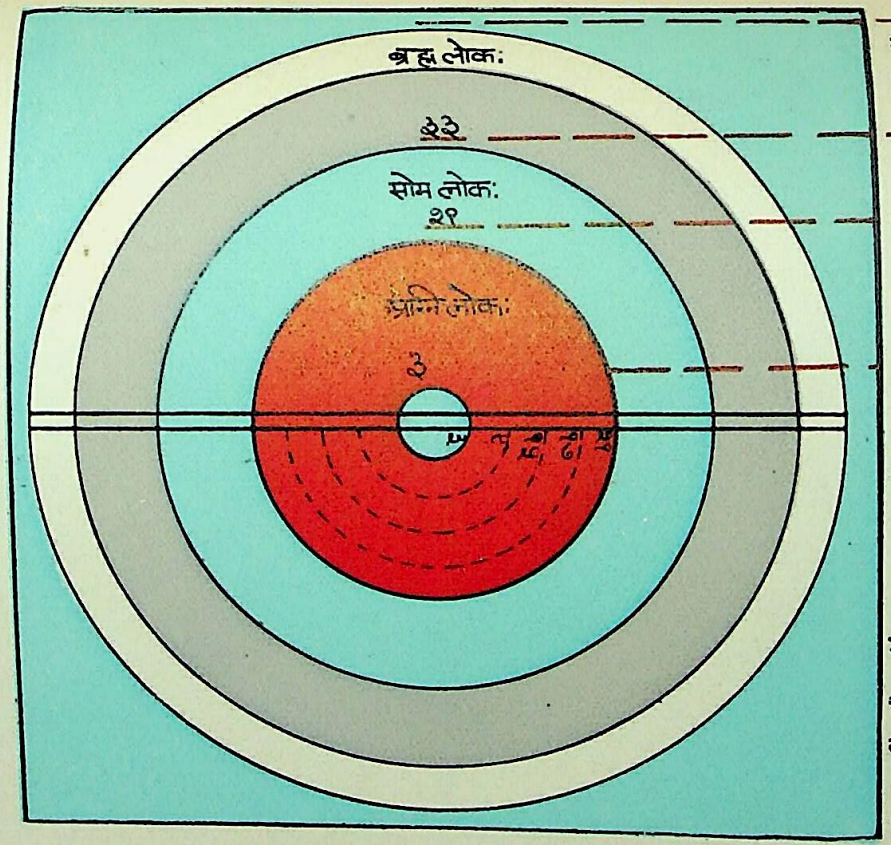

जगती पृथ्वी अष्टाचत्वारिंशस्तोमा ४८
ब्रह्ममयी-परमोक्षस्थानम्

सागराम्बरा त्रयस्त्रिंशस्तोमा ३३
सोममयी–अपरमोक्षस्थानम्

उखा पृथ्वी एकविंशस्तोमा २१
प्राणाग्निमयी-स्वर्गस्थानम्

मेदिनी पिण्डपृथ्वी त्रिस्तोमा ३
मर्त्याग्निमयी-कर्मस्थानम्

चित्या भूर्मेदिनी स्पृश्या वेदिस्तूखा च यज्ञिया ॥
समुद्रिया तु सामुद्री सान्ततो जगती मही ॥१॥
चित्याऽऽग्नेयी च सौम्या च ब्राह्मी चेति चतुष्टयी ।
भूतमग्निस्तथाऽऽपो वाक् सेत्थं पृष्ठ्या चतुष्टयी ॥२॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्॥
वर्द्धमानो महां आ च पुष्करे दिवोमात्रया
वरिम्ण प्रथस्व ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—अथ द्वाविंशस्तोमादारभ्य षट्त्रिंशस्तोमान्तमिन्द्राविष्णुमयं स्वाराज्यलक्षणमुपासकारोहणीयमपरमुक्तिस्थानम्। तेषु प्रतिस्तोमं चत्वारि पर्वाण्युत्तरोत्तरसुखाधिकानि—सालोकं सामीप्यं सारूप्यं सायुज्यमिति।

५—अथात उत्तरम्—अष्टाचत्वारिंशस्तोमानां ब्रह्ममयं क्षीणोदर्कात्मकनिर्वाणमुक्तिलक्षणं वा भूमोदर्कात्मककैवल्यमुक्तिलक्षणम् वा ज्ञानिनां परममुक्तिस्थानम्।

अथाधस्तने चन्द्ररश्मिस्थाने—पितृलोके उत्तरोत्तरसुखह्रासहेतौ चत्वारो विभागाः—

१—त्रिवृत्स्तोमान्ताऽङ्गिरसां प्राचुर्य्यात् ज्योतिष्मती प्रद्यौर्नाम सुखमयी भूमिः प्रथमं स्थानम्।

२—ततो दक्षिणे पञ्चविंशस्तोमान्ता भृग्वङ्गिरसां तापवती पीलुमती नाम साधारणभूमिर्द्वितीयं स्थानम्।

३—ततो दक्षिणे त्रयस्त्रिंशस्तोमान्ता भृगूणां प्राचुर्य्यादापोमयत्वादुदन्वती नाम दुःखसाधारणभूमिस्तृतीयं स्थानम्।

४—ततो दक्षिणे सूर्य्यज्योतिषो वैकल्यात्तमोमयं दुःखप्रचुरमसूर्यसंज्ञमसूर्यं चतुर्थस्थानम्।

तेऽमी इष्टापूर्तदानात्मकैर्विद्यानिरपेक्षकर्मभिः साध्याः। पितृपथयमपथाभ्यां शाखाद्वयविभक्तेन पितृयाणसंज्ञकेन धूमवता कृष्णेन विषुवन्मण्डलाद्दक्षिणतश्चतुर्विंशत्यंशस्थगायत्रीमण्डलादवरेषु द्वाचत्वारिंशदंशेषु संनिविष्टत्वाद् दक्षिणमार्गेण गन्तव्याश्चन्द्ररश्मिस्थानम्।

तान्येतान्यष्टौ यातायातं कुर्वतां भूतात्मजीवानां यात्रास्थानानि। अगतिमतान्तु जीवानां हंसात्मनां चानस्थिकानां चेयं पृथिव्येव लोक इति सिद्धान्तः॥

इति यज्ञतपोदानात्मकैर्विद्यासमुच्चितकर्म्मभिः साध्याः देवपथब्रह्मपथाभ्यां शाखाद्वयविभक्तेन देवयानसंज्ञकेनार्चिष्मता शुक्लेन विषुवन्मण्डलादुत्तरतश्चतुर्विंशत्यंशस्थजगतीरूपवृत्तादूर्ध्वेषु द्वाचत्वारिंशदंशेषु संनिविष्टा उत्तरामार्गेण गन्तव्याः सूर्य्यरश्मिस्थाना देवलोकविभागा आख्याताः॥

तेऽमी त्रयो लोकाः संसरणधर्म्मिणां जीवानां प्रकृतिसिद्धानि संसरणस्थानानीति सिद्धान्तः। तेषु संचाराय चत्वारः पन्थानो नियताः—ब्रह्मपथदेवपथौ द्वौ देवयानौ। पितृपथयमपथौ द्वौ पितृयाणौ चेति व्याख्यातम्। तत्र ब्रह्मपथातिरिक्तेषु त्रिषु मार्गेषु संचरतामवश्यं कर्म्मफलभोगान्ते पुनरावृत्तिर्भवतीति यातायातलक्षणः संसारो जीवानां नाप्राप्तो भवति। सोऽयमेषां जीवत्वोपाधिनिसर्गसिद्धो धर्म्म इष्यते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति क्षीणे पापे मर्त्यलोकं विशन्तीति निष्कर्षात् । तेनैष जीवानां लोकान्तरगमने यातायातप्रकारो जीवस्वरूपसिद्धधर्म्मत्वात् तृतीयेऽध्याये व्याख्यातः ॥

अथैतद्ब्रह्मपथेन यातानां जीवानामात्मस्वातन्त्र्यप्रतिबन्धका आगन्तुकाः समस्ता उपाधिभूताः पाप्मधर्म्मा निवर्तन्ते । नित्यानन्दविज्ञानसारस्त्वयमात्मा स्वरूप-कैवल्येन पर्य्यवशिष्यते । गतिहेतुभूतकर्म्मपाशनिवर्तनाच्चैषां जीवानामिह लोकत्रये पुनरावृत्तिर्नास्तीति कृत्वैते सर्वस्मात् संसारदुःखाच्चैकान्ततो विमुच्यन्ते । तथा चैतादृशं सर्वदुःखात्यन्तविमुक्तिलक्षणपूर्णस्वाच्छन्द्यमभिकामयमानानां जीवानामर्थे तदेतद्ब्रह्मपथगमनोपाया निर्वक्तव्या इत्यनुग्रहबुद्ध्या भगवानाचार्य्यश्चतुर्थमे-तमध्यायमुपदिदेश । तत्र—

विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः ।
न तत्र दक्षिणा यन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः ॥

इत्येवं विवक्षमाण आचार्यो विद्यालक्षणमेवैकमुपायं पश्यंस्तमिह विज्ञपयितुं ब्रह्मपथगतिसाधनभूतं विद्याभ्यासप्रकारविदुषामविदुषां चोत्क्रान्तिप्रकारभेदं कार्य्य-ब्रह्मावसानगतिं चेति क्रमेण चतुर्भिः पादैर्विशदीकृत्य व्याचष्टे । सगुणनिर्गुण-भेदादियं विद्या द्विविधा । विद्यावैशेष्याच्चेयं गतिरपि द्विविधा निष्पद्यते । तत्र सगुणविद्याभ्यासवशादविद्वत्साधारणोत्क्रान्तिवैलक्षण्येनोत्क्रान्तिमतां विदुषामीश्वर-सायुज्यलक्षणेयमीश्वरपर्य्यवसाना गतिर्भवति । स ईश्वरः कार्य्यब्रह्म स ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवतीति संसारयात्रा निवर्तते । परमानन्दघनात्मकनिःश्रेयसलक्षणमीश्वर-कैवल्यमाप्नोति सच्चिदानन्दो भवति ।

अथैवमेव च निर्गुणविद्याभ्यासवशादविद्वत्साधारणोत्क्रान्तिवैलक्षण्येनोत्क्रान्ति-मतां विदुषामव्ययपुरुषापीतिलक्षणाऽव्ययपर्य्यवसाना गतिर्भवति । सोऽव्ययपुरुषः परं ब्रह्म । स ब्रह्मैव भवतीति संसारयात्रा निवर्तते । आनंदविज्ञानघनं सर्वदुःखनिर्वाण-लक्षणमात्मकैवल्यमाप्नोति । सच्चिदानन्दो भवति । उभयथाप्येष शारीरकः पुरुषः शारीरकत्वाभिमानान्निवर्तते । विश्वव्यापी स ईश्वरपुरुषो वाऽव्ययपुरुषो वाभिसंपद्यते इति परमः पुरुषार्थः । इत्ययं कृत्स्नः शारीरकविज्ञानशास्त्रार्थः संक्षेपेण निरूपितः ॥

॥ इति शारीरकशास्त्रार्थनिरुक्तिः ॥ ४ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६—गीताशास्त्रनिरुक्तिः

अथ वेदवेदान्तदर्शनशास्त्रेभ्यो मीमांसाशास्त्राच्चोर्ध्वमुपदिश्यमानमिदं गीताशास्त्रं दर्शनानां मूर्द्धन्यमध्यवसेयम् । अक्षरपर्य्यन्तदर्शिदर्शनशास्त्रावशिष्टस्य पुरुषोत्तमाव्ययविज्ञानजनकस्य गीताशास्त्रस्य सर्वदर्शनन्यूनतापूरणार्थमेव प्रादुर्भूतत्वात् ॥

तथा हि—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

स एव त्रिपुरुषः पुरुषः आत्मा । तत्र पुरुषेषु चाव्ययस्तावदालम्बनमकर्ता परब्रह्म । अक्षरः कर्ता निमित्तकारणं परमं ब्रह्म । क्षरस्तूपादानकारणं महद्ब्रह्म । महत एवैतस्माद् ब्रह्मणो विश्वजन्मस्थितिभङ्गं भवति ।

"भूतं भविष्यत् प्रस्तौमि महद्ब्रह्मैकमक्षरम् । बहुब्रह्मैकमक्षरम् ।" इति सिद्धान्तात्त्रयोऽप्येते पुरुषा अविनाभावादेक आत्मा ॥

आतश्चैकस्मिन्नेवास्मिन्—अवस्थाभेदात् सर्वे धर्म्मा उपपद्यन्ते—

यथैकविधमेव वृक्षबीजं स्कन्धशाखात्वग्दारुपत्रपुष्पफलरसाद्यनेकभेदभिन्नमेकं विटपं जनयते—एवमेवेदमेकं ब्रह्म नानाविधप्राणदेवताभूतरूपैः परिणतमिदमेकं विश्वं जनयते । तत्रैते विरोधाभासमूलका आक्षेपा अज्ञाननिबन्धना उत्तिष्ठन्ते—इति सुनिभृतं प्रत्येतव्यम् ॥

॥ इति गीताशास्त्रार्थसंक्षेपः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—अथ आत्मब्रह्ममीमांसा प्रारभ्यते

अथ केवलात्मनिरुक्तिः

१—केवलात्मा	निर्विशेषः परात्परः	(विशुद्धाव्ययः)
२—ईश्वरात्मा	विश्वशरीरः पुरुष ईश्वरः	(ईश्वराव्ययः)
३—जीवात्मा	प्रच्युतैश्वर्यशरीरलक्षणविश्वेश्वरपुरुषः	(जीवाव्ययः)

इत्थं त्रिविधोऽयमात्मा ब्रह्मपदार्थः। तमेनं व्याख्यास्यामः

सर्वतः पूर्वं शास्त्रब्रह्मणि भासमानानां परस्परविरोधानां निराकरणार्थमनन्तानां विश्वसृष्टीनां मूलभूतस्य बृंहणधर्म्मिणोऽस्य विशुद्धस्याप्यात्मब्रह्मणस्तटस्थलक्षणविधया स्वरूपनिर्वचनपूर्वकं संस्थाभेदनिबन्धनं नानात्वं प्रदर्श्यते। तथा हि—

१—विशुद्धात्मनिरुक्तिः

यद् विश्वसृष्टीनामनन्तानामिदमेकं ब्रह्मैव क्षेत्रं तदिदमेकमेव कथं विश्वरूपो बभूव। किं तद् ब्रह्म च ? तत्रोच्यते—

एकं वा इदं विबभूव सर्वम्। इत्याह भगवान् महर्षिः॥ तच्च बृंहणस्वभावमस्तीति ब्रह्म संज्ञायते। विकृताद् वृक्षबीजादङ्कुरोत्पत्तिर्दृश्यते। यत्र त्वविकृतादेव बीजादुत्पत्तिर्बृंहणं नाम। तदिदं बृंहणं यत्रोपपद्यते तद् ब्रह्म। ब्रह्मणो हि विश्वोत्पत्तौ सत्यामपि नेदं ब्रह्म स्वरूपतो विक्रियते तस्मात् तस्यैतदपूर्वरूपप्रादुर्भावस्य बृंहणसंज्ञा क्रियते॥ १॥

नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यदसीमलक्षणमनन्तैकसत्तारूपं ज्ञानं तद् ब्रह्म। तद् द्वेधाऽऽख्यायते—अचिन्त्यं च प्रमेयं चेति। तटस्थलक्षणतो विज्ञातमपि स्वरूपलक्षणतो यन्न विज्ञायते तदचिन्त्यम्। अथ यावच्छक्यते विज्ञातुं तत् प्रमेयम्। अत एव—नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। प्रमेय याथातथ्यविज्ञानायैव च सर्वाणि शास्त्राणि प्रवर्तन्ते। तत्र कोऽचिन्त्यः कः प्रमेय इति चिन्त्यते॥ २॥

बृंहणस्वभावस्यैतस्य ब्रह्मणोऽस्मिन् विज्ञानशास्त्रे त्रेधा विविक्तं रूपं बृंहणकर्म्मणोपकल्पते विश्वं विश्वचरं विश्वातीतं चेति। यावत् सृष्टं तद् विश्वम्। अथ यावदस्मिन् सृष्टे प्रविष्टं तद् विश्वचरम्। अथैतस्माद् विश्वमण्डलतो यावत् प्रविविक्तं रूपं तद् विश्वातीतं भाव्यम्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—विश्वातीतम् (विश्वात्मा)

तत्रैतस्य विश्वातीतस्य नामरूपे न स्तः। कर्म्म च किमपि नास्ति। अवच्छिन्नस्य हीमानि नामरूपकर्म्माणि ध्रियन्ते। दिग्देशकालानवच्छिन्नं तु खल्विदं ब्रह्म। तेनैतानि नामरूपकर्म्माणि तस्य नोपपद्यन्ते। अथवा सर्वाण्येवैतानि नामानि सर्वाणि रूपाणि सर्वाणि च कर्म्माणि तस्यैकस्यैव सतः शक्यन्तेऽध्यवसातुम। अव्यावृतरूपत्वात्। व्यावर्त्तकानि तु लोके नामरूपकर्म्माणि भवन्ति। इह तु नैतानि कुतश्चिदेतद् व्यावर्त्तयन्ति। तस्माद् वाङ्मनसपथातीतमिदं ब्रह्मरूपं विश्वातीतं भाव्यम्॥ तन्न विज्ञातुं शक्यते। आह च महर्षिः—

"संविदन्ति न यं वेदा विष्णुर्वेद न वा विधिः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ १॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥ २॥
यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य च देवेषु अथानु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥ ३॥

तस्यैतस्य विश्वातीतस्य किमपि स्वरूपलक्षणं न विज्ञायते तस्मात् ततो विरम्यते। तथा चादिश्यते—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥

प्रकृतिभ्यः परत्वात् तदचिन्त्यमस्तीति तद्दुर्विज्ञेयमित्येवमस्य तटस्थलक्षणं तु सामान्यविधया सुनिश्चितं विज्ञायत एव। अत एवोक्तं पूर्वं—नो न वेदेति वेद च—इति।

अथ प्राणदपानत्स्वभावेन खण्डखण्डेन मायाबलेन योगादौपाधिके परिच्छिन्नप्रदेशे मायाबलयोगहेतुकं बृंहणं भवतीति कृत्वा यदेतदकार्त्स्न्येनाबृंहत् तदिदं विश्वमभवत्। नैतन्मायाबलमसीमेऽस्मिन् ब्रह्मणि कार्त्स्न्येन समसृज्यत। यावदेवेयं मायाबलसंसृष्टिस्तावती हीयं विश्वसृष्टिरुपपद्यते। मायासृष्टिर्विश्वसृष्टिरित्येकोऽर्थः। यावन्मायाबलमश्नुते तावदिदं विश्वं विजृम्भते। ब्रह्मणि संसृज्यमानं मायाबलमेवेदं विश्वमिति विजानीयात्। यावदस्मिन्नविचालि किञ्चिदाभाति ब्रह्मणस्तद्रूपम्। अथ यावदेवास्मिन् विकुर्वाणमन्यदन्यद् भवदाभाति मायाबलमेव तद्रूपमिति निष्कर्षः। शैशवबाल्यपौगण्डतारुण्यवार्द्धक्यस्थाविर्य्यादयोऽवस्थाभेदा मायारूपम्॥ अथ तत्र तत्रावस्थाविशेषेऽपि स एवायमित्यनुवर्तमाना प्रत्यभिज्ञा ब्रह्मरूपम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदित्थं विरुद्धभावद्वयसन्निवेशो विश्वरूपम्। ससीमस्यैतस्य विश्वस्य सीम्नो यावद् बहिर्धा भाव्यमानं किञ्चिदुपपद्यते सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं तु तद्रूपं विश्वातीतं भाव्यम्।

अथ विश्वातीतव्यतिरिक्तः कियाँश्चिद् भागः सृष्टं रूपमिदमभिव्याप्नोति सूर्य्यकिरणोत्पन्नप्रतिबिम्बोपरि सूर्य्यकिरणज्योतिःप्रसारवत्—आह च—

"तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"—इति तदिदं विश्वचरं रूपं विश्वस्यात्माऽभवत्। य एष विश्वव्यापी विश्वात्मा स प्रजापतिरिति विद्यात्। प्रजापतिर्द्वेधोपपद्यते। अनिरुक्तश्च सर्वश्चेति। अनिरुक्तः कारणं रूपम्। सर्वः कार्य्यं रूपम्। पूर्वावस्था कारणमव्यक्तमिति नेदंत्वेन विश्वभावेषु निरुच्यते तस्मादनिरुक्तम्। कार्य्यं तूत्तरावस्था व्यज्यते तस्मान्निरुच्यते। तथा हीदं व्यक्तं सर्वप्रजापतेरुत्तरं रूपम्। कारणं च कार्य्यं चेत्युभयं संहत्य—"चतुष्टयं वा इदं सर्वम्"—इत्याहुः। अमृतं सत्यं यज्ञो विराट् चेति। स एतावानात्मा॥

तत्रेदं कारणमपि द्वेधा विविच्यते—अचिन्त्यं च विज्ञेयं चेति। सर्वविधमृत्युपरिग्रहशून्यं यत् केवलं विशुद्धं रूपं तदचिन्त्यम्। अथ यत् परिग्रहविशिष्टं तद् विज्ञेयम्। परिग्रहः षोढा माया कला गुणः विकार आवरणम्, अञ्जनं चेति। तदिदमन्तर्निगूढेनात्मना संचालितं षड्विधमात्मन्विरूपसृष्टं रूपमिति विद्यात्।

अत्र प्रथमानि त्रीणि रूपाणि आत्मनः पोषाय कल्पन्ते तस्मान् महिमानो भवन्ति। आत्मनः स्वरूपधर्म्मणामतिरोभावः पोषः। तैरयमात्मोपरज्यते। उपरक्त आत्मा वैलक्षण्यं गतोऽपि न स्वरूपधर्म्माद् विहीयते। भूमा आनन्दश्चैतन्ये सत्तेत्यात्मनश्चत्वारः स्वरूपधर्म्माः। अन्त्यानि तु त्रीण्यात्मनो दोषायोपपद्यन्ते। तस्मात्ते पाप्मानः। आत्मशक्तिप्रतिकूलस्तदावरकः पशुः पाप्मा। स हि अष्टविधः। पर्य्यायोर्म्याशयावस्थाक्लेशकर्म्मविपक्तयः क्षेत्रं चेति। द्विषड्द्विषट्पञ्चषट्त्रित्रिभेदात् त्रयस्त्रिंशत् पाप्मानः। उपसृष्ट आत्मा स्वरूपधर्म्मापचयात् कथंचिदन्यथात्वमायाति। महत्त्वं चास्य हीयते। अर्थाद्विद्यमाना एवात्मनः स्वरूपधर्म्मा दोषयोगात् तिरोभवन्ति। अणिमा आर्तिः जाड्यं शून्यमिति विश्वभावाः प्रवर्तन्ते। तत्रेदमावरणं काचवन्नात्यन्तं ज्योतिरात्मनो रूपं निह्नुते। अञ्जनं तु घटवज्ज्योतिरत्यन्तं पिधाय जाड्यं कल्पयति ततोऽयमात्मा सर्वधर्मोपपन्नः सन् विश्वमिति रूपं जायते॥

अत्रेदं बोध्यम्—

अविनाशी वा अयमात्मा अनुच्छित्तिधर्म्मा—असङ्गोऽह्येष न सज्जते न व्ययते न रिष्यति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मैवाधस्ताद्, आत्मा उपरिष्टात्, आत्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति ॥

स एष निर्धर्म्मक आत्मा विशुद्धः। स हि स्वरूपधर्म्माश्रितधर्म्मानुषङ्गिकौपचारिकादिसर्वधर्म्मातीतः निरञ्जनो निरावरणो निर्विकारो निर्गुणो निष्कलो निर्म्माय इति षड्भिर्मृत्युपरिग्रहैः शून्योऽस्तीति अमृतकेवलत्वात् विशुद्धरसरूपत्वाद्वा—विशुद्धात्मा केवलात्मा नाम असौ विशुद्धाव्ययः।

अथ मायासंवलितकलाभृद्गुणैरुपरक्तोऽयमात्मा ईश्वर उपासितो द्रष्टव्यः उपासितश्चैष कल्याणमातनुते। अयमीश्वरात्मा।

अथ च अविद्याबुद्धिरावरणम्। क्लेशोऽञ्जनम्। एतैर्विकारवानविद्यासमावृत उपसृष्टोऽयमात्मा जीवस्यात्मा भूत्वा परतन्त्रो भवति। जीवात्मा एषः।

षड्भिः परिग्रहैर्विशिष्ट आत्मा सर्वधर्म्मोपपन्नः सन् विश्वमिति रूपं जायते।

इत्थं प्रसुप्तानन्तबलघनाश्रयरसमयोऽयमेक एवात्मा प्रबुद्धकतिपयबलग्रामोपपन्नस्वरूपधर्म्माश्रितधर्म्मपरिग्रहवैशेष्यात् सप्तसंस्थो भूत्वा विभिन्नानेकरूप उपपद्यते।

सर्वतः पूर्वं शास्त्रब्रह्मणि भासमानानां परस्परविरोधानां निराकरणार्थमिहात्मप्रकरणे तावदात्मनः संस्थाभेदनिबन्धनं नानात्वं निरूप्यते। तथा हि—

३—एकस्यैवात्मनः सप्तसंस्थाप्रदर्शनम्।

१—	प्रसुप्तसर्वबलोपहितोऽखण्डानन्दरसमात्रो विशुद्धकैवल्यलक्षणो निर्विशेषः प्रथमा संस्था।
२—	उद्बुद्धसर्वबलः परात्परो निर्विशेषोऽनन्तबलमयो रसो द्वितीया संस्था।
३—	अथाऽव्ययोऽक्षरः क्षर इति त्रिधातुः षोडशी पुरुषस्तृतीया संस्था।

त्रिविधोऽप्येष गूढोत्मा निर्धर्म्मक एवेष्यते नित्यानां स्वरूपधर्म्माणां सत्वेप्याश्रितधर्म्मैरसंस्पृष्टत्वात्।

४—	आत्मा प्राणाः महिमानः—इति त्रिपर्वा सत्यः प्रजापतिश्चतुर्थी संस्था।
५—	अथावपनमन्नादोऽन्नमिति त्रिखण्डो यज्ञः प्रजापतिः पञ्चमी संस्था।
६—	अथ सर्वधर्म्मा प्रजालक्षणनानापरिग्रहधर्म्मग्रामवृतो विश्वरूपोऽप्युद्बुद्धसर्वशक्तिर्विराट् प्रजापतिः षष्ठी संस्था।
७—	अथान्यः सर्वधर्म्मा पाप्मभिरञ्जनधर्म्मैः प्रत्यावृतचैतन्यज्योतिरात्मधर्म्मो विश्वप्रजापतिः सप्तमी संस्था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—सप्तसंस्थास्वात्मनः संक्षिप्तस्वरूपसंज्ञा

१	निर्विशेषः	गूढोत्मा	कैवल्यम् आत्मा	औपनिषदानामभिमतः	निःसीमः
२	परात्परः	गूढोत्मा	सर्वाधारः आत्मा	औपनिषदानामभिमतः	निष्कलः
३	पुरुषः	गूढोत्मा	षोडशी आत्मा	वैज्ञानिकानामभिमतः	निर्गुणः
४	सत्यः	प्रजापतिः	सगुणः आत्मा	दार्शनिकानामभिमतः	निर्विकारः
५	यज्ञः	प्रजापतिः	सविकारः आत्मा	शैवभागवतादीनामभिमतः	निरावरणम्
६	विराट्	प्रजापतिः	सावरणः आत्मा	पौराणिकादीनामभिमतः	निरञ्जनः
७	विश्वम्	प्रजापतिः	साञ्जनः आत्मा	लौकायतिकादीनामभिमतः	साञ्जनः

अत्र प्रथमाद्वितीययोः षष्ठीसप्तम्योर्नात्यन्तभेदं पश्यन्तः केचिद् दार्शनिकाः पञ्चैवात्मसंस्था अभ्युपगच्छन्ति। प्रथमायामात्मनो निष्क्रियतया सप्तम्यां विश्वस्यात्मकार्य्यतया आत्मत्वाविवक्षणात्। तत्रायं दृष्टिभेदो न वस्तुभेद इति बोध्यम्।

५—दृष्टिभेदेनात्मनः पञ्चसंस्थोपपादनम्

प्राणाः, महिमानः, अन्नानि, परिग्रहाः, पाप्मान इत्येते प्रजापशवो हितोपहिता नित्यमात्मनि तिष्ठन्ति। आत्मनि प्राणा हिताः, तेष्वन्नादयः पुनरुपहिता आश्रितधर्म्मास्तिष्ठन्ति। परे पुनरात्मनः पञ्चैव संस्था इच्छन्ति—निर्विशेषपरात्परयोरभेदाध्यवसायात्, विश्वप्रजापतेरात्मत्वाविवक्षणाच्च। अथैतस्याप्यात्मत्वविवक्षायां तु—षट् संस्था अध्यवसीयन्ते। तास्वेष परात्परो निर्धर्म्मको निरस्तसमस्तोपाधिरखण्ड एकः। स गुणानामुत्तरेषामात्मनामप्यात्मा। तत्रैवोत्तरोत्तरानेकविवर्तपरिग्रहाधानादन्येषां सर्वेषां सगुणात्मनां तत्रैव सम्पद्यमानत्वात्। अथैषपञ्चमसंस्थो विराट् सावरणो विश्वमय आत्मा। साञ्जनस्तु स आत्मा विश्वमेवाख्यायते न त्वात्मा। आत्मस्वरूपधर्म्माणामञ्जनधर्म्मैस्तिरोहितत्वात्॥ तत्रायं दृष्टिभेदो न वस्तुभेद इति बोध्यम्॥

१— दिग्देशकालानवच्छेदादसीमोऽखण्डात्मा निर्विशेषः परात्परः।
२— स एषोऽसीमः परात्परो निर्विशेष एव मायाबलावच्छेदलक्षणपुरवासात् सीमितो भूत्वा पुरुषः।
३— स पुरुषः प्राणेन प्रकृत्या विशिष्टः सन् प्रजापतिः सत्यः।
४— प्राणप्रकृतिकैः सर्वविधविकारजातैः पशुभिर्विशिष्टः सन् प्रजापतिः सर्वहुद् यज्ञः।
५— स यज्ञ आत्मग्रामदैवतग्रामभूतग्रामैर्महिमग्रामपाप्मग्रामादिभिश्च परिकरैर्विशिष्टः सन् प्रजापतिर्विराट्। स एष विराट् प्रजापतिरेवेदं दृश्यमानं विश्वमिति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६—पञ्चानामात्मशास्त्राणां सप्तात्मसंस्थासंविभक्तविषयकत्वम् ।

आसां च पञ्चानामात्मशास्त्रविद्यानां वेदोपनिषद्दर्शनमीमांसागीतानां प्रकरणेषु निर्विशेषपरात्परपुरुषा अथ सत्ययज्ञविराड्विश्वानि चेति सप्तविधान्यात्मब्रह्माणि विप्रकीर्णतयौतप्रोतानि निरूप्यन्ते । तत्र तावदाद्यास्त्रयो गूढोत्मानः कैवल्यात्मानो निर्गुणा परमात्मान इष्यन्ते । स्वरूपधर्म्मशालित्वेपि तेषामाश्रितधर्म्मानाश्रयणात् । अथोत्तराश्चत्वारः प्रजापतयस्त्रिपर्वाणः । आश्रितधर्म्माणां प्राणपशूनां तत्र हितोपहितत्वात् ॥

१—तत्रापरविद्यालक्षणेऽस्मिन् वेदशास्त्रे विशिष्य प्रजापतयो निरूपिताः प्रसङ्गात्तु गूढोत्मानः ॥ १ ॥

२—अथ परमात्मविद्यात्वेन प्रसिद्धासूपनिषत्सु गूढोत्मानस्त्रयो विशिष्य निरूप्यन्ते प्रसङ्गात्तु प्रजापतयः ॥ २ ॥

३—अथैतेषां गूढोत्मनां प्रकृतयः प्रकृतिविकाराश्च यद्यथा सृष्ट्यै प्रवर्तन्ते तत्तथा प्रकृतिविकारप्रकरणविभागा एतेषु दर्शनशास्त्रेषु दर्श्यन्ते ॥ ३ ॥

४—अथैतस्यां ब्रह्ममीमांसायामात्मनां शास्त्राणां मीमांसाकरणात् तेषां परस्परविरोधाभासा निराक्रियन्ते ॥ ४ ॥

गीतायां तु वेदवेदान्तदर्शनशास्त्रनिरूपणावशिष्टं परब्रह्मणोऽव्ययस्य निरूपणं कृतमस्तीति विशेषः ॥ इत्थं च भिद्यन्ते तत्र तत्र तत्तच्छास्त्रलक्ष्यार्थाः ॥ एवमपि तेषु पञ्चस्वपि सप्तविधात्मनिरूपणं सामान्यमिति भाव्यम् ॥

७—संस्थाभेदात्मभेदोपपादनेऽप्यैकात्म्यसिद्धान्तः ।

अत्रेयं विचिकित्सा भवति । वेदान्तैरेवोपनिषद्भिर्निरूपितेषु सर्वविधेष्वात्मसु पुनः किमर्थमिमानि दर्शनशास्त्राणि मीमांसासूत्रं गीतोपनिषच्च प्रवर्त्तन्ते । किं तावदेतेषु निरूपणीयेष्वात्मविशेषेषु सन्ति केचिन्मतभेदाः अपि वा सर्वेषां निर्विशेषमात्मत्वं विवक्षितं दार्ढ्याय तत्र तत्रानूद्यते । अथवा कस्यचिदात्मत्वं मुख्यमन्यस्य गौणं विवक्षितमिति ।

अत्र ब्रूमः । सर्वेऽप्यमी आत्मनिबन्धा द्वेधा विभक्ता द्रष्टव्याः । वेदाश्च वेदान्ताश्चेत्युभये तावत् प्रत्यक्षार्थाः श्रुतिशब्दः । ते चैते पूर्वनेयाः । अथैतानि गीतासूत्रदर्शनानि स्मृतितन्त्राण्युत्तरनेयानि । तत्रोपनिषद्भिरेवात्मनिरूपणं पर्य्याप्तम् । किन्तु तासु निरूपितानामात्मनां नानाभेदभिन्नतया निष्कृष्यैकात्म्यविज्ञानयोगाद् विषयभेदेन पृथक् पृथक् विवक्षितमैकात्म्यं निर्धारयितुमिमान्युत्तरतन्त्राणि प्रवृत्तानि ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐकात्म्यसिद्धान्तेपि संस्थाभेदादात्मनानात्वदर्शने प्रक्रमभेदात् सामञ्जस्यम्

१—विराट् प्रजापतिरात्मा

१—तत्र तावत् सत्ययज्ञविराट्संज्ञेषु प्रजापतिषु त्रिषु विश्वमयस्य विराट्प्रजापतेरेवात्मत्वं पश्यन्तो लौकायतिकादयो लोकपरमा इमे प्रत्यक्षमात्रदर्शिनः सर्वधर्म्मोपपन्नेषु स्थूलेष्वेवात्मसु प्रवर्तन्ते। तेषामिदं स्वाभिमतात्मनिरूपणं स्थाने कृतं भवति। लोकव्यवहारेषु वैकारिकसर्वधर्म्मोपेतस्य स्थूलतमस्य विराट्प्रजापतेरेव समष्टिरूपेण व्यष्टिरूपेण वात्मत्वस्य याथार्थ्येनोपपन्नत्वात्। सोऽयमात्मदर्शने प्रथमः प्रक्रमः ॥ १ ॥

२—यज्ञप्रजापतिरात्मा

२—अथात्मनः संस्थायामेतस्य विराजः पञ्चमे स्थाने संनिविष्टत्वादयमात्मा सन्नात्मन्वी चेष्यते। यज्ञप्रजापतिश्चैतस्यात्मेत्यातिष्ठन्ते शैवभागवतादयो लोकाध्यक्षदर्शिनः सर्वहुद्यज्ञलक्षणेश्वरोपासकाः। तेषां चेदं यज्ञविषयकात्मत्वनिरूपणं स्थाने कृतं भवति॥ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे—इत्यादि श्रुत्या यज्ञप्रजापतेरात्मत्वसिद्धान्तात्। ब्रह्मविष्णुशिवादिसंज्ञके यज्ञप्रजापतौ तत्तदर्थनिरूपितात्मत्वस्य याथार्थ्येनोपपन्नत्वात्। सोऽयमात्मदर्शने द्वितीयः प्रक्रमः ॥ २ ॥

३—सत्यप्रजापतिरात्मा

३—अथैतस्य यज्ञप्रजापतेरात्मनोऽप्यात्मन्वितया तत्पूर्वसंस्थः सगुणः सत्यप्रजापतिरात्मेति वैशेषिकादयः पश्यन्ति। तेषां चेदं सगुणात्मनिरूपणं स्थाने कृतं भवति। यज्ञपुरुषनिरूपिताया आत्मतायाः सत्यपुरुषे याथार्थ्येनोपपन्नत्वात्। सोऽयमात्मसंस्थायामात्मदर्शने तृतीयः प्रक्रमः ॥ ३ ॥

४—चित्पुरुष आत्मा

४—अथ पुनरेतस्य सत्यप्रजापतेरप्यात्मन्वितया तस्य क आत्मेति जिज्ञासायामर्द्धक्षरोऽक्षरपुरुष आत्मेति शारीरकसूत्रप्रवक्ता दार्शनिकानां मूर्द्धन्यो भगवान् वेदव्यासः संपश्यति। तदिदं क्षराऽक्षरलक्षणशारीरकचिदात्मदर्शनं स्थाने वस्तुभूतं निरूप्यते। अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्। इति श्रुतिषूपदिष्टतया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षराक्षरपुरुषस्यैव चिदात्मनः सर्वप्रजापतीन् प्रत्यात्मत्वसिद्धान्तात्। सोऽयं पञ्चसंस्थात्मदर्शने चतुर्थः प्रक्रमः ॥ ४ ॥

५—अव्ययपुरुष आत्मा

५—अथ पुनः क्षराक्षरपुरुषस्याप्यात्मन्वितया तस्य क आत्मेति जिज्ञासायां कार्य्यकारणातीतः सर्वालम्बनभूतोऽयमव्ययपुरुष आत्मेति गीतासिद्धान्तः। तथा चोक्तम्—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥
न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

इत्येवं गीतोक्तानुसारेण चिदात्मनः परब्रह्मणोऽव्ययपुरुषस्य सर्वेषां प्रत्यात्मसिद्धान्तः। सोऽयमात्मसंस्थादर्शने पञ्चमः प्रक्रमः ॥ ५ ॥

अत्रेदं बोध्यम्। असौ परमात्मा पुरुषोत्तमोऽव्ययोऽखण्डोऽसीमेन निर्विशेषेण परात्परेणाभिन्नो द्रष्टव्यः। असीमे परात्परे मायाबलोदयवशात् मायासीमितपुरावच्छेदेनपुरुषत्वोपपत्तौ मायोपाधिकभेदप्रत्तिपत्तावपि वस्तुतो भेदाभावात् ततोऽनतिरिक्तत्वात्। सोऽयं परात्परः सर्वोपनिषदां मुख्यत्वेनाभिप्रेतः परमात्मा निर्धार्य्यते। सेयमेतावती खल्वात्मनिरूपणस्य परमा काष्ठा।

तथा चामी एकस्यैवात्मनिरूपणशास्त्रस्योत्तरोत्तरविषयावच्छेदेन भिन्नभिन्नाचार्य्यव्याख्याता आत्मप्रकरणविभागा अनुसन्धेयाः। न त्वेते वादाः परस्परतः प्रत्याहन्यन्ते विषयभेदेन प्रवृत्तानां तेषां भिन्नस्थानात्मस्वरूपभेदोपपत्त्या तत्र मतविरोधस्यानवसरदुःस्थानत्वात् ॥ इति ॥ *

---

* अतः परं वेदशास्त्राणां विरोधाभासनिरासः प्रक्रान्तः किन्त्वेष भागो नोपलभ्यत आदर्शपुस्तकेषु।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२ उपनिषच्छास्त्राणां विरोधभासनिरासो ब्रह्ममीमांसा ।

१—ब्रह्ममीमांसायां मीमांस्यब्रह्मपदार्थ आत्मा ।

आत्मा ब्रह्म निरुच्यते । "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म" । स आत्मा सर्वेषाम् । यस्य यदुक्थं च साम च तस्यात्मा । यतोऽपूर्वं रूपमुत्तिष्ठते तदुक्थम् । यदुत्थितं रूपं बिभर्ति तद् भर्म सत् पारोक्ष्याद् ब्रह्म । यत्सर्वैर्विकारजातैः समं तत्साम । आत्मायमङ्गी सोऽङ्गानामुक्थं च भवति ब्रह्म च साम च । तस्मात् स तेषामात्मा ।

२—त्रयो निर्गुणाश्चत्वारः सगुणा इत्येवमात्मनः सप्त संस्थाः ।

आत्मा द्विविधः—निर्गुणः सगुणश्चेति । आश्रितधर्मापरिग्रहान्निर्धर्म्मको निर्गुणः । अथ सर्वधर्म्मोपपन्नः सगुणः । तत्र निर्विशेषः परात्परः पुरुषश्चेति त्रयोमी निर्गुणा आत्मानः । स एष त्रिविधोऽपि गूढोत्मा परमात्मा निष्क्रियोऽसङ्गो विभुरव्यावृतरूपः ॥ अथ सगुणश्चतुर्विधः सत्यः, यज्ञः, विराट्, विश्वं चेति । स एष चतुर्विधोऽप्यात्मा प्रजापतिः कर्म्मात्माप्येष ज्ञानमयः कर्म्ममयोऽर्थमयश्च । तथा चैता आत्मनः सप्त संस्था भवन्ति ॥

१—निर्विशेषः = विशुद्धरसमात्रोऽसीमः ।

२—परात्परः = सर्वविधानन्तबलोपेतोऽसीमः ।

३—पुरुषः = मायाबलावच्छेदात् सीमितः षोडशकलः ।

४—सत्यः = आत्मप्राणपशुभिस्त्रिपर्वा प्रजापतिर्ज्ञानकर्मार्थैस्त्रितन्त्रः ।

५—यज्ञः = अन्नान्नादावपन्नैस्त्रिपर्वा प्रजापतिः ।

६—विराट् = दशविधप्राणाग्नौ दशविधप्राणाहुतियज्ञजो यज्ञमहिमोपेतः ।

७—विश्वम् = पाप्मलक्षणाञ्जनावरणान्निरस्तात्मज्योतिः—इति ॥

३—निर्विशेष आत्मा प्रथमसंस्था

तत्रैष प्रथमसंस्थो निर्विशेष आत्मा परमो भूमा परमश्चाणिमा विशुद्धैकरसमात्रोऽमृतभावो रसधर्म्मैरनन्तैर्मृत्युभिर्बलैर्नित्योपपन्नोऽपि तदुपहितः सन् केवलो निर्विशेष इत्युच्यते । सोऽयं विश्वातीतोऽनिर्वचनीयोऽचिन्त्यश्चाविज्ञेयश्चेति विशिष्य व्याख्यानाय नाधिक्रियते ततो विरम्यते । तथा चोक्तम्—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १ ॥
सं विदन्ति न यं वेदा विष्णुर्वेद न वा विधिः ।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ २ ॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
विज्ञातमविजानतामविज्ञातं विजानताम् ॥ ३ ॥

स एष निर्विशेष आत्मा स्वरूपधर्म्मोपपन्नोऽपि आश्रितधर्म्मानाक्रान्तत्वान्निर्धर्म्मकत्वेनोपदिश्यते । तदेवैतदात्मरूपं सर्वोपनिषदां वेदान्तानां मुख्यमुपादेयं लक्ष्यम् । तस्मिन्नेवात्मनि मायाकलाप्रकृतिगुणविकाराणामध्याहितत्वादावरणाञ्जनवशात् तद्विशिष्टस्य मायिनः पुरुषस्य गुणिनः प्रजापतेर्विकारिणो विश्वस्य चैतस्यात्मत्वमारोपितं विद्यात् । किन्त्वेतेष्विदमात्मत्वं गौणमपि नात्यन्तायापोद्यते । आतश्चैतानि वेदान्तोपनिषत्प्रकरणानि भिन्नानेकविधात्मप्रतिपादकानि सांख्यादीन्यपि तन्त्राणि स्थाने प्रकल्पन्ते न तूपेक्ष्यन्ते । अङ्गित्वमात्मत्वमिति परिभाषणादङ्गविशेषानुरोधेन तदङ्गनिरूपिताङ्गिताया अन्यत्रान्यत्रोपपादयितुं शक्यत्वात् । मुख्यं त्वात्मत्वं निर्विशेषस्यैवास्तीति विज्ञेयम् । श्रूयते च—

"तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम् ।"

४—परात्पर आत्मा द्वितीयसंस्था

अथ परात्परो वक्तव्यः । अमृतमृत्युमयः परात्परः । तत्र रसोऽमृतम् । बलानि मृत्यवः । अथ दिग्देशकालाद्यवच्छेदानवच्छिन्नमखण्डमनवयवं विभु परिपूर्णं शान्तं संख्यया त्वेकं निष्क्रियं रसः । नानावच्छेदावच्छिन्नान्यनन्तानीमानि मायबलानि मृत्यवः । "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यतीति" श्रवणात् । तथा चानन्तबलैकीभूतरसलक्षणेऽस्मिन् परात्परे "सर्वधर्म्मोपपत्तेश्चे"—ति श्रवणान्मायाकलागुणविकाराणामावरणाञ्जनयोश्च पर्य्याहितत्वात् तत्तद्बलविशिष्टस्य पुरुषत्वं प्रजापतित्वं चेति विद्यात् ।

निर्विशेषश्च परात्परश्च पुरुषश्चेति त्रिविधो निर्गुणः परिग्रहशून्यः स्वरूपसिद्धः परमात्मा । दशेन्द्रियाणि पञ्च प्राणा मनोबुद्धी चेति सप्तदशको राशिरात्मपरिग्रहः । स तमात्मानमावृणुते ।

तेनायं सत्यो यज्ञश्चेति—उभयोऽपि प्रजापतिरात्मा सगुणः कर्म्मात्मा । उभयोऽप्येष आत्मा सृष्टिं कुरुते कामेन कर्म्मात्मा । ज्ञानमूलो भावनामयः कामः । अथ शुक्रेण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्म्मात्मा। कर्म्ममूलं वासनामयं शुक्रम्। शुक्रेण बन्धनमाप्नोति। ज्ञानेन तु बन्धनाद् विमुच्यते। तथा चैष शुक्रसाधनः कर्म्मात्मा बन्धमोक्षाभ्यां युज्यते। जलापाये जलगतसूर्य्यप्रतिबिम्बः सूर्य्यज्योतिषीव प्रत्यस्ताशेषोपाधिः स चिदाभासश्चिदात्मनीश्वरे प्रविलीयते। तथा च स्मर्य्यते—

"तत्र यः परमात्मा हि स नित्यो निर्गुणः स्मृतः।
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ १॥
कर्म्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते॥
स सप्तदशकेनापि राशिना युज्यते पुनः॥ २॥

तत्र चैतस्मिन् परात्परे निर्विशेषे मृत्युसंज्ञानीमानि बलानि सहचरभावेन नित्यमुपसन्नानि। तान्यस्य स्वरूपधर्म्माणि।

५—पुरुष आत्मा

तस्यैव च परात्परस्य निर्विशेषस्य मायाबलावच्छिन्नः कियाँश्चिद् भागो मायी भूत्वा पुरुषो भवति। अनन्ता हि मृत्यवो बलान्यस्मिन् निर्विशेषनामामृतब्रह्मणि सर्वत्रोपपद्यन्ते। अथैतस्मिन् मायाबले यावताऽन्यानि बलानि भूयसा चीयन्ते स तावच्चितिबलोपपन्नश्चिदात्मा पुरुषो नामाख्यायते। पुरि शेते, पुरि वसति, पुरु ध्यास्यति औपाधिकरूपपरित्यागेनान्यथात्वं गच्छन् भूयो भूयोऽवसीयते—इति पुरुषः। नान्तरेण परात्परमेष पुरुषः स्वरूपं धत्ते। असीमस्यैव हि तस्य मायापरिच्छेदात् सावच्छिन्नत्वेन पुरुषोपपत्तेः।

महतो महीयानवच्छेदो यतः संपद्यते सा महामाया। तस्यामवान्तराखण्डावच्छेदा यत उपपद्यन्ते सा योगमाया। महामायाबलावच्छिन्नः स एष पुरुषो योगमायात्रयीभेदात् त्रयः पुरुषाः संभवन्ति—अव्ययः, अक्षरः क्षरश्चेति।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ २॥

आलम्बनमव्ययं परं ब्रह्म। निमित्तकारणमक्षरं परमं ब्रह्म। उपादानकारणं क्षरं महद्ब्रह्म। इत्येक एवात्माऽयमात्मन्यात्मनाऽत्मानं परिणमय्य त्रिविधं रूपं धत्ते। तत्र विद्या च कर्म्म चेति द्वैधातव्योयमव्ययः। अन्तर्यामी च सूत्रात्मा चेति वा अन्तरात्मा च बहिरात्मा चेति वा द्वैधातव्योऽयमक्षरः। अमृतं च सत्यं चेति द्वैधातव्यः क्षरः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्रानन्दो विज्ञानं मन इति विद्यारूपम्। मनः प्राणो वागिति कर्म्मरूपम्। एषु कामात्मकं मनो द्वयोरेवापित्वीति पञ्चकलमव्ययम्। विद्या कर्म्म चेति मनसीदमुभयं चितम्। अपि वा आनन्दे विज्ञानमनसी—तयोः प्राणवाचावध्यासाते इति विद्यात्।

६—पुरुषस्य षोडशकलत्वम्

अथ ब्रह्मा—विष्णुः—इन्द्रः—इति त्रयो हृद्या अन्तर्यामिरूपम्। इन्द्रः—सोमः—अग्निः—इति त्रयः पृष्ठ्याः सूत्रात्मरूपम्। प्राणात्माऽयमिन्द्रो द्वयोरेवापित्वीति पञ्चकलमक्षरम्। इन्द्रे तदुभयं चितम्। अपि वा ब्रह्मणीन्द्राविष्णू तयोरग्नीषोमावध्यासाते इति विद्यात्॥ २॥

अथ प्राणः—आपः—वागित्यमृतरूपम्। वाग् अन्नम् अन्नाद इति सत्यरूपम्। वाग् द्वयोरेवापित्वीति पञ्चकलं क्षरम्। वाचीदमुभयं चितम्। अपि वा प्राणे आपो-वाचौ तयोरन्नान्नादावध्यासाते इति विद्यात्॥ ३॥ ता एताः पञ्चदश कलाः परात्परकलयोपेताः षोडशकलश्चित्पुरुषः। सोऽयं त्रिपुरुषः पुरुष एतेषु सर्वेषु भूतेष्वन्तर्निगूढो भवतीति गूढोत्मो नाम। सैषा ब्रह्मणो द्वितीया संस्था पुरुषश्चिद् ब्रह्म। श्रूयते च—

पुरुश्चक्रे द्विपदः पुरुश्चक्रे चतुष्पदः।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्॥

स वा अयं पुरुषः कृत्स्नासु पूर्षु पुरिशयः। नैतेन किञ्चनानावृतम्। नैनेन किञ्चनासंवृतम्। इति। तदेतत् परब्रह्मेत्याहुः। एतमेवात्मानं ज्ञात्वा ज्ञानेनाभिसंपन्नत्वात् कर्म्मबन्धनाद् विमुच्यते। एकस्यान्यत्रासञ्जनं स्थिरीभावो बन्धनम। न च तज्ज्योतिषः संभवति—असङ्गत्वात्। श्रूयते हि—

स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्यो न हि गृह्यते अशीर्यो न हि शीर्यते।
असङ्गो न हि सज्जते। असितो न व्यथते न रिष्यति। बृ० ३। २६

तथा चायमात्मा ज्ञानमयत्वादसङ्ग एवाभितिष्ठति न बध्यते। बन्धनं मृत्युः। ततोऽयमतिमुक्तो भवति। श्रूयते हि—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय इति सिद्धान्तः॥

इदमत्रापरं बोध्यम्। एक एवायं षोडशकलः पुरुषः। स ब्रह्मा स विष्णुः स महादेवः। त्रयाणामेषामक्षराणामेकस्यैवेश्वरस्य हृद्यन्तर्य्यामिरूपेण सहावस्थानादविनाभावत्वेनैकत्वप्रतिपत्तेः। तस्माद्विष्णूपासनया शिव उपासितो भवति। शिवोपासनया च विष्णुरुपासितो भवति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७—सत्यप्रजापतिरात्मा

अथ प्राणः, आपः, वाक्, अन्नम्, अन्नादः—इति पञ्चैते प्राणादयो विशुद्धरूपा विश्वसृजः ॥ १ ॥ एकैकस्यार्द्धे परेषां चतुर्णामर्द्धैः सहयोगात् पञ्चीकृतास्ते यज्ञरूपाः पञ्चजनाः ॥ २ ॥ एकैकस्मिन्नन्ये चत्वारो हुतास्ते यज्ञे यज्ञाः परमाणवः पुरञ्जननि ॥ ३ ॥ तेषामेव स्कन्धा ब्रह्मपुराणि ॥ ४ ॥ अथ गतिस्थितिस्वभावौ प्राणवाचौ वागाकाशौ वेति परस्परसंहितं द्विब्रह्म यजुर्नाम । तथा आपो वायुः सोम इति भृगुत्रयम् । अग्निर्यम आदित्य इत्यङ्गिरस्त्रयम् । तदेतत् परस्परसंहितं षड्ब्रह्माथर्वा नाम । अथ ज्येष्ठब्रह्मणि यजुषि सुब्रह्मणोऽथर्वणः संप्रयोगात् सिद्धानि विश्वबीजानि शुक्राणि ॥ ५ ॥

तदेवं पञ्चकला एताः पञ्चप्रकृतयो भवंति । तत्र विश्वसृजः पञ्चजना इति प्रथमानि द्वयान्यमृतम् । पुरञ्जनानि पुराणीति अपराणि द्वयानि ब्रह्म । पञ्चमं शुक्रमित्यपरः संज्ञाभेद इष्यते कैश्चित् ॥

इत्यं चैषा पञ्चविंशतिकला सत्येका प्रकृतिः । सोऽयं नित्यस्य पुरुषस्याशेषबलपरिग्रहलक्षणो नित्यो गुणः । पुरुषे सर्वविकारग्रामाधानात् प्रथमं हीदं धानमिति हेतोः प्रकृत्यामस्यां प्रधानशब्दः । स एक एवायं गुणो बलजातीनां त्रैविध्यात् त्रेधा व्याक्रियते—सत्वं रजः तम इति । ततो हीदं विश्वं त्रैधातव्येन गुणेनोपपन्नं परिपश्यामः । त्रयो धातवः संहता इदमेकं विश्वं—ज्ञानमित्यन्यत्, कर्म्मेत्यन्यत्; अर्थश्चान्यदिति । तत्रेदं ज्ञानं सत्त्वं, कर्म रजः, अर्थस्तम इति संज्ञायते । त्रैधातव्यं विश्वमस्तीतिकृत्वा त्रैगुण्यं विश्वप्रकृतिराख्यायते ॥

तामेवैतां प्रकृतिमवष्टभ्यायं पुरुषः सृष्टिं तनुते । परिणामस्वाभाव्यात्तु पुरुषेस्मिन् गुणानामिदं प्रथमं धानं प्रकृतिर्नामाख्यायते । पुरुषयोग्यायाः कृतेः कार्य्यात् प्रथमं यद्रूपं कारणलक्षणं स प्रकृतिः । नान्तरेण पुरुषमेषा प्रकृतिः कदाचिदवतिष्ठते । तथा चैष गूढोत्मा पुरुषः प्रकृतिविशिष्टः सन् सत्यप्रजापतिराख्यायते । प्रजायमानान् विकारग्रामान् स्वस्मिन्नवलम्बितान् प्रति तस्यात्मनोऽधिपतित्वात् । प्रभवप्रतिष्ठापरायणत्वमाश्रयत्वम् । तदिदमाश्रयत्वलक्षणमिहाधिपतित्वम् । स प्रजापतिर्द्विविधः—विश्वप्रजापतिरीश्वरो नाम । शारीरप्रजापतिर्जीवो नाम । उभयोप्येष चतुर्भिः प्रतिमाप्रजापतिभिरुपेतः परमः प्रजापतिर्द्रष्टव्यः । तत्र तावदीश्वरे स्वयंभूलक्षणे पृथिवी चन्द्रः सूर्य्यः परमेष्ठीति प्रतिमाप्रजापतयः । स्वयंभूस्तु परमः प्रजापतिः । अथ शरीरिणि जीवे शरीरं मनो बुद्धिर्महानिति प्रतिमाप्रजापतयः । अव्यक्तस्तु शान्तात्मा परमः प्रजापतिर्भवति । तत्रापि चासौ जीवगर्भित ईश्वरः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेश्वरादतिरिच्यते किञ्चित्। इत्थं चैषा ब्रह्मणस्तृतीया संस्था सत्यप्रजापतिर्नाम। तदेतत् कारणं ब्रह्म इत्याहुः—एष चैतस्मिन् विश्वस्मिन्नेकान्ततः सर्वत्राभिनिविष्टत्वाद् विश्वाधारत्वाच्च विश्वात्मा नाम। एतमेवोपासते लोकाः॥

अथ ब्रह्मणः प्राणादिमे वेदाः। विष्णोरद्भ्य इमे लोकाः। इन्द्राद् वाच इमाः प्रजाः। दैवतानि भूतानि चेति द्विविधाः प्रजाः। तासां द्विविधा भक्तयो भवन्ति—आत्मा च आयतनञ्चेति। तत्र ज्योतिः, गौः, आयुः—इत्येवं त्रिधातोरस्य सूर्य्यस्य योऽयमायुर्लक्षणस्तृतीयो भागः स एव प्रवर्ग्यो भूत्वा सर्वेषां विश्वभावानामयमात्मा नामोपपद्यते तदुक्तम्—"सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति।

८—यज्ञप्रजापतिरात्मा

अथ अग्निषोमाभ्यामन्नादान्नाभ्यां सम्मिलिताभ्यां यज्ञरूपाभ्यामात्मायतनानि जायन्ते शरीराणि। ततश्चैते प्राणाश्चान्ये भवन्ति पशवश्चान्ये। ये स्वतन्त्राः सन्तो भोक्तारो भवन्ति ते प्राणाः। अथ ये परतन्त्राः सन्तो भोग्या भवन्ति ते पशवः। पशवः प्राणाश्रिताः प्राणाः पुनरात्माश्रिताः। आत्मा प्राणाः पशव इत्येवमियमेकैका व्यक्तिस्त्रैधातव्या भवति। तत्रैते त्रयः शब्दाः निरूपका इतरेतरसापेक्षा भवन्ति इति विचालिनो द्रष्टव्याः। आत्मेति शब्दस्तावदात्मनि हितत्वादङ्गानामनूचीनानां प्राणानामङ्गिनं मुख्यं प्राणमाह। सूर्य्यादंशुवदिमे प्राणा मध्यस्थाद् यतो मुख्यप्राणात् परितः प्रवर्तन्ते स मुख्यप्राणस्तेषामंगप्राणानामात्मा। अथैतस्मिन् हिते प्राणे वाच उपहिता भवन्ति। तदंगमेषां प्राणानामुपांगं पुनरात्मनः। वाच एवैते पशवः प्राणानध्याश्रित्यावतिष्ठन्ते। नान्तरेण पशून् प्राणाः, न चान्तरेण प्राणानयमात्मा। इत्येवमेकैकस्मिपर्वा सर्वोऽयमर्थोऽध्यवसातव्यः॥ तत्र—

पशवः पञ्चधा—पोषच्छन्दोऽन्नसलिलाग्नयः।
प्राणाः, परोरजा, आप्यवायव्याऽग्नेयसौमिकाः॥ १॥
आत्मानोऽखण्डपुरुषाः सत्यो यज्ञो विराडिति।
पशुप्राणात्मनामैक्यं यत्र सा षोडशी कला॥ २॥
एकैकः षोडशकलः सर्व एष प्रजापतिः।
सर्वं हि षोडशकलमिति च श्रूयते श्रुतौ॥ ३॥

९—विराट् प्रजापतिरात्मा

यज्ञात्मकैर्विकारसंघैः कृतो यज्ञो विराट्। तद् विश्वम्। तदारम्भका अन्ये यज्ञाः। तानि चाग्नेयसौम्यधातुद्वयसंघातजानि यज्ञरूपाणि। अथैतद्यज्ञारम्भक-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धातुविशेषः सत्यः। "यज्ञं कृत्वा सत्यं तनवामहै" इति सिद्धान्तात्। यज्ञश्च सत्यश्चेत्युभयोऽप्येष प्रजापतिर्द्रष्टव्यः। उभयत्राप्यन्तर्निगूढस्यात्मनः षोडशिपुरुषस्य प्राणपशूपेतत्वात्। आत्मप्राणपशुभिस्त्रिपर्वणो व्यक्तेः प्रजापतित्वसिद्धान्तात्॥

तदित्थमात्मनः पञ्चसंस्था उपपद्यन्ते—

१—परात्परः-अखण्डः = आत्मा

२—षोडशी पुरुषः = आत्मा = अव्ययकलाः[५], अक्षरकलाः[५], क्षरकलाः[५], परात्परः[१] इति षोडश कलाः।

३—सत्यप्रजापतिः = आत्मा

४—यज्ञप्रजापतिः = आत्मा

५—विराट् प्रजापतिः = आत्मा

तथा चैतस्य विराट्प्रजापतेरात्मा सर्वहुद् यज्ञप्रजापतिः। अथ यज्ञप्रजापतेरात्मा सत्यप्रजापतिः। अथ सत्यप्रजापतेरयमात्मा षोडशीपुरुषो गूढोत्मा। अथ षोडशिनः पुरुषस्यायमात्मा योऽयमखण्डात्मा परात्परो नाम। अथ नैतस्य परात्परस्यान्यः कश्चिदात्मोपपद्यते। तस्मादात्मैवैष प्रतिपत्तव्यो न तत्रायमात्मन्वी भवति। अन्ये तु षोडशो सत्यो यज्ञो विराट् चेति चत्वारोऽप्यमी आत्मन्विनश्च भवन्त्यात्मानश्चेतरापेक्षम्। तेनौपनिषदे शास्त्र विराट्—यज्ञः—सत्यः—षोडशी चेति चतुर्विधा अपि ते आत्मशब्देन व्यपदिश्यन्ते। तथा हि—

१—विराडात्मा

विराट् तावदात्मा श्रूयते

"अथात आत्मादेशः। आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टात्। आत्मा पश्चादात्मा पुरस्तात्। आत्मा दक्षिणत आत्मोत्तरतः। आत्मैवेदं सर्वम्' (छां० ७। २५)। सर्वं तं परादाद् योऽन्यात्रात्मनः सर्वं वेद। इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्। इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः, इमानि भूतानि, इदं सर्वं यदयमात्मा।" बृह० ४। ५। ८,। इति।

योऽयमात्मा—इदममृतम्— इदं ब्रह्म-इदं सर्वम् (बृह० । ५ । १)

एवमादिश्यमानोऽयमात्मा पञ्चमसंस्थापेक्षः। तत्र च नात्यन्तायास्य विकृतिभागे स्वातन्त्र्येणेदमात्मत्वम्। तदेव तदात्मपर्य्यागृहीते विकारभागेऽप्युपचर्य्यते। प्रदीपाधारपात्रे प्रदीपशब्दव्यवहारवत्। सोऽयं विराडात्मा द्रष्टव्यः। अन्येऽप्येवंविधा विराडात्मन आदेशा भाव्याः॥ १॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—यज्ञात्मा ईश्वरः

सर्वेषां वा एष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मा यद् यज्ञः। पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम्। अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा। अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानामायतनम्। वायुर्वै सर्वेषां देवानामात्मा। द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्। सूर्य्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा। दिशो वै नक्षत्राण्योषधयश्च सर्वेषां देवानामायतनम्। चन्द्रो वै सर्वेषां देवानामात्मा। आपो वै सर्वेषां देवानामायतनम्। वरुणो वै सर्वेषां देवानामात्मा। अनिरुक्तो वै प्रजापतिः त्रयोदश मासाः संवत्सरः। संवत्सरः प्रजापतिः। प्रजापतिर्यज्ञः॥

१	पृथ्वी	२	अग्निः	७	दिशः	१० चन्द्रः	११ आपः	१२ वरुणः
३	अन्तरिक्षं	४	वायुः	८	नक्षत्राणि			१३ अनिरुक्तः
५	द्यौः	६	सूर्य्यः	९	ओषधयः			
आयतनानि		आत्मानः		आयतनम्		आत्मा	आयतनम्	आत्मा

अथैतमेवात्मानं प्रस्तुत्याह—

"एवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राणः आत्मत आशा, स्मरः, आकाशः, तेजः, आपः, अन्नम्, बलम्, विज्ञानम्, ध्यानम्, चित्तम्, संकल्पः, मनः, वाक्, मन्त्राः, कर्माणि। आत्मत एवेदं सर्वम्।" इति (छां० ७। २६)

आत्मनो हीमाः षोडश कला द्रष्टव्याः	
१—प्राणः	९—विज्ञानम्
२—आशा	१०—ध्यानम्
३—स्मरः	११—चित्तम्
४—आकाशः	१२—संकल्पः
५—तेजः	१३—मनः
६—आपः	१४—वाक्
७—अन्नम्	१५—मन्त्राः
८—बलम्	१६—कर्माणि
इति छान्दोग्ये षोडशकलाक्रमः	

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञात्मा—जीवः

पिप्पलादस्तु भगवानन्यथा ताः कला आह। तथा हि—

"इहैवान्तःशरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्ति। स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धाम्। खं, वायुः, ज्योतिः, आपः, पृथिवी, इन्द्रियं, मनोऽन्नम्। अन्नाद् वीर्य्यम् तपो मन्त्राः कर्म्मलोकाः लोकेषु नाम च। इमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्तीति॥"

पिप्पलादस्तु भगवानन्यथा ताः कला आह	
१—प्राणः	९—मनः
२—श्रद्धा	१०—अन्नम्
३—आकाशः	११—वीर्य्यम्
४—वायुः	१२—तपः
५—ज्योतिः	१३—मन्त्राः
६—आपः	१४—कर्म्म
७—पृथ्वी	१५—लोकाः
८—इन्द्रियम्	१६—नाम
इति पैप्पलादे षोडशकलाक्रमः	

मुण्डकस्त्वाह—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्म्मसु चामृतम्॥ इति।

१	तपः	५—मनः
२	ब्रह्म	६—सत्यम्
३	अन्नम्	७—लोकाः
४	प्राणः	८—कर्म्म

यदि विश्वमेवात्मा विवक्षितः स्यात्तर्हि नैषां विश्वभावानामात्मजन्यत्वमात्मविलीनत्वं चोपपद्येते। तस्मादात्मना प्रजापतिना परिगृहीतोऽयं सर्वो विकारसंघस्तदा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्मग्रहणेन गृह्यते "यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते—" इति न्यायात्। घटोऽयं मृत्तिकेतिवत्। सोऽयं यज्ञात्मा द्रष्टव्यः। अन्येऽप्येवंविधा यज्ञात्मन आदेशा भाव्याः॥

३—सत्यात्मा ईश्वरः

अथैतस्य सत्येश्वरप्रजापतेरात्मत्वमाम्नायते—

"यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित्।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तत्तेजोऽसृजत। तदपोऽसृजत। ता अन्नमसृजन्त। सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्। अन्नेन शुङ्गेनापो मूलमद्भिः शुङ्गेन तेजो मूलं तेजसा शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ। सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः—"। (छा० ६।८।६)

"ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा—" इति।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत्।

स इमान् लोकानसृजत" (ऐ० १।१) इति।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।" (तै० २।१)

इतीश्वरपुरुषापेक्षः सत्यात्मा व्याख्यातः॥

सत्यात्मा जीवः

"यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः॥

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः"॥

"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः॥

जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ १॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।—

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति"॥ २॥ (मुण्ड०)

अयमर्थः। प्रतिशरीरभिन्नश्चिदाभासः शरीरलक्षणे वृक्षेऽन्तर्निगूढः सन् अज्ञानावृतज्ञानवशान् मुह्यति। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः इति स्मरणात्। सोऽन्यमीशं चिदात्मानमीश्वरं यदा पुनरभेदेनात्मनि संलग्नं पश्यति तदानीमज्ञानविलयनाद् वीतशोको भवतीति। अपि चैतस्य चिदात्मनः साक्षात्कारात् सर्वाणि कर्म्माणि पापानि पुण्यानि च नश्यंतीति कृत्वा निरञ्जनः सन्नीश्वरेण समानतां लभते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्म्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणपापाः ॥ ३ ॥
एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ४ ॥" (मुण्ड० ३ । १)

सत्यात्मा जीवेश्वरसाधारणः—

तदित्थमयमीश्वरो वा जीवो वा सत्यात्मा द्रष्टव्यः । अन्येऽप्येवंविधाः सत्य-पुरुषात्मन आदेशा भाव्याः ॥

(४) षोडशीपुरुष आत्मा ईश्वरः

अथैतस्य पुरुषस्य विशुद्धस्यात्मत्वमाम्नायते—
"आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव । (बृ० १ । ४ । १७)
आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः । (बृ० १ । ४ । १)
यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥
यः सर्वज्ञ सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः" ॥
इतीश्वरापेक्षः षोडशीपुरुषः ॥

षोडशीपुरुष आत्मा जीवः

"मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ॥ १ ॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" ॥
इति जीवापेक्षः षोडशीपुरुषः ॥

षोडशीपुरुष आत्मा जीवेश्वरसाधारणः

"हिरण्मयः परे कोशे विरजःब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥"
इत्याद्युभयसाधारणम् ।

मुख्यं चैतस्य पुरुषस्यात्मत्वमवकल्पते न त्वौपचारिकं कल्प्यम् । अयमहं शब्दः तमेवैनं पुरुषमात्मानं लक्षयति ।

"अहं वाव सृष्टिरस्मि । अहं हीदं सर्वमसृक्षीति ॥ सतः सृष्टिरभवत् ॥१४ । ३ । २ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अथातोऽहंकारादेशः। अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टात्। अहं पश्चादहं पुरस्तात्। अहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतः। अहमेवेदं सर्वम्।—" इति (छां० । ७ । २५)

सोऽयमित्थं षोडशीपुरुष आत्मा द्रष्टव्यः। अन्येऽप्येवंविधाः षोडशिनः पुरुषस्यात्मन आदेशा भाव्याः॥

(५) परात्पर आत्मा

अथ य एष सर्वान्तरतमो निर्धर्म्मक आत्मा प्रथमसंस्थः सोऽयमखण्डात्मा परात्परः श्रूयते—

"यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एव। एवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव। अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्म्मा। यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं विजानाति। यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् केन कं विजानीयात्। स एष नेति नेत्यात्मा न गृह्य ते। न शीर्य्यते। न सज्जते। न व्यथते। न रिष्यति। ३। १।" (बृ० ४। ५। १३)

"अथ यत्रैष नान्यत् पश्यति, नान्यद् विजानाति स भूमा। यो वै भूमा तदमृतम्। स एवाधस्तात् स उपरिष्टात्। स पश्चात् स पुरस्तात्। स दक्षिणतः स उत्तरतः। स एवेदं सर्वम्।" इति। (छां० ७। २५। १)

इत्थं पृथक्त्वेनोपनिषत्सु पञ्चविधा आत्मानः पठ्यन्ते। स एक एवात्मा तत्तदुपाधियोगायोगविवक्षाभेदात् पञ्चधा विवक्ष्यते। तथा हि—

१—अखण्डात्मा परात्परो निरुपाधिकः प्रथमः।

२—स एव मायाकलापेक्षः षोडशीपुरुषो द्वितीयः।

३—स एव च पञ्चप्रकृतिपरिग्रहापेक्षः सत्यप्रकृतिकः प्रजापतिस्तृतीयः।

४—स एव च अन्नाहुतिधर्म्मयोगापेक्षः सर्वहुद्यज्ञप्रजापतिश्चतुर्थः।

५—स एव पुनः सर्वधर्म्मपरिग्रहापेक्षो विराड्यज्ञप्रजापतिः पञ्चमः। इति।

(१) पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरात्मत्वम्

तेषामेषां सर्वेषामंगांगिभावनिबंधनमुक्थब्रह्मसामत्वनिबंधनं चात्मत्वं विवक्षावशात् पर्य्यवसीयते। तथा हि—

१ विराड् आत्मा

विश्वस्मिंस्तावत् समस्तलोकव्यवहारसाधकानामंतरंगबहिरंगभूतानां शरीरिपरिवारविशेषाणां शरीरविशेषसापेक्षत्वादयमङ्गी शरीरविशिष्टो व्यक्तिविशेषो विराट् प्राणी प्रजापतिर्भवत्यात्मा॥ १॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२ यज्ञः आत्मा

अथ विराड्रूपोऽयं शरीरावच्छिन्न आत्मा बृहदारण्यकोक्तसप्तविधान्नाहुति-लक्षणयज्ञमंतरेण नोपपद्यते । तस्मादङ्गभूतस्यैतस्य विराजोऽयमङ्गी यज्ञोऽर्थः प्रजापतिर्भवत्यात्मा ॥ २ ॥

३ सत्यः आत्मा

अथ यज्ञोऽयं भाव्यकर्म्मविशेषो न पूर्वतः कंचिदग्निलक्षणं मौलिकतत्वरूपं नित्यमर्थमंतरेणोपपद्यते । तस्मादङ्गभूतस्यैतस्य यज्ञस्यायमङ्गी प्रकृतिभूतः सत्योऽर्थः प्रजापतिर्भवत्यात्मा ॥ ३ ॥

४ षोडशीपुरुष आत्मा

अथैतेषामनादिरूपाणां सत्यभावानां प्रकृतिरूपाणामेकस्मिन्नेव कस्मिंश्चिद् द्वितीये सत्यस्य सत्ये षोडशिपुरुषे मायिन्योतप्रोतत्वं विज्ञायते । तेनायं पुरुषस्तेषामपि प्रकृतिरूपाणां सत्यानां मौलिकतत्त्वानां भवत्यात्मा ॥ ४ ॥

५ परात्परः

अथैतेषां षोडशिपुरुषाणां मायाभेदभिन्नानां मायाबलोत्पत्तिक्षेत्रे कस्मिंश्चिदेकस्मिन्नद्वितीयेऽखण्डात्मनि निर्विशेषे परात्परे संभाव्यमानतया सर्वेषामेषां पुरुषाणां परात्परस्थानामयमसीमः परात्पर एवैको भवत्यात्मा ॥ ५ ॥

(२) परात्परपुरुषयोः सृष्टिकर्तृत्वाभावः

तेष्वेतेषु पञ्चविधेष्वात्मसु प्रथमस्य परात्परस्यैवं द्वितीयस्य च विशुद्धरूपस्य पुरुषस्य सृष्टिकर्तृत्वं नास्ति । इतरस्य कस्यचित् शुक्रस्य संप्रयोगमंतरेण संसृष्ट्यसंभवात् ।

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

इति श्रुत्या शुक्रसहकारेणैव सृष्टेः संप्रतिपन्नत्वात् ॥ ॥

तथा चैतस्य तृतीयसंस्थस्य सत्यप्रकृतिविशिष्टस्य षोडशिपुरुषस्यैव सृष्टिकर्तृत्वमस्तीति वेदांतसिद्धान्तः । अव्ययपुरुषालंबने पर्य्याप्तस्य कामतपःश्रमैः सिसृक्षमाणस्याक्षरपुरुषस्येच्छाव्यापाराभ्यां जाते क्षरपुरुषपरिणामे विशेषरूपायाः प्रकृत्या विकारेण विश्वोत्पत्तेः प्रतिपद्यमानत्वात् ।

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य संभवाम्यात्ममायया ॥ १ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥"

इति गीतास्मृतौ प्रकृतिविशिष्टस्यैवास्य पुरुषस्य सिद्धांतरूपेण सृष्टिकर्तृत्वाख्यानात्। तथा चायमात्मा निर्गुणश्च सगुणश्च सृष्टिकर्त्ता चाकर्ता चेति सर्वथोपपद्यते ॥

अत एव चेह जन्माद्यस्य यतस्तदिदमेकमेवात्मब्रह्मतत्त्वमित्थं संस्थाभेदात् पञ्चधा कृतरूपमनुव्याख्यातं द्रष्टव्यम् ॥ तेन चैकस्यैवात्मनः संस्थाभेदान्नानात्वोपपत्तौ भिन्नभिन्नात्मतात्पर्य्येण व्याचक्षाणानां वेदांतानां सामञ्जस्यसंभवादुपनिषदां सर्वे विरोधाभासा निरस्यंते।

इति आत्मब्रह्ममीमांसायामुपनिषदां विरोधाभासनिरासः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—दर्शनशास्त्राणां विरोधाभासनिरासो ब्रह्ममीमांसा

दर्शनशास्त्राणां परस्परविरोधपरिहारः ।

एकस्यैवात्मनः संस्थाभेदविज्ञानादात्मनानात्वोपपत्तौ दार्शनिकानामपि तत्तदात्मनिरूपणे विरोधाभासा अज्ञानमूलका एवाविदुषां भासन्ते ।

लौकायतिका लोकं शैवाः शिवमिच्छयैव विश्वसृजम् ॥
भागवताः सप्रकृतिं विष्णुं पश्यन्ति विश्वकर्तारम् ॥ १ ॥
वैशेषिकः प्रजापतिमात्मानं पूरुषं सांख्यः ॥
अथ वेदान्ती पश्यति ब्रह्मैवात्मानमस्य विश्वस्य ॥ २ ॥
तद्ब्रह्मणः स्वरूपं विज्ञातुं प्रयतमानेन ।
मीमांसासूत्राणां तात्पर्य्यं भूयसाऽऽलोच्यम् ॥ ३ ॥

इत्थं च भिन्नं भिन्नमात्मानं व्याचक्षाणानां दर्शनशास्त्राणामापाततो विरोधा दृश्यन्ते । तत्रेयमात्मनां भिन्नत्वप्रतिपत्तिरापातरमणीया ॥ वस्तुतस्तु संस्थाप्रतीकोपपादनपरतया स्थाने संगच्छन्ते सर्वाणीमानि दर्शनतन्त्राणि । तथाहि—

१—निर्विशेष आत्मा वेदान्तदर्शने

दिग्देशकालसंख्याद्यनवच्छेदादसीमोऽत्यनपिनद्धो भावोऽशेषबलनिधिरखण्डात्मा परमेश्वरोऽसौ परात्परश्चिदात्मा निर्विशेषः । नैष निर्विशेषः पुरुषत्वेनेष्यते । असीमत्वात् । पुरुषस्य पुरावच्छिन्नतया पुरतः सीमितत्वात् । तदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । स एष निर्विशेषः परमेश्वरो वेदान्तशास्त्रार्थः ।

२—महेश्वरः पुरुष आत्मा सेश्वरसांख्यदर्शने

स खल्वेष निर्विशेष एव मायाबलोदयान्मायाबलोपाध्यवच्छेदेन प्रमितो भूत्वा निर्गुण एव सन्नयं चिदात्मा मायामितायां पुरि वसन् पुरुषो नामाख्यायते । स त्रिविधः—महेश्वरः, ईश्वरः, जीवश्चेति । सहस्रबलशाश्वत्थवृत्तलक्षणमहामायाबलोपाधिसंभवेऽपि महामायोपाधिकमहाविश्वस्यैकतया तद्विश्वाभिव्यापिनः पुरुषस्यानेकत्वासंभवात् । उक्तं च—

"यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चिद् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्" ॥ सर्वमिति महाविश्वाखिलप्रदेशाभिप्रायं भाव्यम ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—ईश्वरः पुरुष आत्मा सेश्वरसांख्यदर्शने

सहस्रबल्शैतदश्वत्थाङ्गभूतैकैकबल्शामात्रावच्छिन्नत्वादपेक्षाकृताल्पपरिमाणोऽनेकसंख्यो बल्शाव्ययपुरुष ईश्वरः। स एकस्मिन् महेश्वरेऽनेकतयोपपन्नोऽप्येकैकलोकसप्तकापेक्षः सप्तवितस्तिकायो विभुरेक एवोपपद्यते।

"क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"—इति योगपातञ्जलसूत्रम्। एकस्यैवेश्वराव्ययपुरुषस्य रसोदञ्छनादनंतास्तदंशभूता इमे जीवाव्ययपुरुषाः प्रादुर्भवन्ति। तेषां चैषां जीवाव्ययपुरुषाणामयमेक एवेश्वराव्ययः प्रभवः। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तौ पुनरेष एवाव्ययपुरुषः सर्वेषामेषां जीवाव्ययपुरुषाणां निलयनम्। तदुक्तम्—

"गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥" मु० ३।२॥

एष खलु एकबल्शोपाधिकयोगमायावच्छिन्नोऽव्ययपुरुष ईश्वरः। स एवेह सेश्वरसांख्यशास्त्रार्थः॥

४—विभुरेकः पुरुषो जीवात्मा वेदान्तदर्शने

इदं पुनरत्रान्यद् द्रष्टव्यम्। पुरुषो द्विविधः—ईश्वरो जीवश्चेति। तत्रैष जीवः पुनर्द्वेधोपपद्यते—प्रत्यगात्मा, शारीरकात्मा चेति। सूर्य्यप्रकाशवद् विश्वव्यापकश्चिदात्मायमीश्वरो विश्वस्मिन्नव्यावृतरूपतया जीवशरीरेऽपि तिष्ठन् जीवसहकारी चिदंशः प्रत्यगात्मा। अथेश्वरांशाज्जीवशरीरावच्छेदेनोत्पद्यमानः सूर्य्यप्रतिबिम्ब इव शरीरोपाधिकश्चिदंशः शारीरकात्मा॥ अयं भावः। सूर्य्यप्रकाशगतजलदर्पणरत्नादिशरीरे सूर्य्यरश्मिर्द्वेधोपपद्यते—आतपरूपेण, प्रतिबिम्बरूपेण च। तत्र तत्तच्छरीरपर्य्याप्तोऽपि एष आतपस्तत्तच्छरीरे प्रवर्ग्यभूतो नास्तीति विश्वव्यापितयैक एवेतरसाधारणः सर्वत्रेष्यते। प्रतिबिम्बस्तु शरीरप्रमाणोपाधिवैलक्ष्यण्याद् विलक्षणरूपेणोत्पद्यमानः प्रतिशरीरं भिन्नो नानात्वेनोपपद्यते। एवमेव तु विश्वव्यापिनश्चिदात्मनोऽयं चिदंशः प्रतिशरीरं द्वेधा संनिधत्ते—चेतनारूपेण चिदाभासरूपेण चेति। तत्र तत्तच्छरीरपर्य्याप्तोऽप्येष चिदात्मा तत्तच्छरीरे प्रवर्ग्यभूतो नास्तीति विश्वव्यापितयैक एवेतरसाधारणः सर्वत्रेष्यते। स ईश्वरेणाविशिष्टोऽपि जीवसहवर्तित्वात् कथंचित् साधर्म्योपगमाज्जीवत्वेनापि व्यपदिश्यते "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठतीति" स्मरणात्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तमेतमेकं जीवं वेदान्तिनः पश्यन्ति । तथा चाहुः प्रत्यगात्मषड्भावनास्तुतिम् ॥

एक एवात्मा बहुधा समिद्धो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ २ ॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ॥

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ३ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ॥

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्" ॥ ५ ॥ (कठ०२।६-१३)

५—प्रतिशरीरभिन्नोऽनेकः पुरुषो जीवात्मा सांख्यदर्शने

अथ योऽयं विज्ञानात्मा क्षेत्रज्ञः प्रतिक्षेत्रोपाधिभिन्नो नानात्वेनोपपद्यते सोऽयं चिदाभासः शारीरकात्मा नाम । स मुख्यो जीवः प्रतिशरीरभिन्नतया नानात्वेनेष्यते । तमेतमनेकं जीवं सांख्याः पश्यन्ति । तथा चाहुः—

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् । (साङ्ख्यसूत्र १।१४६)

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ।

पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥ (साङ्ख्यकारिका १८)

६—सगुण आत्मा प्रजापतिर्वैशेषिकदर्शने

अथायं पुरुष आत्मा मूर्तामूर्तसमुच्चयवशात् प्राणेन, प्रकृत्या, पशुभिर्गुणैश्चोपेतः प्रजापतिरात्मा भवति । स बुद्ध्या सुखदुःखाभ्यामिच्छाद्वेषाभ्यां धर्म्माधर्म्माभ्यां प्रयत्नेन च गुणेनोपेतः प्रतिपद्यते । स एष सगुण आत्मा वैशेषिकशास्त्रार्थः ॥

७—सत्यः प्रजापतिरात्मा शैवोपासनायां माहेश्वरदर्शने

एष पुनः प्रजापतिर्द्विविधो विज्ञायते—सत्यश्च यज्ञश्चेति । तत्रायं सत्य आत्मोपास्यः प्रकृतिनिरपेक्षतया स्वतन्त्रो माहेश्वरशास्त्रार्थः ॥

८—यज्ञप्रजापतिरात्मा वैष्णवोपासनायां भागवतदर्शने

अथ यज्ञ आत्मोपास्यः सप्रकृतिको विष्णुरक्षरो भागवतशास्त्रार्थः ।

एवं शिवोऽप्यग्निसोमाक्षरः शैवाद्युपासकशास्त्रार्थः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९—विराट्प्रजापतिरात्मा लौकायतिकदर्शने

अथात्मप्रतिष्ठितप्राणप्रकृतिसंभूतैः क्षेत्रमहिमपाप्मभेदभिन्नैः सर्वविधविकार-गुणलक्षणैर्वित्तैरुपेतः सन् विराट्प्रजापतिरात्मैवेदं विश्वं नामाख्यायते। स हि सर्वविधलोकव्यवहारहेतुरात्मा लौकायतिकशास्त्रार्थः।

१०—मुख्यात्मतत्त्वाविरोधात् सर्वदर्शनानां सामञ्जस्यसिद्धिः

स इत्थं पञ्चसंस्थस्यात्मनो दर्शने केवलं दृष्टिकोणो भिद्यते। न त्वात्मा भिद्यते॥ एकस्यैवात्मनः संस्थाभेदाद् भेदव्यवहारौचित्यात्॥

इति संस्थाभेदादात्मनानात्वोपपत्त्या दर्शनशास्त्राणां विरोधाभासनिरासो ब्रह्ममीमांसा॥

आत्मातीतः	१ चार्वाकाः लौकायतिकाः आहुः—लोको विश्व-प्रजापतिः आत्मा	नास्तिकः
आत्मोपा०	२ शैवाः पाशुपताः आहुः—स्वतन्त्र ईश्वरो विराट् प्रजापतिः आत्मा	उपासकाः
विश्वात्मोपा०	३ वैष्णवा भागवता प्रकृतिस्थेश्वरो विराट् प्रजापतिः आत्मा	उपासकाः
विकृतिपरः	४ औलूक्याः काणादा वैशेषिकाः—विशेषगुणकः सत्यप्रजापतिः आत्मा	कर्मवादी
प्रकृतिपरः	५ सांख्याः कापिलाः प्राधानिकाः—सप्रकृतिकः पुरुषो यज्ञप्रजापतिः आत्मा	कर्मवादी
विश्वातीतः	६ वेदान्तिनः औपनिषदाः—निर्विशेषः परात्पर आत्मा	ज्ञानवादी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—अथ ईश्वरात्मनिरुक्तिः

१—ईश्वरनिरूपणोपक्रमः

परात्परः पुरुषः पुरं विकार इत्येते चत्वारः पादा ब्रह्मरूपम् ॥ चतुर्भिरेतैः पादैः कृतरूपो ब्रह्मपुरुषः षोडशीत्युच्यते । आत्मग्राम एव भूतग्रामादीनादधानः सन् सात्मग्रामः सभूतग्रामः सविकारसंघोऽयमशेषमर्त्यामृतमयः षोडशी पुरुषो जायते। स कदाचित् तान् परित्यजन् गृहीतेन पूर्वरूपेण हीयते इत्यनाद्यनंतो धारावाहिक-प्रवाहमयोऽयं ब्रह्मपुरुषो न कदाचिदप्येकांततो न न भवति इति निभृतं प्रत्येतव्यम् ॥

स एष षोडशी द्वेधा प्रतिपद्यते—ईश्वरः जीवश्च । परात्परे ब्रह्मणि महामाया-बलोदये सति तया मायया मीयमानो यावान् रसो माया परिच्छेदात् परिच्छिन्नतया भासते सोऽव्ययपुरुषः । स एव मनोमयः प्राणावच्छेदेन पंचाक्षरानादधानो वागवच्छेदेन च पञ्चविधान् क्षरभावानुत्पादयमानो धारयमाणो निःशेषजीवानामे-काश्रयभूतः शाश्वतिकोऽविचाली चेतनः कश्चिदीश्वर इत्युच्यते । तमीश्वरं तावद् व्याख्यास्यामः ॥

२—अथेश्वरानुवाकः प्रारभ्यते

यो निर्विशेषः स परात्परो भवन् निरञ्जनः सन्नुपसृष्ट ईक्ष्यते ॥
हित्वोपसर्गं स निरञ्जनो भवन् परात्परः शिष्यत एव लक्ष्यते ॥ १ ॥
आत्मन्विनस्त्रयस्तत्र दर्शितः परमेश्वरः ।
अथेश्वरो दर्शितव्यो यतो जीवा भवन्त्यमी ॥ २ ॥
आत्मैवेश्वर उच्यते न तु तनुः किन्त्वेष नात्मा विना
देहेन क्व च भाति तेन भगवान् देहीश्वरो गम्यते ।
जीवस्येव च तस्य भाति परमाराध्यस्य देहत्रयं
स्थूलं सूक्ष्ममथास्ति कारणवपुस्तत्रान्तरे निस्तनुः ॥ ३ ॥
यः स्थूलदेहोऽखिलकर्म्मणां स ह्यात्माऽस्य चात्मास्ति स सूक्ष्मदेहः ।
तस्याप्ययं कारणदेह आत्मा तस्याशरीरोऽस्ति स एव सर्वम् ॥ ४ ॥

रसो निर्विशेषः । बलं निर्विशेषम् ॥ १ ॥ बलवद्रसः परात्परः सोऽभयो भूमा ॥ २ ॥ अव्ययः, अक्षरः क्षर—इति त्रिपुरुषः षोडशी पुरुषो निरंजनः ॥ ३ ॥ मनः प्राणो वाग् इति त्रयं ब्रह्मरूपम् । आनंदगर्भिविज्ञानं मनोविवर्तः । अग्निगर्भिण्य आपो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाग्विवर्तः । तथा च आनंदमयविज्ञानम्—मनः—प्राणः—वागापोग्निमय्यः-इति त्रीणि ब्रह्माणि द्वौ विवर्तौ—इति पञ्चधातुरव्ययः ॥ अथ ब्रह्मा, विष्णुः, इन्द्रः-इति त्रयं ब्रह्मरूपम् । ब्रह्मगर्भी विष्णुः सोमो विष्णुविवर्तः । ब्रह्मगर्भी इन्द्रः, अग्निरिन्द्रविवर्तः । तथा च त्रीणि ब्रह्माणि द्वौ विवर्तौ इति पञ्चधातुरक्षरः ॥ मर्त्यं चामृतं च ऋतम् ॥ मूर्तं चामूर्तं च सत्यम् ॥

१	२	३	४	५	
मनः	प्राणः	वाक्	मनः प्राणयोगात् (बहिर्योगात्) आनन्दगर्भि-विज्ञानम्	वाक्प्राणयोगात् (बहिर्योगात्) आपः अग्नि-गर्भिण्यः	अव्ययः १
विष्णुः	ब्रह्मा	इन्द्रः	विष्णुब्रह्मैकात्म्य-योगात् सोमः	इन्द्रब्रह्मैकात्म्य-योगात् अग्निः	अक्षरः २
अमृतम्	ब्रह्मा	शुक्रम्	ऋतम् अन्नम् कम् आवापः यजुः अग्निः कर्म्म वाक्	सत्यम् = लोकाः वेदाः खम् निवापः छन्द आपः नाम-रूपे	क्षरः ३

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
अमृतमर्त्ये ऋतानिः यजुः अग्निः आपः कर्माणि अन्नम् निवापः वाक् कम् ॥ ऋतसूत्रम् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूर्तामूर्ते सत्यानि—वेदाः आपः अग्निः नामरूपे लोकाः आवापः छन्दः खम् ॥ सत्यसूत्रम् ।

सुब्रह्मण्यं ब्रह्मण्यं मृत्युः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—अनन्तलोकालम्बनस्य त्रिपुरुषस्येश्वरात्मत्वम्

येयं पृथ्वी यत्र सर्वे वसामस्तस्या ऊर्ध्वं दृश्यते सूर्य्य एषः ।
द्यावाभूमी ते तयोरन्तरिक्षं मध्यं सेयं दृश्यतेऽद्धा त्रिलोकी ॥ १ ॥
सान्यत्रिलोक्यां निहिताथ सापि स्थिता त्रिलोकी परमत्रिलोक्याम् ।
तिस्रस्त्रिलोक्यो ग्रथिता इहैका स्यात्सप्तलोकी परमत्रिलोकी ॥ २ ॥
त्रैलोक्यपृष्ठे किमपि स्वयंभु यत् सत्ताचिदानन्दमयं निरूप्यते ।
त्रिपूरुषं ज्योतिरमुष्य रश्मयः परावतो यान्ति पराः स ईश्वरः ॥ ३ ॥
आशीर्षमापादममुष्य विश्वेश्वरस्य देहस्य यथास्ति संस्था ।
अङ्गान्युपाङ्गानि यथा तदत्र प्रत्यक्षवत् किञ्चन दर्शयामि ॥ ४ ॥
तिस्रस्त्रिलोक्यः सयुजः क्षराः सन्त्यासां नियन्ता पुरुषोऽक्षरोऽन्यः ।
तस्याप्यतिष्ठावतयाऽव्ययो यः स ईश्वरस्तं परिदर्शयामः ॥ ५ ॥
महात्रिलोक्यन्तरतस्त्रिलोकी तस्यां त्रिलोकी पुनरन्तरस्ति ।
ब्राह्मी त्रिलोकी परमाऽथ मध्या सा पारमेष्ठ्यस्त्यवमेयमैन्द्री ॥ ६ ॥
यथा तु पश्यामि मनुष्यदेहे मांसास्थिमज्जादिशिरःपदादि ।
तथेश्वरस्यापि तनुस्वरूपे नानात्रिलोकीप्रतर्तिं प्रविद्यात् ॥ ७ ॥
ज्योतिर्ब्रह्म बृहस्पतिं विनयते वाचस्पतिं तु श्रितो-
ऽस्तीन्द्रोऽन्यः परमेष्ठ्यमुं पविभृगुब्रह्मेश्वराहस्कराः ।
सूर्य्ये चेयमुपाश्रिता सहपरैः पृथ्वी ज्ञभृग्वादिभि-
श्चन्द्रस्तामनुचन्द्रमप्यनु पुनर्गन्धर्वमाला श्रिता ॥ ८ ॥
नभ्यं ज्योतिरमुष्य मूलमुदितं शीर्षं तदस्येष्यते
तत्र ज्योतिरिदं वितिष्ठित इमं पादं प्रतीयात् प्रभोः ।
अश्वत्थानुकृतिः स तेन भगवानश्वत्थ इत्युच्यते
ऊर्ध्वं मूलममुष्य सन्ति परितः शाखाप्रशाखाश्चिताः ॥ ९ ॥

२—ईश्वरविग्रहे प्रजापतिशब्दः

ईश्वरशब्दो लोकप्रतिपत्त्यैवेह विग्रहे कथितः ।
वेदे तु विग्रहोऽप्ययमात्मवदेव प्रजापतिः कथितः ॥ १ ॥
प्राणः प्रजापतिः स्यादित्यात्मानमिह लक्षयति ।
एवं प्राणि च सर्वं प्रजापतिर्विग्रहापेक्षः ॥ २ ॥
नाभौ कश्चन विग्रहोऽथ परितस्तस्यापरे विग्रहा
नभ्येनैव धृताश्चरन्ति परितः सर्वेऽपि तेऽस्य प्रजाः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नभ्यस्तु प्रथितः प्रजापतिरिति द्वेधाऽनिरुक्तस्तथा
सर्वो विग्रहसंचयैर्विरहितः शुद्धो विशिष्टोऽपि सः ॥ ३ ॥

३—त्रैलोक्यत्रयात्मकसप्तलोक्या ईश्वरशरीरैकशाखात्वम्

त्रैलोक्यमुत्तमं यद् ब्राह्मं तद्वाङ्मयं परं व्योम ।
हृदयं तदीश्वरस्य ब्रह्मा तत्राक्षरो हृद्यः ॥ १ ॥
ब्राह्मेऽस्मिंस्त्रैलोक्ये वाग्वेदः प्रथमजं ब्रह्म ।
परिपूर्णमस्ति तस्माद् वेदोऽन्यत्रापि संक्रमते ॥ २ ॥
वाग्ब्रह्म च सर्वज्ञस्तद्बृहदस्तीत्यस्य पतिर्ब्रह्मा ।
स बृहस्पतिरुदितस्तं परिचरन्तीन्द्रस्तथोपेन्द्रः ॥ ३ ॥
इन्द्रो विद्युन्नाम्नोपेन्द्रो नारायणो ब्रह्मा ।
परमाकाशे तिष्ठति तस्माद् ब्रह्मा स परमेष्ठी ॥ ४ ॥
सर्वेषां यज्ञानां प्रथमोऽयं सर्वहुद् यज्ञः ।
आविरभूत् परमेष्ठिनि स प्रथमं ब्रह्म विष्णुः सः ॥ ५ ॥
मध्यं तु पारमेष्ठ्यं त्रैलोक्यं चाम्मयं समुद्रः सः ।
तदपीश्वरस्य हृदयं विष्णुस्तत्राक्षरो हृद्यः ॥ ६ ॥
परमेष्ठी यो विष्णुस्तत्परिवारोऽयमस्ति सूर्य्यो नः ।
तस्मादिन्द्रं त्यक्त्वा परमेष्ठिनमत्र वक्ष्यामि ॥ ७ ॥
वेदाः सत्यं सत्यं गर्भे कृत्वाऽऽदितोऽभवन्नापः ।
आपः प्रथमा सृष्टिः सर्वान्या सृष्टिरद्भ्य एवाभूत् ॥ ८ ॥
मनसो वाचः प्राणस्याप्युपयोगो मिथो वेदः ।
प्राग्जोऽपि सा न सृष्टिः प्रागुपमर्द्धाद्धि पूर्वजा सृष्टिः ॥ ९ ॥
स्थानावरोधिका स्यात् सृष्टिः स्थानावरोधिका ह्यापः ।
वेदस्तु नावरुन्धे स्थानं तस्मान्न सा सृष्टिः ॥ १० ॥
अक्षरकृताऽव्यये या क्षरविकृतिः पुरुषजास्ति सा सृष्टिः ।
वेदाअपौरुषेया अव्ययरूपा न सा सृष्टिः ॥ ११ ॥
मर्त्यामर्त्यविभेदाद् द्विविधा वाग् मर्त्यवाग्गर्भे ।
यजुरमृता वागन्नात् सोऽग्निः संसृज्य रूपमभवदपाम् ॥ १२ ॥
इत्थमिदं त्रैलोक्यं मध्यमभिह मुख्यतोस्ति परमेष्ठी ।
तत् पारमेष्ठ्यमेतद् वारुणमाप्यं च सामुद्रम् ॥ १३ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आपः किंस्विद्गर्भं प्रथमं दधिर इति धीमतां प्रश्ने ।
अग्निं गर्भं प्रथमं दधुरेता इति विशेषविद आहुः ॥ १४ ॥
योऽपां गर्भगतोऽग्निर्वरुणो नामैष कथ्यते सोऽन्नात् ।
अप्स्वायतने तिष्ठन् स्वाहुतमश्नाति सोग्निरिति यज्ञः ॥ १५ ॥
यज्ञानामयमाद्यो यज्ञो विष्णुः परः स्वयंभूः सः ।
यज्ञात् सर्वहुतोऽस्माद् वेदा देवाश्च जज्ञिरे सर्वे ॥ १६ ॥
यद्यपि देवेभ्यः प्राग् वेदास्ते प्रथमजं हि तद् ब्रह्म ।
अन्ये तथापि वेदाः प्रत्यर्थागता इतः प्रवर्तन्ते ॥ १७ ॥
वरुणोऽयं द्विविधोऽभूत् वृतोऽद्भिरन्यः समुद्रमुक्तोऽन्यः ।
भृगुरङ्गिराश्च ताभ्यां क्रमादुदैतौ च वैश्वदेव्यौ तौ ॥ १८ ॥
आपो वायुः सोमश्चेत्येते जज्ञिरे त्रयो भृगवः ।
स्नेहप्रवणं तदिदं संकोचकं वैश्वदेव्यं स्यात् ॥ १९ ॥
अग्निर्यम आदित्यश्चेत्येते जज्ञिरे त्रयोऽङ्गिरसः ।
तेजः प्रवणं तदिदं विश्वारणवैश्वदेव्यं स्यात् ॥ २० ॥
अम्मय इह परमेष्ठी तमनुक्राम्यन्ति सर्वतः क्रमतः ।
भृगुसोमाङ्गिरसो यं सूर्य्यश्चेत्येवमन्ये स्युः ॥ २१ ॥
वायुश्च मातरिश्वा पवनो वात एष चाथर्वा ।
वायुभिरेभिः पञ्चभिरेष भृगुः कृतशरीरोऽस्ति ॥ २२ ॥
सूर्य्यस्य त्रैलोक्ये ममास्ति पृथ्वी ततः परित्यज्य ।
भृगुसोमांगिरसस्तानेनं सूर्य्यं प्रवक्ष्यामि ॥ २३ ॥
ऐन्द्रमिदं त्रैलोक्यं हिरण्मयं रोदसी नाम ।
तदपीश्वरस्य हृदयं तत्रेन्द्रोऽस्त्यक्षरो हृद्यः ॥ २४ ॥
सूर्य्यश्चेन्द्रस्त्रिविधो ज्योतिर्गौरायुरिति भेदात् ।
ज्योतींष्यादित्या अयमात्मायुर्गाव इह हि रसाः ॥ २५ ॥
सूर्य्यस्य सप्तरूपा भवन्ति परिचारका निजे लोके ।
प्राक्पारिपार्श्वकास्ताननु तामसकीलका अथान्वेतान् ॥ २६ ॥
छायाग्रहवत् पिण्डग्रहा अथो देवसेनाश्च ।
केतव एषामूर्ध्वे गंगामण्डलमिति स्तुताः सप्त ॥ २७ ॥
माठरपिंगलदण्डा इति त्रयः पारिपार्श्वका उक्ताः ।
तामसकीलकसंज्ञा राहव आवृण्वते तमो दधते ॥ २८ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौम्योऽथ भार्गवोऽथांगिरसोऽथ वैद्युतोऽथान्ये ।
आदित्यांगिरसोऽथ च याम्यांगिरसस्ततोऽप्यन्ये ॥ २९ ॥
पिण्डा अमी अमीषां दक्षिणपृष्ठेऽवलसिता छाया ।
चातुर्थकपञ्चमयोर्मध्येऽष्टशतं तु देवसेनाः स्युः ॥ ३० ॥
ऊर्ध्वाः सहस्रकेतव उदयन्ते विप्रकृष्टकालेन ।
परमा च देवसेना परिचरतीन्द्रं तमन्ततो व्योम्नि ॥ ३१ ॥
आग्नेयांगिरसोऽसौ प्रचरति यस्तत्र सूर्य्यसंस्थायाम् ।
सैवेयं नः पृथिवी यत्र वसामो वयं सर्वे ॥ ३२ ॥
परिचरति च तामन्यश्चन्द्रोऽयं तं च गन्धर्वाः ।
अज्योतिष्काः क्षुद्रक्षुद्राः पिण्डास्तु सप्तविंशतिधा ॥ ३३ ॥
एतावतीश्वरांगस्यैका शाखा प्रदर्शिता तद्वत् ।
मन्येऽन्या अपि शाखाः परः सहस्रा उपेताः स्युः ॥ ३४ ॥
अस्मत्पृथिवीयुक्ता या शाखा तां पुनःपुनर्द्रष्टुम् ।
प्रयतामहे पुनः पुनरेतामेवानुवक्ष्यामः ॥ ३५ ॥

४—ईश्वरशरीरम्

दृष्टादृष्टाः सर्वास्ताराः सन्तीश्वरस्य चैकस्य ।
अस्थीनीवांगानि प्राणस्याधारभूतानि ॥ १ ॥
इत्थमनन्तैस्तारापिण्डैः प्राणैस्तदुत्थितैश्च कृतम् ।
शालग्रामशिलावद्वर्तुलवृत्तं तदैश्वरं देहम् ॥ २ ॥
सर्वेष्वस्थिषु रचनाकीटाः सृमरा यथा देहे ।
एवं तारापिण्डेष्वखिलेष्वपि जीवविग्रहाः सन्ति ॥ ३ ॥
सृमराणां मम देहे स्थितिगतिवृत्तीर्वयं तु नो विद्मः ।
तेऽपि च विदन्ति नास्मान् जीवस्यार्धेन्द्रताऽत्र हेतुः स्यात् ॥ ४ ॥
ईश्वरदेहे त्वस्मिन् भूपिण्डे नः स ता वेत्ति ।
स्थितिगतिवृत्तीरखिलाः स्वांगवदेवेश्वरः पूर्णः ॥ ५ ॥

५—पिण्डानां चतुर्जातिकत्वम्

पिण्डाः सन्त्यखिलाश्चतुर्विधकुलाः स्वज्योतिषोऽज्योतिषो
रूपज्योतिष एव केचन परज्योतिर्मयास्तेऽखिलाः ।
एकस्यैव हि कस्यचिद् भगवतो विश्वेशितुर्विग्रहे
साङ्गोपाङ्गतया स्थिताः स भगवानेको महानीश्वरः ॥ १ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्यौः सूर्य्य उक्तः स तथैकविंशस्तोमावधिर्द्यौर्भवतीति तस्याः ।
या भक्तयस्तिस्र इमा दिवः स्युस्तिस्रस्तथा चन्द्रमसि प्रविद्यात् ॥ १४ ॥
स्वज्योतिः स्वत एव भाति किरणैः सूर्य्यं तमाचक्षते
योऽर्द्धादंशुचयांस्तनोति स परज्योतिः स चन्द्रो मतः ।
रूपज्योतिषि दृश्यतैव किरणैर्हीनः स पृथ्व्युच्यते
निर्ज्योतिष्यपि राहुशब्द उदितः सर्वेऽप्यनन्ता इमे ॥ २ ॥
विशेषानभिधाने तु सूर्य्यचन्द्रादिभिः पदैः ।
प्रसिद्धा एव पिण्डाः स्युर्गृहीता न परेऽखिलाः ॥ ३ ॥
यः कश्च पिण्डः क्वचिदस्ति भाति ब्रह्मास्ति तस्य प्रभवश्चतुष्पात् ।
* हृद्यस्य हृद्योऽथ विराट् तु मूर्तिर्विश्वस्तृतीयोऽथ परोऽस्त्यथर्वा ॥ ४ ॥
यज्ञो द्विधा पिण्डविधो विराट् च च्छायाविधोऽग्निप्रचयश्च विश्वः ।
हृद्यस्य यज्ञो महिमास्त्यथर्वा यज्ञस्य तद्वन्महिमेति विद्यात् ॥ ५ ॥
छायाविधोऽन्यो यदि कश्च पिण्डश्छायावतः स्यान्महिमा स चापि ।
पृथ्वी दिवः स्यान्महिमा त्रिलोकी पूर्वं त्रिलोक्यां महिमा निविष्टा ॥ ६ ॥
सर्वत्रिलोक्यो महिमास्त्यलोकस्याजस्य शीर्ष्णः पुरुषोत्तमस्य ।
सन्ति त्रिलोक्यो बहवः समन्तात् तिस्रस्तु तासामिह दर्शयामः ॥ ७ ॥
त्रयस्तु लोकास्त्रिवृतो ध्रियन्ते पृथ्व्येव पृथ्वी रविरेष तु द्यौः ।
चन्द्रोन्तरिक्ष्यस्तदिहान्तरिक्षं प्रत्येकमेतच्च पुनस्त्रिधा स्यात् ॥ ८ ॥
यः क्वापि पिण्डो द्विविधोऽस्ति सोऽग्निश्चित्यश्च यो यश्च चितेनिधेयः ।
भूतानि चित्योऽन्तरतस्तु योऽस्य प्राणः स एवास्य चितेनिधेयः ॥ ९ ॥
चित्याग्निना मूर्तिचयः स मूर्तेः ततोऽपि मूर्तिं भरतेऽवतीर्णः ।
प्राणास्त्रयस्त्रिंशदहर्गणः सन् वितायमानः परितश्चितः स्यात् ॥ १० ॥
त्रिकात् परस्तादिह पञ्चषट्काः स्तोमास्तथा सप्तदशोऽखिलार्थः ।
त्रयोऽग्नयस्तत्र परौ तु सोमौ स्तोमौ तदित्थं†प्रतिवस्तुरूपम् ॥ ११ ॥
आ चैकविंशात् प्रथते पृथिव्या अग्निस्ततोऽग्नेरियमस्ति वेदिः ।
वेदी पृथिव्यस्ति स एकविंशः स्तोमः पृथिव्याः कथितोऽन्तभागः ॥ १२ ॥
अग्निश्च वायुश्च रविश्च तत्र त्रयोऽग्नयस्तिस्र इमाः पृथिव्यः ।
तास्तैत्तिरीयप्रथमद्वितीयान्तर्द्वादशे(तै० सं० १।२।१२)ऽन्यत्रच दर्शिताः स्युः ॥ १३ ॥

---

* १ हृद्यः सत्याग्निः । २ मूर्तिः मर्त्याग्निः । ३ विश्वरूपम् अमृताग्निः । ४ अथर्वा आपः ।
† "स्तोमौ वषट्कारमिमं वदन्ति"—इति पाठान्तरम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"तिस्रो भूमीर्धारयंस्त्रीरुतद्यून् त्रीणि व्रता विदधे अंतरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महिवो महित्वं तदर्य्यमन् वरुण मित्र चारु" । १३।२।२७।८।
आद्या त्रिलोकी पृथिवी द्वितीयान्तरिक्षमन्त्या पुनरस्ति सा द्यौः ।
त्रयोपि लोकास्त्रिवृतस्तदित्थं तेभ्यो बहिर्धास्ति चतुर्थलोकः ॥ १५ ॥
आथर्वणास्तं तु चतुर्थलोकं सोमाद्यमापोमयमामनन्ति ।
लोकस्त्रिलोक्याः स यतोऽत्र गर्भेऽपामग्निराविर्भवतीति विद्यात् ॥ १६ ॥
यद् याज्ञवल्क्यो भगवांश्चतुर्थं लोकं तु संदिग्धमनुब्रवीति ।
तत्रास्य भावः प्रतिपत्तिदौःस्थ्येनाविस्तरामन्यवदेष दृष्टः ॥ १७ ॥
कौषीतकिर्गोपथवच्चतुर्थं लोकं स्फुटं मन्यत एवमन्ये ।
आपश्चतुर्थोऽस्ति हि देवलोको देवा इहाप्स्वप्यखिला निविष्टाः ॥ १८ ॥

इति प्रथमखण्डे प्रथमतरङ्गः ॥ १ ॥

परेऽन्यथाहुस्त्रिवृतं त्रिलोकीं तिस्रस्त्रिलोक्यो वपुषीश्वरस्य ।
ब्राह्मी त्रिलोकी परमाऽथमध्या सा वारुणी स्यादवमेयमैन्द्री ।

६—सप्तलोकान्तर्गतानां तिसृणां त्रिलोकीनां परस्परोतप्रोतत्वम् ।

कूटस्थं परितश्चरन्त्यनुचरास्तत्र त्रिलोकी पृथक्
कूटस्थः स्वरिहास्ति भूरनुचरेष्वेकः परेऽस्माद् भुवः ।
कूटस्थं भुवमन्तरा वियति येऽप्याप्ता रसास्ते भुव-
स्त्रैलोक्यानि बहूनि सन्ति हि परज्योतींष्यलोकात्मनि ॥ १ ॥
क्षत्रं द्यौरथ येऽनुगाः परिचरास्तेषां विवक्षावशा-
देकः स्यात् पृथिवी यदन्तरनयोः स्यादन्तरिक्षं तु तत् ।
तां पृथ्वीमनु ये चरन्ति पृथिवी क्षत्रं नु तेषामियं
त्रैलोक्यत्रयमन्तरेऽस्ति तदतः पृथ्वीपरज्योतिषोः ॥ २ ॥
बार्हस्पत्यसहस्रमण्डलमिहाकाशं विदुर्वाङ्मयं ।
वाग्ब्रह्माक्षरमस्ति मर्त्यममृतं चात्राव्यये संततम् ।
वेदा वागमृता यजुः पुनरिह द्वेधास्ति मर्त्यामृतं
मर्त्यं भूतकुलानि दैवतकुलान्यत्रामृतं भावयेत् ॥ ३ ॥
द्यौराद्यास्ति बृहस्पतिः स परमेष्ठ्यु र्वीन्द्रमन्तर्विदु-
स्त्रैलोक्यं महदुत्तमं तदनघा आकाशसंज्ञं विदुः ।
ब्राह्मो वारुणमैन्द्रमत्रनिहिते आकाशनामन्युभे
आकाशं परमा गतिस्तदुभयोस्त्रैलोक्ययोरस्ति तत् ॥ ४ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आकाशे परमे यदस्ति परमेष्ठ्याख्यं परं ब्रह्म तत्
तच्चापोऽजनयद् भृगुं च वरुणं प्रोक्तं यथा गोपथे ।
छायामण्डलमस्य तेन वरुणाक्रान्तं समुद्रं विदु-
स्तत्रापोऽम्भ इति प्रसिद्धमनिलाकारं त्रिलोक्यास्तृतम् ॥ ५ ॥
मध्या द्यौः परमेष्ठ्यथैष तपनः पृथ्व्यन्तरिक्षं भृगु-
विद्यद्ब्रह्मपतिश्च तैः पुनरिदं मध्यं समुद्राभिधम् ।
त्रैलोक्यं खलु वारुणं जलमयं तत्रैन्द्रमन्यत् पुन-
र्यत्त्रैलोक्यमुदेति तस्य चरमस्यायं समुद्रो गतिः ॥ ६ ॥
तस्मिन्नस्ति समुद्र एष भगवानिन्द्रस्तपन्मण्डलो
ज्योतिस्तस्य हिरण्मयं घृणिकुलाच्छन्नं च देवावृतम् ।
अद्भ्योऽग्निः समभूत् प्रकाश उदभूत् सोमात् समुद्रे स्थितः
प्रज्ञा प्राणमयः क्षिपत्ययमपः शश्वत् स सोमाशनः ॥ ७ ॥
सूर्य्यो द्यौः पृथिवीयमेव पृथिवी तत्रान्तरिक्षं बुधो
वेनश्चन्द्रमसाऽनिलेन च समं त्रैलोक्यमैन्द्रं त्विदम् ।
तस्याख्यास्ति च रोदसीति चरमे तस्मिन् द्वयोरन्ययोः
सन्त्येवांतरिता रसा अथ परज्योतिस्तदालम्बनम् ॥ ८ ॥
द्यौराकाशोऽथान्तरिक्षं समुद्रः पृथ्वीतद्वद्रोदसी सा त्रिलोकी ।
तस्मादाहुस्त्वैतरे वादिविज्ञा लोकेष्वस्ति त्रिष्वमीषु त्रिवृत्ता ॥ ९ ॥

७—ईश्वरशरीरस्याश्वत्थानुरूपत्वम्

पूर्वस्मिन् परमस्ति तेन च परज्योतिष्यशेषा अमी
ओतप्रोततया स्थिता इति परज्योतिस्तदाहेश्वरम् ।
एषोऽश्वत्थ उदीरितः स भगवान् विश्वेश्वरो दृश्यता-
मूर्ध्वं मूलममुष्य तस्य परितः शाखाप्रशाखास्ततः ॥ १ ॥

---

१ उत्तमं त्रैलोक्यम् = ब्राह्ममाकाशं वाग्लोकः । ब्रह्मा तत्राक्षरः । वाक्क्षरव्यष्टिः । आकाशः क्षरसमष्टिः ।	१ ब्रह्मा आकाशतनुः
२ मध्यमं त्रैलोक्यम् = वारुणं समुद्रोऽपांलोकः । विष्णुस्तत्राक्षरः । आपः क्षरव्यष्टिः । समुद्रः क्षरसमष्टिः ।	२ विष्णुः वायुतनुः ३ इन्द्रः तेजस्तनुः ४ अग्निः आपस्तनुः
३ अवमं त्रैलोक्यम् ॥ ऐन्द्रं हिरण्मयमग्निलोकः । इन्द्रस्तत्राक्षरः । अग्निः क्षरव्यष्टिः । हिरण्यं समष्टिः ।	५ सोमः पृथ्वीतनुः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते—
तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ २ ॥
एतद्वै तद् यदिदं किञ्च जगत् सर्वम् ।
प्राण एजति निःसृतं महद्भयं वज्रमुद्यतम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति—" (कठश्रुतिः) ॥ ३ ॥
कूटस्थात् परितो भवन्ति बहवः शाखाः प्रशाखास्ततो
यास्तासां विदिताः कथंचन पुराविद्भिः स्तुतास्ता इमाः ।
यस्यां नः पृथिवीयमस्ति किल सा शाखेयमत्रोदिता
मन्येऽन्या अपि संभवन्ति बहवस्तत्र त्रिलोक्योऽश्रुताः ॥ ४ ॥
अस्माकं क्षितिरस्ति यत्र निचिता शाखास्ति सा पञ्चमी
क्षत्रैः पर्ववती हि वाक्पतिरपां भर्ताऽथ भासां निधिः ।
पृथ्वी चन्द्र इति क्रमाल्लघुपरक्षत्राणि पञ्चाक्षरैः
ब्रह्माद्यैः सह पञ्चभूतनिचयैरात्मानमातन्वते ॥ ५ ॥
"यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्माऽमृतोऽमृतम्" ॥ ६ ॥
भूः पृथ्वी भुव इन्दुवेनसविधाः स्वः सूर्य्य ऊर्ध्वे मह-
र्विद्युद्वायुमुखा जनस्तु परमेष्ठीन्द्रस्तपोऽस्मात्परम् ।
सत्यं योऽस्ति बृहस्पतिस्त उदिताः सप्तैव लोका इमे-
ऽथालोकस्तु परोरजा वपुरदोऽष्टाङ्गं निबोधेश्वरम् ॥ ७ ॥
मध्यं यद्युभयं तदस्य हि शिरो ब्राह्मं मुखं वारुणं
श्वासोऽथैन्द्रमिदं हृदस्य जठरं मन्येन्तरिक्षं तथा ।
पृथ्वीं नाभिगतां वदामि तदयं पूर्वोऽर्द्ध ऐश्यां तनौ
पृथ्वीतः पुनरन्यतो दिशि परोऽर्द्धः पादपर्य्यन्तकः ॥ ८ ॥

इति प्रथमखण्डे द्वितीयस्तरङ्गः ॥

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमस्तरङ्गः

स्थूलो विग्रह ऐश्वरोऽयमुदितस्तत्रास्थिपिण्डादिवत्
पिण्डाः सर्वविधा इमे निगदिताः पृथ्वीन्दुसूर्य्यादिकाः ।
व्याप्नोत्यत्र परोरजा अपघने कृत्स्ने समं पीवरे
सोऽयं सूक्ष्मशरीरलक्षित इहास्त्यात्मा त्रिलोकातिगः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा न आत्मा रुधिरास्थिमांसत्वगाद्यधिष्ठाय तनोति यज्ञम् ।
स्थूलाखिलोकीः स तथेश्वरात्माऽप्यध्यास्य विश्वं वितनोति यज्ञम् ॥

८—ईश्वरात्मसंबन्धिनः पञ्चाक्षराः

त्रिपूरुषो नाम यथा न आत्मा यथाऽक्षराः पञ्च च देवताः स्युः ।
सूक्ष्मेण देहेन तथेश्वरात्मा पञ्चाक्षरस्त्रैपुरुषोऽविशेषात् ॥ १ ॥
यथा मनुष्यस्य शरीरकोशे शारीरकः कारणमात्र आत्मा ।
शारीरभावाज्जनयन् शरीरे स्थितस्तथा विश्वभृदव्ययोऽस्मिन् ॥ २ ॥
कूटस्थाव्ययधातवः परिततता यावत्प्रदेशे क्वचित्
तत्रैवाक्षरधातवोऽपि निहिता ब्रह्मादयः पञ्च ये ।
तत्रैव क्षरमूर्तयोऽपि परितः क्राम्यन्ति नानाविधाः
पूर्वैः पूर्वतरै रसैः परपरास्तत्राचिताः स्युर्घनाः ॥ ३ ॥
यद्यप्यक्षरपञ्चकं स्वत इदं नो भिद्यते किंत्विह
प्राणाः स्युर्मनसेच्छया बहुविधास्तैरक्षरा भिन्नवत् ।
तस्मादव्यययोगतो बहुविधा सृष्टा अमीषां रसा-
स्तान् ब्रूमोऽक्षरसंज्ञयैव बहुभिस्तैर्योगतः स्युः क्षराः ॥ ४ ॥
वाक्प्राणा अत एव सन्ति मनसा भिन्नेन भिन्नाः कृताः
रूपं कामयते यथा किल मनः प्राणस्तथा तप्यते ।
श्राम्यन्ती पुनरत्र वाग् विकुरुते प्राणक्रमाद् भिन्नवत्
वाक्प्राणस्थितिभेदतश्च बहुधा दृष्टा इमेऽर्थाः पृथक् ॥ ५ ॥
यावत् कामयते प्रतप्यत उत श्राम्यत्ययं पूरुष-
स्तावद्व्यव्यय एष यर्हि तु मनो वाक् प्राण एतत् त्रयम् ।
अन्योन्येन समन्वितं भवति हि व्यामुग्धरूपं तदा
जज्ञे सोऽक्षर एष वै बहुविधः सृष्टो मनोभेदतः ॥ ६ ॥
प्राणमनःसचिवा वाग् ज्ञानोदयहेतुरव्ययो भवति ।
सैवाक्षरः क्रियोदयहेतुर्मनसो निगीर्णत्वे ॥ ७ ॥
लोको योस्ति बृहस्पतिः स भगवान् ब्रह्माक्षरः पूर्वजो
यश्चान्यः परमेष्ठ्ययं स भगवान् विष्णुस्तथेन्द्रो रविः ।
पृथ्वीपिण्डगतोऽक्षरोऽग्निरुदितः सोमस्त्वयं चन्द्रमा
एभिः पञ्चभिरक्षरैः परिवृतो ध्येयश्चिदात्माव्ययः ॥ ८ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

* पञ्चाक्षराणां जननात् पञ्च पञ्चजना इमे।
पञ्चाकाशादिभूतानि क्षराण्येष्वेव शेरते॥ ९॥
"यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्"॥ १०॥
उत्पादितगृहीतस्य त्यागः क्षरणमुच्यते।
क्षरणात् क्षरमित्याहुरक्षरादक्षरत् क्षरम्॥ ११॥
क्षरं चतुर्विधं किट्टं व्यूहस्तात्कालिकं मलम्।
भूतानि देहास्तन्मात्राः कामातिशयवासनाः॥ १२॥
पञ्चभूतानि किट्टानि संभवन्त्यक्षरात् स्वयम्।
क्षराक्षराव्ययव्यूहो विभागात् क्षरति ध्रुवम्॥ १३॥
शब्दादयोऽक्षरद्वैधयोगजाः क्षणिकाः क्षराः।
इन्द्रियस्थाननित्यास्ते न ते सन्ति बहिः क्वचित्॥ १४॥
कामो मनोमयोऽपूर्वो वासनात्मनि कर्म्मजा।
संस्कारजा विशेषास्तु सर्वत्रातिशयाः क्षराः॥ १५॥
आकाशः पवनोऽग्निरम्बुपृथिवीत्येते क्षराः पूरुषा
ब्रह्मादीन् क्रमतोऽक्षरांस्तदुदिता आवृण्वतो देहवत्।
ब्रह्माकाशमयोऽधिविष्णु पवनः सूर्य्योऽग्निदेहो मृदा
पृथ्वीयं प्रथिताऽम्बुना तु सयुजा सोमेन चन्द्रः कृतः॥ १६॥
ब्रह्मा केवलवेदकल्पिततनुर्व्योमैव वेदं विदुः
विष्णुर्य्यः परमेष्ठ्यभूत् स पवनेनाप्यस्ति वेदेन च।
तौ तेजश्च रवौ त्रयेण सहिता पृथ्व्यम्बु चाग्नेर्वपुः
चन्द्रस्यास्ति तनौ त्रयेण सहितः सोमश्च पृथ्व्यम्बु च॥ १७॥
चन्द्रमा दृश्यते यावान् शुक्लः सूर्य्यः स दृश्यते।
योंऽशो न दृश्यतेऽपूर्णे पूर्णे कृष्णास्य सा क्षितिः॥ १८॥

९—ईश्वरसम्बन्धे क्षरात्मानः

विरलाः प्रचिताः पुष्टा मात्राश्चेति चतुर्विधाः।
क्षराः स्युस्तत्र विरलाः सर्वेषां प्राणसंज्ञकाः॥ १॥

---

* आकाशादीनां पञ्चानां, वेदादीनां पञ्चानां, शब्दादीनां पञ्चानां वा जनकाः पञ्चाक्षरा ब्रह्मविष्णिवन्द्राग्निसोमा आकाशादीनि क्षरभूतानि च यत्र परज्योतिषि प्रतितिष्ठन्ति स एष परोरजा आत्मा। तदमृतं ब्रह्म जानन्नमृतो भवति॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रचिता व्योम वायुश्च तेजश्चापश्च मृत्तिकाः ।
पुष्टास्तु वेदोऽम्भो ज्योतिर्मरो देवयजिस्तथा ॥ २ ॥
शब्दः स्पर्शो रूपरसौ गन्धो मात्रा इमा मताः ।
श्रोत्रत्वगक्षिरसनाघ्राणस्थप्रज्ञयान्विताः ॥ ३ ॥
ज्ञानान्तर्गा मता मात्रा आत्मभोगं प्रकुर्वते ।
मात्राभिः प्रज्ञया द्वारा विज्ञानात्मोपरज्यते ॥ ४ ॥
स्पर्शः संगकरः स्नेहः स्नेहोऽपामस्ति लक्षणम् ।
स्नेहादेवान्यदन्यत्र कार्त्स्न्येनैक्याय युज्यते ॥ ५ ॥
आकाशादींश्च वेदादीन् शब्दादीनक्षराः क्षरान् ।
त्यजन्ति किन्तु न प्राणान् क्षरान् जहति कर्हिचित् ॥ ६ ॥
क्षरः प्राणविधो नित्यमात्मन्यत्रानुषज्जते ।
प्रजापतौ त्रिपुरुषे क्षरसृष्टिस्तु हेतुतः ॥ ७ ॥

इति द्वितीयखण्डे प्रथमस्तरङ्गः

परज्योतिः परं ब्रह्म परं ब्रह्म बृहस्पतिः ।
परमेष्ठीन्द्राग्निसोमाः प्राज्यापत्याः श्रुतौ श्रुताः ॥ १ ॥
परं तु सच्चिदानन्दं प्रतिष्ठा त्वपरं त्रयी ।
परमेष्ठ्यप इन्द्रो वागन्नादोऽग्निपरोऽशिति ॥ २ ॥

१०—ईश्वरस्य क्षेत्रज्ञ आत्मा पञ्चकोशोऽव्ययो नाम

यदिदं परमज्योतिस्त्रिपुरुषमात्मानमेतमाचष्टे ।
अव्यय आदाविच्छन् प्रतपन् श्राम्यन्निदं तस्थौ ॥ १ ॥
मनसा कामयमानः प्राणेन तपन् व्यधात् स वाग्विकृतिम् ।
तदयं प्रजापतिः प्राक् स्वयमुदभूदीश्वरो नाम ॥ २ ॥
अत्र प्राणा बहवः सचितास्तेषां तु मध्य इन्द्रोऽभूत् ।
इन्द्रेणेद्धाः प्राणाः सप्तासृज्यन्त संहिता हि मिथः ॥ ३ ॥
सप्ताप्येते सृष्टाः प्राणा मर्त्या इहामृते श्लिष्टाः ।
चत्वारस्तत्रात्मा द्वौ तु सहायौ प्रतिष्ठैकः ॥ ४ ॥

		बृहस्पतिर्ब्रह्मा	परमेष्ठी विष्णुः	सूर्य्यः इन्द्रः	पृथ्वी अग्निः	चन्द्रः सोमः
१ विरजाः	=	प्राणः—	प्राणः—	प्राणः—	प्राणः—	प्राणः
२ प्रचिताः	=	आकाशः—	वायुः—	तेजः—	आपः—	पृथ्वी
३ पुष्टाः	=	वेदः प्रतिष्ठा—	आपः स्नेहः—	ज्योतिर्मर—	मरोऽन्नादश्चित्यः—	देवजनमन्न
४ मात्राः	=	शब्दः—	स्पर्शः—	रूपम्—	रसः—	गन्धः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मर्त्यो देहः सोऽर्द्धः प्रजापतिश्चित्य एषोऽग्निः ।
अमृतश्चिते निधेयो रसोऽग्निरर्द्धः प्रजापतिः सोऽस्ति ॥ ५ ॥
अर्द्धेन सप्तपुरुषः परेण चार्द्धेन सप्तपुरुषो यः ।
अर्द्धेन विग्रहः पुनरर्द्धेनामृतरसेन तस्य शिरः ॥ ६ ॥
एवंविधः प्रजापतिराद्यः कोशीश्वरस्तस्य ।
आत्मा वाक्प्राणमनोविज्ञानानन्दकोशमयः ॥ ७ ॥
विग्रहवानयमात्मा यथास्ति जीवस्तथेश्वरोऽप्येषः ।
विग्रहवानयमात्मा किन्त्वीश्वरविग्रहोऽखिला जीवाः ॥ ८ ॥
सर्वाधारः सर्वाध्यक्षः स हि सच्चिदानन्दः ।
तत एवं स्रवतेऽर्वागानन्दाश्चेतना सत्ता ॥ ९ ॥

११—ईश्वरस्य महानात्माऽयमक्षरो नाम

पुरुषस्याव्ययस्यास्य पञ्चकोशावतारिणः ।
प्रधानजो महानात्मा ततः पञ्चक्षरोदयः ॥
"भूतं भविष्यत् प्रस्तौमि महद्ब्रह्मैकमक्षरम् । बहु ब्रह्मैकमक्षरम् ।"
एतद्ध्ये वाक्षरं सर्वे देवाः सर्वाणि भूतान्यभिसंपद्यन्ते । इति हि वाजिश्रुतिर्भवति ।
(शत० १०।२)

१२—ब्रह्मा वेदत्रयी वाक्

इच्छन् स तपन् श्राम्यन् ब्रह्मैव प्रथममीश्वरोऽजनयत् ।
ऋक्सामे यजुरिति च ब्रह्म प्रतिपद्यते त्रयी विद्या ॥ १ ॥
ब्रह्म प्रथमजमेतद्वार्लोको यो बृहस्पतिः कथितः ।
वेदोऽथर्वचतुर्थः सोऽस्तीत्याथर्वणा आहुः ॥ २ ॥
ऋक्सामे अमृते स्तो नाभिसिते ते तयोर्न गतिरस्ति ।
मण्डलमृगस्ति साम त्वर्चिर्यजुरस्ति पुरुषोऽग्निः ॥ ३ ॥
उत्तरोत्तरह्रस्वाभिर्नभ्यमूर्त्युत्थमूर्तिभिः ।
उत्तरोत्तरतो वृद्धं जायते परिमण्डलम् * ॥ ४ ॥
ताः सर्वा मूर्तयः स्तब्धा ऋच उक्था मदाह्वयाः ।
अर्चनं मूर्च्छनं मूर्तिसंपत्त्यै रसविग्रहः † ॥ ५ ॥
यः खलु सप्तप्राणः परोरजाः सच्चिदानन्दः ।

---

* परिमण्डलं निस्तलवृत्तं (वर्तुलवृत्तं) (गुम्मज) ॥
† रसविग्रहः । रसानां विविधेन रूपेण संग्रहणम् । परिमर्दनम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वागमृताऽतः सृष्टा सा विद्या ब्रह्म वेदश्च ॥ ६ ॥
त्रिविधो वेदः सृष्टश्छन्दोवेदो वितानवेदश्च ।
रसवेदः क्रमतोऽमी ऋक्सामे यजुरिति प्रथिताः ॥ ७ ॥
समाभिर्मूर्तिभिः क्लृप्तं पृष्ठं साम महाव्रतम् ।
एकपृष्ठस्य मूर्तीनां साम्यात् पृष्ठस्य सामता ॥ ७ ॥
पूर्वपृष्ठांशसाम्येन वितानस्यापि सामता ।
यत्रार्चनावसानं तत् सामान्त्यं पृष्ठमण्डलम् ॥ ८ ॥
मूर्तिर्यद्रसतस्तद् यजुरिति मर्त्यामृतं भाव्यम् ।
यज्जूर्यजुरित्युक्तं स्थिरमाकाशं चरोऽत्र यो वायुः ॥ ९ ॥
अमृतं तत्राकाशं श्वानामैन्द्रोऽत्र वायवो देवाः ।
मर्त्यं वागाकाशं तेजोऽबन्नोपपादको वायुः ॥ १० ॥
अमृते वायौ तावद् देवाः स्युः संगताः सर्वे ।
तेजोऽबन्नं मर्त्ये वायौ परमेपि लोकः सः ॥ ११ ॥
तस्य च तस्य च वायोर्बीजायतनं यदाकाशम् ।
स ब्रह्म वेदवाचां व्योम्नः स त्वस्य वाग्लोकः ॥ १२ ॥

१३—ब्रह्मा प्रतिष्ठावाक्

विद्यात्र या प्रथमजं ब्रह्मैषास्यात्मनः प्रतिष्ठाऽभूत् ।
अत एवाहुर्ब्रह्म हि सर्वस्यास्य प्रतिष्ठास्ति ॥ १ ॥
भूतस्य षट् प्रतिष्ठाः सत्ता सत्यं तथाम्बुवाय्वग्निः ।
भूतं सत्ता प्रथमा तस्यामन्ये स्तराः क्रमतः ॥ २ ॥
भूतानि भौतिकानां भूतानामग्निरग्नेस्तु ।
वायुर्वायोरापः सत्यमपां तस्य सत्ता श्रीः ॥ ३ ॥
उच्छित्तिप्रतिषेधः सत्ता मनसि प्रवेशयोग्यत्वम् ।
सत्यं मनसश्चरतो विश्रामः परिणतौ हेतुः ॥ ४ ॥
कारणतः खलु कार्य्ये सत्ता प्रवहणनिमित्तमाप इमाः ।
स्वप्राणेऽन्यप्राणप्रतिनिग्रहणं धृतिः प्रतिष्ठान्या ॥ ५ ॥
असदिह बलं रसः सन् रसविभवोऽस्मिन् बले सत्ता ।
सत्तैव तु प्रतिष्ठा मुख्याऽन्या तदनुवृत्तिकरी ॥ ६ ॥
सत्ता सत्यप्रमुखा षडिहान्योन्याविनाभूताः ।
न विनोत्तरां हि पूर्वावलम्बिता भासते पूर्वा ॥ ७ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१४—ब्रह्मा अमृतमर्त्या वाक्

इन्द्रस्यास्ति पुरोधा बृहस्पतिर्यः सहैव सोऽपीन्द्रः ।
अमृता वागयमिन्द्रो वेदः सूर्य्यस्तु मर्त्या वाक् ॥ १ ॥
अयोगजा विशुद्धैकतत्त्वरूपाऽमृता मता ।
मर्त्याऽनेकद्रव्यसङ्गकृतरूपा क्षरात्मिका ॥ २ ॥
अमृता तु वाक् प्रतिष्ठा सत्तामुपबृंहयन्ती स्यात् ।
मर्त्यापि वाक् प्रतिष्ठा सत्ताऽन्यत्वे सुनिग्रहाद्विधृतिः ॥ ३ ॥
विद्युत्प्रमुखा ऊर्ध्वाः सर्वे ब्रह्माक्षरा अमृताः ।
सूर्य्यप्रमुखाः सृष्टा अर्वाक् सर्वेऽपि मृत्यवः कथिताः ॥ ४ ॥
यद्यपि सूर्य्यादर्वाक् सन्ति हि सर्वेऽपि मृत्यवः किन्तु ।
सूर्य्यः प्रथमो मृत्युस्तस्मात्सूर्य्यः श्रुतो मृत्युः ॥ ५ ॥
अमृता असङ्गकरणाः स्थानानवरोधिनोऽविकृताः ।
सङ्गप्रकृतिर्मिथुनाद्विकृतः स्थानावरोधको मृत्युः ॥ ६ ॥
अमृतः क्षरेण सचते न सज्जते किन्तु मृत्युना तेन ।
यो मृत्युरक्षरः स हि सृजति क्षरमत्र सज्जते मृत्यौ ॥ ७ ॥
मृत्यूपसृष्ट आत्मा शरीरमनु पाप्मना सचते ।
सूर्य्यादूर्ध्वं विद्युति न सज्जते मृत्युना मुक्तः ॥ ८ ॥

परमेष्ठी नारायणो विष्णुः । वाचोऽपां सृष्टिः ।

वेदप्रतिष्ठ आत्मा प्रतपन् लोकमनु सयजुः ।
ससृजेऽपो वाग्लोकाददृभ्यश्चतुरण्डमुद्भवत्यग्निः ॥ ९ ॥
वागापोऽग्निरिति त्रयमेकोऽर्थोऽवस्थया भिन्नः ।
वाचामपां तथाग्नेः क्रमतः सृष्टास्त्रिलोक्यस्ताः ॥ १० ॥
वाक्तु स्नेहोपजनादापोधाराश्च जायास्ताः ।
जातास्ताभिर्व्याप्तं विधृतं जनितं जगत् सर्वम् ॥ ११ ॥
यत्स्नेहात्परमेष्ठी व्याप्नोत्यत्र चान्यदात्मनि च ।
धारयात धारयित्वा जनयति बीजं हि स स्नेहः ॥ १२ ॥
स्नेहः स्पर्शः सङ्गो न विना सङ्गेन सृज्यते किञ्चित् ।
तस्मादद्भ्यः सर्वं सृष्टमसृष्टं ततः पूर्व्यम् ॥ १३ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदादापः सृष्टा वाचो ह्यापो बलोच्चयात्स्थूलाः ।
*वागस्पृष्टाऽमूर्ता मूर्तास्तु स्पर्शवत्य आप इमाः ॥ १४ ॥
आपस्त्रिविधा ज्ञेयाः सोमो वायुस्तथाम्भश्च ।
सोमाद्वायुर्वायोरम्भः स्थूलं क्रमाज् ज्ञेयम् ॥ १५ ॥
अम्भः सूर्य्यादूर्ध्वं सूर्य्ये विकृतं मरीचिनामाभूत् ।
मर इति भूमीपरिणतरूपं यत्स्यन्दि तत् तोयम् ॥ १६ ॥
अम्भो वायौ निभृतं वायुमयो वारुणो लोकः ।
नासीत् तदा प्रतिष्ठा पवतेऽम्भस्तत् ततो वायुः ॥ १७ ॥
वेदस्तावत् त्रिविधश्छन्दोवेदो वितानवेदश्च ।
रसवेदः क्रमतोऽमी ऋक्सामे यजुरिति प्रथिताः ॥ १८ ॥
ब्रह्म तु परमेष्ठीदं या आपो योऽस्त्यपां लोकः ।
परमाकाशे तिष्ठन्त्यापोऽथाप्सु प्रतिष्ठितं सर्वम् ॥ १९ ॥
परमेष्ठी त्वयमापोमयः स नारायणो विष्णुः ।
वरुणस्त्विह परमेष्ठी न विष्णुराथर्वणस्य मते ॥ २० ॥

१५—ऋतसत्यविवेकः

यद्यपि यदस्ति किञ्चित् तत्सर्वं सत्यमिति वाच्यम् ।
किन्त्वाप एव सत्यं धृत्वात्मनि सत्यमभवन् प्राक् ॥ १ ॥
कतिपयबलसंचयमनु सत्ताभिव्याप्तिकारणं सत्यम् ।
वेदाः सत्यं वेदानासाद्यैवास्ति बुद्धिमायाति ॥ २ ॥
आपः सत्यमगृह्णन्नापस्तत्प्रथमतः सत्यम् ।
वाजिश्रुतौ हि सप्तमतृतीयप्रथमस्य षष्ठके कथितम् ॥ ३ ॥ (७ । ३ । १ । ६)
आप्यमापोमयं ब्रह्म वेदत्रयं सत्यम् । तस्मात्सत्ताऽनुषज्जते एष सत्तासिद्धोऽर्थः ॥
यस्तु भातिसिद्धोऽर्थस्तत्र भातिसत्तयैवार्थे सत्ता न तु स्वकीया ॥
सत्ता सचते सत्यात् ब्रह्माप्यं सत्यमथ यत्र ।
भातेः सत्ता न स्वा तद्दतं ते ब्रह्मणी एते ॥ ४ ॥

---

*

१ वाक्	१ प्राणः	१ अम्भः
२ आपः	२ वायुः	२ मरीचिः
३ अग्निः	३ अम्भः	३ मरः
		४ तोयम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनसो वाचः प्राणस्यास्फुटभावो निगद्यते सत्ता ।
यावति सत्ता तावान् बलसंघः कथ्यतेऽर्थः सन् ॥ ५ ॥
नानाबलसंघातस्यैक्यं मायैक्यं मूलकं तत्र ।
इतरबलाभ्युच्चयतः सत्तासृष्टिर्हि जन्म कार्य्यस्य ॥ ६ ॥
सर्वत्रैषा सत्ता कारणतः कार्य्यगा भवति ।
किन्त्विह वेदः प्रथमं स चितः सत्तां प्रसञ्जयति ॥ ७ ॥
कारणवेदाद्वेदो भिन्नः कार्य्ये तदा सत्यम् ।
यत्र तु विनैव वेदं भातेः सत्ताऽनुवर्तते तदृतम् ॥ ८ ॥
कर्म्म गुणाश्च द्रव्यं सत्तासिद्धानि सत्तया भान्ति ।
सत्ता जातिविशेषा भावास्ते भातिसिद्धसत्ताकाः ॥ ९ ॥
सत्यं त्रयी तु विद्या त्रय्यां भूतानि सन्ति सर्वाणि ।
यज्ञेन सत्यतननादस्तीत्युत्पद्यते बुद्धिः ॥ १० ॥
माध्यन्दिनश्रुतौ तन्नवमचतुर्थद्वितीयस्य ।
अष्टादशे निरुक्तं दशमं चतुर्थस्य षष्ठाद्ये ॥ ११ ॥
दशमतृतीयप्रथमैकविंशके वेदतोऽस्ति मतिरुक्ता ।
अपि च चतुर्दशषष्ठस्याष्टमके नवमकेऽपि सत्योऽर्थः ॥ १२ ॥
यदपां लोकादूर्ध्वे लोके ब्रह्म प्रवृत्तमभूत् ।
तदृतं तत्रावापः पर्य्यायेणास्ति सत्यानाम् ॥ १३ ॥
आपः सत्यं जनयामासुरतोऽर्वाग् द्विधा दृष्टाः ।
सोम ऋतस्य प्रसवः सत्यस्य तु सूर्य्यजन्माग्निः ॥ १४ ॥
ऋतसत्ययोर्न तपसो लोकादुपचार उपरिष्टात् ।
अग्निः सत्यं सोऽपां गर्भादुदभून्निरग्नि यत् तदृतम् ॥ १५ ॥
स्त्रीणां गर्भे रेतः सिक्तमपत्यं प्रसूयते गर्भात् ।
एवमपामिह गर्भे वेदो वाक् सिच्यतेऽग्निरुद्भवति ॥ १६ ॥
पूर्णत्वप्रतिपत्तिः सत्येन ऋतेन शून्यताबुद्धिः ।
अहरिति सत्यं पूर्णं ज्योतिः शून्यं तमस्त्वृतं रात्रिः ॥ १७ ॥
आपेक्षिकमिदमुक्तं शून्यत्वं पूर्णता हि सर्वत्र ।
यन्मन्यते तु शून्यं तदपि शुने हितमनूक्तमिन्द्राय ॥ १८ ॥
आपो गर्भे दधिरे प्रथमं परमेष्ठिनोऽङ्गिरसम् ।
अयमङ्गिराः स पश्चाद्धिरण्यरेता बभूव सूर्य्योऽग्निः ॥ १९ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मा महानक्षर एष साव्ययस्त्रय्या सहापः प्रविवेश विद्यया ।
सत्यात् ततोऽद्भ्योऽजनि सर्वमस्ति यत्प्रारभ्यते जन्मवतामितो जनिः ॥ २० ॥
इत ऊर्ध्वमजन्मानो जन्मवत्वं शरीरिता ।
अष्टोपसर्गवत्वं हि शरीरित्वं प्रचक्ष्यते ॥ २१ ॥

१६—उपसर्गाष्टकं (पृथ्वीमहिमा)

ये चैते परमेष्ठिसूर्य्यपृथिवीचन्द्रादयो विग्रहाः
प्रत्येकस्य भवत्यमीषु महिमानामोपसर्गाष्टकम् ।
वाक्पृष्ठाण्डसहस्रपूरुषवषड्यज्ञा मनोतास्तथा
कांश्चित् तत्र निदर्शयामि बहुधा येषां स्तुतिः कर्म्मसु ॥ १ ॥
रोदस्यां वाग्गौरिवीताभिधाना सुब्रह्मण्या ब्रह्मणस्पत्यलोके ।
बार्हस्पत्ये वेकुरा वाक् पृथिव्यां गायत्री वाग् वारुणे वारुणी वाक् ॥ २ ॥
रोदस्यां च हिरण्मयः स पुरुषोऽस्त्यापोमयो वारुणे
बार्हस्पत्यतनौ पुराणपुरुषस्तं वेदमाचक्षते ।
आनन्दे त्वजविग्रहे स पुरुषो यज्ञः परस्मिन् परः
पूर्वोपि प्रथमे परत्र भुवि ते सर्वे यथावत् स्थिताः ॥ ३ ॥
चीयन्तेऽत्र च सप्तलोकवशतः सप्तैव तेषां रसाः
भूस्तावद्भुव उत्तरं क्रमवशात् स्वर्वा महर्वा जनः ।
पश्चात्तत्र तपश्च सत्यमिति ते भूगर्भतोऽन्यावृताः
तत्सप्तावरणं वदन्ति पृथिवीब्रह्माण्डमेषां रसैः ॥ ४ ॥
षट् स्तोमास्त्रिवृदादयोऽत्रनिचिताः सोऽयं वषट्कारको-
ऽर्वाचीनोऽग्निरिहैकविंशत इतः सोमः परस्तान्मतः ।
त्रेधाग्निर्हि सहस्रनामकमतो वेदत्रयीगुम्फनम्
सोमस्तत्र चतुर्थवेदविदित' पश्चाच्चतुष्टो मतः ॥ ५ ॥
प्राणाः स्तोमकृता वषट्कृतिविधौ त्रिंशत्त्रयश्चोदिताः
देवा यज्ञतनौ तथैव निचितास्त्रिंशत्त्रयश्चाग्निजाः ।
वस्वाद्या इति सोमपाग्निषु यतः सोमाहुतिस्तेन तं
ब्रह्माणं प्रवदन्ति यज्ञमपरो ब्रह्माऽस्त्यथर्वाभिधः ॥ ६ ॥
वाग्गौर्द्यौरिति षासहस्रवितताश्तिस्रो मनोता इमा-
स्तद्रथन्तरसामशाक्करपरं वैरूप्यमभ्यं मतम् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथ्वी सप्तसमुद्रतः परिवृता क्षारादिभिः सा हि वाग्
गौः कृष्णाः किरणा नभांसि पितरो देवासुरा द्यौरिति ॥ ७ ॥

१७—अष्टोपसर्गः (सूर्य्यमहिमा)

यथा पृथिव्यां स तथेह सूर्य्येऽप्ययं वषट्कार इति प्रविद्यात् ।
स्तोमाः षडस्मिंस्त्रिवृदादयोऽग्निः प्रागेकविंशादथ सोम ऊर्ध्वः ॥ ८ ॥
ज्योतिर्मयो गोमय एवमायुर्मयस्तदित्थं त्रिविधः पृथक् स्यात् ।
संवत्सरस्तस्य विभक्तयः स्युः पृथग्विधा एव पृथग्विधस्य ॥ ९ ॥
देवास्त्रयस्त्रिंशदवन्त्यमुष्मिन्ज्योतिर्मये तस्य विभक्तयः षट् ।
भवन्त्यहान्येव हि तानि विद्यात् क्रमात्त्रिवृत्पञ्चदशादिकानि ॥ १० ॥
त्र्यहादवस्तात् षडहः स्तुवन्ति यत्तत्र क्रमात्पञ्च भवन्ति राशयः ।
द्विधा विभागात्पुनरत्र मध्यमं स्तुवन्त्यहस्तेन च षड् विभक्तयः ॥ ११ ॥
त्रिवृत्ततः पञ्चदशोऽथ सप्तदशैकविंशौ त्रिणवस्ततः स्यात् ।
अन्त्यस्त्रयस्त्रिंश इति क्रमेण स्तोमा हि पृष्ठ्याः कथिताः षडेते ॥ १२ ॥
वेदास्त्रयोऽग्निः स चतुर्थवेदतः सोमो वषट्कार इदं चतुष्टयम् ।
वेदैस्त्रिभिस्तत्र सहस्रमुच्यते यावद्बृहत्पृष्ठमिदं सहस्रकम् ॥ १३ ॥
सूर्य्योऽग्निहोत्रं स च याविहोत्रं स सोमयागोऽस्ति हि सप्तसंस्थः ।
अहीनयज्ञोऽपि च सत्रयज्ञस्तथाग्निचित्तेन स यज्ञ एव ॥ १४ ॥
ज्योतिश्च गौरायुरमी रसा रवेर्यावद्धृताः साम तदुच्यते बृहत् ।
वैराजमेतस्य च रैवतं तथा प्रवर्धनं तत्त्रितयं बृहन्मतम् ॥ १५ ॥
ज्योतींषि देवा इह गोदुहस्ते गोपाश्च गावो रसभूमयः स्युः ।
प्रज्ञात्मकप्राण इहायुरिन्द्रः स निश्यपीहार्कहृदा ततः स्यात् ॥ १६ ॥
देवास्त्रयोऽग्नौ वसवोऽष्ट रुद्रास्त्वेकादशैते पवनेऽथ सूर्य्ये ।
ते द्वादशादित्यगणाः स्युरेवं द्वावश्विनौ चाथ परे विकाराः ॥ १७ ॥
देवास्त्रयस्त्रिंशदिमेऽथ गावोऽर्जुन्यः सहस्रप्रमिता इह स्युः ।
प्रत्येकमायुर्बृहतीसहस्रप्रमाणमायाति मनुष्यदेहे ॥ १८ ॥
गा अध्यतिष्ठंस्त्रिशतानि त्रिंशत्तिस्रश्च देवा वसवोऽग्निमुख्याः ।
गास्तावतीर्वायुपराश्च रुद्रा आदित्यवर्गा अपि तावतीस्ताः ॥ १९ ॥
एका तु तासामवशिष्यतेऽन्या सा कामधेनुः सकलार्थदात्री ।
संवत्सरात्मा प्रथमा तु सैका प्रजज्ञिरेऽन्यास्तत एव सर्वाः ॥ २० ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गौर्योनिरम्भांसि ततः प्रजज्ञिरे देवा मनुष्याः पितरोऽसुरा इति ।
दुहन्ति चत्वार इमे च गोरसान्पिबन्ति जीवन्ति च तै रसैरिमे ॥ २१ ॥
रसाश्चतुर्धाऽग्निरसान् षडाहुर्घृतादयः प्राणरसाः पृथक् स्युः ।
सूतादयो मूलरसा अनेके रङ्गादयो लोहरसा भवन्ति ॥ २२ ॥
आपोऽमृतक्षारसुरा घृतं मधु दध्यम्लतिक्तं तुवरः कटुस्तथा ।
सूतोऽभ्रकं गन्धक एवमादयो रसास्तु गोभ्योऽहरहः स्रवन्ति ॥ २३ ॥
एभ्यः स्रवद्भ्योऽखिलगोरसेभ्यः सर्वे पदार्थाः प्रभवन्ति पृथ्व्याम् ।
ज्योतींषि चायूंषि च सर्वदेवा गा एव ता नित्यमिहाश्रयन्ते ॥ २४ ॥
गौः प्राण एषां विधृतं तमाहुः प्राणो न येषां विधृता न ते स्युः ।
अध्यासतस्ता यदि ता हताः स्युर्ज्योतींषि चायूंषि हतानि च स्युः ॥२५॥
आत्माऽखिलानामयमिन्द्र एष व्युच्छिद्यते चेन्न तदायुरस्ति ।
न ज्योतिरस्ति म्रियते स सद्यस्तस्मादियं गौः परिरक्षणीया ॥ २६ ॥

त्रैलोक्यं त्ववमं तदित्थमुदितं सूर्य्यात्मकं तेन त-
त्सौरं तत्र हिरण्मयोस्ति पुरुषस्तत्तेन हैरण्मयम् ।
तेजो भौतिकमस्ति रूपमखिलं तेनेदमैन्द्रं मतं
रुद्रोऽभूदिह यत्कुमारनवमस्तेनोच्यते रोदसी ॥ २७ ॥

१८—आपोमयं त्रैलोक्यम् (भृग्वङ्गिरोभेदाः)

सूर्य्यारब्धमितो द्वितीयमिह यत्त्रैलोक्यमस्त्यान्तरं
यत्तत्राव्ययमन्यदस्ति मनसा प्राणेन वाचा कृतम् ।
ब्रह्मैतत्परमेष्ठि तद्धि परमाकाशे चरिष्णु स्थितं
विश्वं तज्जनितं ततो जनदिति द्वैताक्षरं गोपथे ॥ १ ॥
या तावदग्रे कथिता प्रतिष्ठा प्रतिष्ठितं तत्परमेष्ठि तस्याम् ।
इच्छत्तपच्छाम्यदिवेह वाचो लोकादयः प्रागसृजत्स्वदेहात् ॥ २ ॥
यथाऽङ्गिरोयोनिरयं बृहस्पतिर्यथाऽग्नियोनिः स यथाग्निरेव वा ।
तथैव योनिः परमेष्ठ्ययं भृगोः स सोमयोनिः स च सोम एव वा ॥ ३ ॥
रेतोधसः सोमपदेन कीर्त्तनं प्राणो हि सोमः परमेष्ठ्ययं ततः ।
रेतो दधात्यप्स्वथ रेतसा सह क्षाराश्च मिष्टा इति ता द्विधाभवन् ॥ ४ ॥
मधुरा आपोऽभि रेतसि स तपन् परमेष्ठिनः प्राणः ।
रेतोरूपोऽभूज्यत भृगुभावे परिणतोऽखिलः सोऽभूत् ॥ ५ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स भृगुश्चतुर्विधो दिक्क्रमतो वायुश्च मातरिश्वा च ।
पवमानो वातो वाऽथर्वाङ् प्राणोऽप्सु निविशतेऽथर्वा ॥ ६ ॥
आपश्चतुर्विधा याश्चतुर्विधो यः समुद्रजो वायुः ।
यश्चाथर्वा सोमः प्राणास्तेऽमी त्रया निरायतनाः ॥ ७ ॥
यद्यपि वायुचतुष्कं भृगुरित्युक्तं तथापि यां आपः ।
यो वा सोमः प्राणोऽथर्वाख्यः सोऽपि भृगुशब्दः ॥ ८ ॥
सोमो वायुश्चापो भृगवस्त्रिष्वेषु चेतनाऽऽविरभूत् ।
तेन प्राणविभेदाज्जीवजगद् भिद्यते त्रेधा ॥ ९ ॥
द्रुमकीटपक्षिपशवो वायुप्राणा जलाद्बहिर्भूमौ ।
आप्यप्राणा अम्भसि सोमप्राणास्तु कापिला देवाः ॥ १० ॥
जीवा अस्थिमृदादिषु ये येऽग्नौ ये च वा वायौ ।
तेऽपि च वायुप्राणा एव स्युश्चेतना हि भृगौ ॥ ११ ॥
द्रुमकीटाद्या वायुप्राणानां जातयो या याः ।
सर्वा अपि ता आप्यप्राणानां सौमिकानां च ॥ १२ ॥
द्रुमकीटपक्षिपशवः सोमप्राणास्तु चन्द्रपृष्ठस्थाः ।
सौम्या देवाः पितरः पृष्ठे विचरन्ति चान्द्ररश्मिषु वा ॥ १३ ॥
इत्थमनायतनत्रयमद्भ्यो जज्ञेऽश्मनाम मधुराभ्यः ।
क्षाराभ्यः सहृदद्भ्यः सायतना सृष्टिरत ऊर्ध्वम् ॥ १४ ॥
क्षारा आपोऽतिष्ठन् वृत्वा रेतः समुद्रमत एताः ।
अभवन् समुद्र एवं ता यमवृण्वन् स एष वरुणोऽभूत् ॥ १५ ॥
एष समुद्रोन्मुक्तो मुच्युत्वान्मृत्युरित्युक्तः ।
अभि तं मृत्युं वरुणं तपतोऽङ्गरसोऽङ्गिराः क्षरति ॥ १६ ॥
अङ्गिरसोऽन्येऽङ्गिरसोऽभवन्नमी एकविंशिनोऽभिमताः ।
स्तोमाद् य एकविंशादर्वाग् विततता इतो भूम्याः ॥ १७ ॥
अङ्गिरसोऽपि त्रिविधा अग्नियमादित्यभेदतो भृगुवत् ।
ऊर्ध्वोऽङ्गिराः स तिष्ठन् व्यष्टभ्नात् त्रीनिमान् लोकान् ॥ १८ ॥
"आपो भृग्वङ्गिरो रूपमापो भृग्वङ्गिरोमयम् ।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः" ॥ (गोपथ०)
व्योम्नः प्रदेशे भृगुरस्ति यत्र तद्वदन्त्यृतं यत्र तु सोऽङ्गिरास्ततः ।
तत्सत्यमित्थं द्विविधं खमेकतः शून्यं निसर्गात्परिपूर्णमन्यतः ॥ १९ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१९—भूभुर्वःस्वर्भेदाः

भृगवस्त्रयस्त्रयश्चांगिरसः शुक्रैरमीभिरिति षड्भिः ।
वारुणमण्डलमास्तृतमैन्द्रं त्रैलोक्यमाहितं तत्र ॥ १ ॥
भूयोऽभितपन्नसृजत्त्रींल्लोकानात्मनः स परमेष्ठी ।
पद्भ्यां पृथ्वीं मूर्ध्नो दिवमुदरादन्तरिक्षं च ॥ २ ॥
लोकेभ्यस्त्रीन्देवानग्निं वायुं तथादित्यम् ।
देवेभ्यस्त्रीन्वेदान् ऋग्यजुषी सामवेदं च ॥ ३ ॥
लोकानां देवानां वेदानां चेदृशां त्रिरूपाणाम् ।
भूश्च भुवश्च स्वश्च व्याहृतयस्तिस्र एताः स्युः ॥ ४ ॥

२०—वैज्ञानिकजगदारम्भः

पुष्करजन्मा ब्रह्मा प्राङ्मेरुस्थे हिरण्यशृंगाद्रौ ।
प्राग्ज्योतिषाख्यनगरे ब्राह्मीं विद्यां प्रवर्तयामास ॥ १ ॥
ओमिति कृत्वा व्याहृतिमखिलानां ब्रह्मविद्यानाम् ।
तत्राधिकृतं चक्रे स्वं सुतमोंकारनामानम् ॥ २ ॥
आस्ते स्म वसोर्धारा नामैन्द्री देवयजनपुरी ।
तस्यामसुरान् जित्वाऽलभतौंकारः प्रतिष्ठां प्राक् ॥ ३ ॥
आसीद्वरुणो राजा वाह्लीके ब्रह्मपर्षदभिगोप्ता ।
तत्पुत्रो भृगुरासीत् स भृगुं प्राणं पुराऽपश्यत् ॥ ४ ॥
भृगुदर्शनाद् भृगुः स प्रथितोऽथ ब्रह्मणः कृपया ।
मानसपुत्रो भूत्वाऽथर्वा नामाभवद् ब्रह्मा ॥ ५ ॥
प्राङ्मेरौ वाह्लीकेऽप्यथवा दृष्टोंऽगिराः पश्चात् ।
इत्थं सर्वप्रथमं भृग्वंगिरसोर्बभूव विज्ञानम् ॥ ६ ॥
अत्रैवात्रिं प्राणं कश्चिदपश्यत् स चात्रिनामाभूत् ।
तमपि ब्रह्मा मानसपुत्रं ब्रह्माणमप्रथयत् ॥ ७ ॥
ऋषयो मन्त्राः प्रथमाः प्राणास्तान् प्रथमतो हि ये ददृशुः ।
ऋषयस्ते पुरुषा अपि तेषामृषिदर्शनाद् ऋषिता ॥ ८ ॥

२१—वारुणप्रेङ्खः

याः खलु तिस्रो द्यावस्तासामध्यास्य मध्यमां वरुणः ।
अर्वाचीं च पराचीं चानुक्रमते स उच्यते प्रेंखः ॥ १ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् वशिष्ठः प्राह—

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरास्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गुत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ऋ० ७।८७।५॥

भगवान् कूर्म्मः प्राह—

तिस्रो भूमीर्धारयंस्त्रींरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महिवो महित्वं तदर्य्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ ऋ० २।२७।८ ॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः प्राह—

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताऽधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ऋ० १।३५।६ ॥

देवरातो वैश्वामित्रः प्राह—

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्था मन्वेत वा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदया विधश्चित् ॥ ऋ० १ । २४ । ८ ॥

नारायणोपनिषदि श्रूयते

अम्भस्यपारे भुवनस्य मध्ये नाकस्य पृष्ठे महतो महीयान् ।
शुक्रेण ज्योतींष्यनुसंप्रविष्टः प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः ॥
यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
तदेव भूतं तदु भव्यमा इदं तदक्षरे परमे व्योमन् ॥
येनावृतं खं च दिवं महीं च येनादित्यस्तपति तेजसा भ्राजसा च ।
यमन्तः समुद्रे कवयोऽवयन्ति यदक्षरे परमे प्रजाः ॥
यतः प्रसूता जगतः प्रसूतिस्तोयेन जीवान् व्यवससर्ज भूम्याम् ।
यदोषधीभिः पुरुषान् पशूंश्च विवेश भूतानि चराचराणि ॥
अतः परं नान्यदणीयसं हि परात्परं यन्महतो महान्तम् ।
यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् ॥

२२—परिचरक्रमः

परमेष्ठी वरुणो*ऽभूत् प्रथमो भृगुरस्ति परिचरस्तस्य ।
यो ब्रह्मणस्पतिः स हि पवमानः सोम इह पवते ॥

वरुणः

* १ भृगुः । २ बृहस्पतिः अङ्गिराः । ३ विद्युत् । ४ ब्रह्मणस्पतिः सोमः । ५ सूर्य्यः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्ति बृहस्पतिरन्यः क्रममाणो ब्रह्मणस्पतेरग्रे ।
सचतेऽङ्गिरास्तु भृगुणा सूर्य्येण ब्रह्मणस्पतिः सचते ॥
अस्ति चतुर्थी विद्युत्परिचर एतस्य तैरयं वरुणः ।
आपोमयं चतुर्थं लोकं भावयति सोमदैवत्यम् ॥
वक्ति हिरण्यस्तूपः सूर्य्यो महता पथाऽहरहः ।
नारायणं तु वरुणं परमेष्ठिनमनुपरिक्रमते ॥
इत्थमिदं त्रैलोक्यं मध्यममिह मुख्यतोस्ति परमेष्ठी ।
तत्पारमेष्ठ्यमेतद् वारुणमाप्यं च सामुद्रम् ॥

२३—आनन्दमयं त्रैलोक्यम्

अत ऊर्ध्वं त्रैलोक्यं वरुणारब्धं तदुत्तमं विद्यात् ।
सत्यं तपो जनश्चेत्येतल्लोकत्रयं तत्र ॥
प्रथमः परिचर एष स्वयंभुवो यो बृहस्पतिः सैषा ।
अमृता प्रथमा सृष्टिर्वाग्वेदाः प्रथमजं ब्रह्म ॥
मनसा वाचा प्राणेनाव्यय आत्मा बृहस्पतेरिह यः ।
इच्छंस्तप्यञ्छ्राम्यन् सोऽजनयद् यत्तदक्षरं ब्रह्म ॥
ओमिदमक्षरमुक्तं तद्विक्रमणात्त्रयोऽभवँल्लोकाः ।
लोकविशेषाद्वा देवविशेषात्त्रयोऽत्र वेदाः स्युः ॥
ऋक्सामे यजुरेतत् त्रैविद्यं प्रथमजं श्रुतं ब्रह्म ।
विन्दति वेत्ति च विन्ते विद्यत एतेन तेन वेदोऽयम् ॥

२४—परिचरक्रमः

बार्हस्पत्यं वाङ्मयमण्डलमत्राततं यावत् ।
परमं व्योम तदिन्द्रस्तस्माद् वागिन्द्र ऐन्द्री च ॥
इन्द्रश्चैष बृहस्पतिरेकोऽर्थः स्तूयते द्वेधा ।
नभ्यं ब्रह्म बृहस्पतिरयमेवेन्द्रः प्रतायमाना वाक् ॥
अमृता दैवतयोनिर्वाङ् मर्त्या भूतयोनिः स्यात् ।
विभ्वी वाग् द्विविधापि प्राज्ञैराकाश उच्यते परमः ॥
यथा चान्तरिक्षे द्युशब्दोऽपि दृष्टस्तथेदं जलं वाचमप्यन्तरा यत् ।
किमप्यस्त्यमूर्तं च मूर्तं च वा तत्समस्तं वदामीन्द्रमाकाशमेव ॥
त्रैविद्यं ह्याकाशमेतत् प्रतिष्ठा ब्रह्माख्यातं सप्रतिष्ठं यदस्ति ।
त्रय्यां सर्वं तत्प्रतीयाद् वियुक्तं त्रय्या न स्यान्नोपलभ्येत नश्येत् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋक्सामान्तर्यद्यजुर्नाम किञ्चित्तस्मादेतत्सर्वमुत्पन्नमस्ति।
ऋक्सामस्थं तेन वाचं प्रतिष्ठात्रह्मेत्याहुः सर्वयोनिं च वदम्॥
त्रैलोक्यानां त्रित्वात्सप्त च लोका इहैव कथ्यन्ते।
षड्लोका इह सत्ये विधृताः सत्यं स्वयंभुवा विधृतम्॥
अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि अजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्। ऋ० १।१६४।६॥
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्। ऋ० १।१६४।१०॥

इतो दिवि तृतीयस्यां सोम आसीदिति श्रुतिः।
तन्मन्येऽस्त्यन्तरा सोम इन्द्रं च परमेष्ठिनम्॥

२५—प्रजापतेः संस्थाचतुष्टयी

१—सप्त च लोकानेको बिभर्ति यत्राहिता लोकाः।
स परोरजाः स्वयंभूरदृश्य आत्मा स विद्यते परतः॥ १॥
मायी स मायाकृतमात्रया मितोऽप्यन्यानशेषानतिवर्ततेऽभयः।
आनन्दसच्चिद्घन एष विग्रहं प्रजापतिर्धारयते परोरजाः॥ २॥
२—एकस्य तस्यास्ति चतुर्विधा स्तुतिस्त्रिपूरुषो निर्विकृतः स केवलः।
शान्तो विशुद्धो विरजा निरञ्जनो मुख्योऽयमात्मा प्रथमो निगद्यते॥ ३॥
प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ (शु० यजु० ३१।१९)
३—शारीरकत्वं भजते स एव चेदस्याक्षरः पञ्चविधः प्रवर्तते।
ब्रह्मेन्द्रविष्णू सह चाग्निसोमतो मूर्तिर्विराण्मृत्यवमृताग्निसंचयात्॥ ४॥
अयं चिदात्माऽप्यभयः परोरजास्तज्ज्योतिषां ज्योतिरिति प्रसिध्यति।
इदं परज्योतिरिहावलम्बनं तमेकमोंकार इति ह्युपासते॥ ५॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ऋ० १०।१२१।१०॥
४—शारीरकोऽयं पुनरेति विश्वतां स पाञ्चदैवत्यमुपेत्य विक्रमात्।
अग्नित्रयं सोमयुगं बहिस्ततं सलोकवेदा महिमास्य देवताः॥ ६॥
विश्वाख्य आत्मैव स यज्ञ आत्मा महानजो वा स महाजनो वा।
अजो महात्मा ध्रुव एष वेदस्तमेतमुद्गीथ इति ह्युपासे॥ १॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः संतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ऋ० १०।१६९।४ ॥

५—विश्वात्मकोऽयं वरुणेन्द्रपृथ्वीसूर्य्यादिभिः स्वैर्विकृतैर्विशेषैः ।
वैशिष्ट्यतः सर्वविकारयोगाद् वैकारिकः ख्यायत एक आत्मा ॥

६—हृदयं तदनु शरीरं महिमा तदनु वित्तमयम् ।
व्याप्नोति तेन तत्तत्पर्य्याप्त्यैकश्चतुर्विधो लक्ष्यः ॥
यथेश्वरस्तद्धृदयं चतुर्धा जीवोऽपि संभाव्यत एव किन्तु ।
स्त्रीपुत्रभृत्यादिकुटुम्बगेहग्रामादयस्तत्र विकारिभावाः ॥

वित्तावच्छिन्ने

७—एषां चतुर्थे सकले प्रजापतौ द्यावापृथिव्याद्यखिला वयं तथा ।
अन्तर्निविष्टाः स्म न तत्पृथक्तया सर्वे वयं स्मोऽथ वयं स दृश्यताम् ॥

शरीरावच्छिन्नः

यस्तु द्वितीयः स हि सप्तलोकतः परोऽस्ति तस्मात् स मतः परोरजाः ।
अध्यक्ष एषां स विदूषयन्त्यमी नासङ्गमेतं विरजास्ततः श्रुतः ।
स एष आनन्दघनः स चिद्घनः सत्ताघनस्तस्य महिम्नि संतताः ।
बृहस्पतिर्वा वरुणो रविश्च वाऽनन्ताखिलोक्योऽप्यपराः स नः प्रभुः ॥
परं स्वमात्मानममी यथा रविक्षित्यादयोऽजं दधते पृथक् पृथक् ।
तथा स्वमात्मानमयं परोरजा धत्तेऽव्ययं तत्र गताः परेऽव्ययाः ॥

हृदयावच्छिन्ने शरीरावच्छिन्नमहिमावच्छिन्नेषु

* प्रजापतीनां त्रितये त्वभेदवत् क्लृप्ते श्रुतिः काचन कंचन स्तुते ।
आत्मैव मुख्यः स हि विग्रहे हृदि स्थितोऽखिलं धारयति स्वविग्रहम् ॥

१—तत्र तावत्प्रथमो हृदयावच्छिन्नो विशुद्धात्माऽभिष्टूयते—

"हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥ १ ॥"

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥२॥" (यजु०मा० ३१।१८)

---

* "प्रजापतिर्वै त्रीन्महिम्नोऽसृजताग्निं वायुं सूर्य्यम्"—इति श्रुतेः ॥ (निरुक्तभाष्ये दैवते ७ । ५ । इति श्रुतिरुक्ता) ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सप्तलोकसंस्थानधर्म्माः

भूतानि	मनोवाः	दैवतानि	चरः	अचरः	अव्ययः	लोकाः	त्रैलोक्य-संज्ञा	त्रैलोक्य-स्थानि	ब्रह्मपुराणि
आकाशः	माया अभ्वम् सूत्रम्	ऋषयः राक्षसाः	प्राणः	ब्रह्मा	ब्रह्मा सत्यः प्रजापतिः पुराणपुरुषः प्रतिष्ठाकृत्	सत्यम् ७ तपः ६	संवती (३) वाङ्मयी त्रिलोकी	द्यौः ३ अंतरिक्षम् २ पृथ्वी १	स्वयंभूः १
वायुः	इडा गौः ऊर्क्	पितरः पिशाचाः	आपः	विष्णुः	विष्णुः यज्ञः प्रजापतिः नारायण पुरुषः आहुतिकृत् इन्द्राविष्णुभ्यां हिरण्यगर्भः	जनत् ५ महः ४	ऋग्दसी (२) आपोमयी त्रिलोकी	द्यौः ३ अंतरिक्षम् २ पृथ्वी १	वेदसृष्टिः ब्राह्मयी परमेष्ठी २
तेजः	ज्योतिः गौः आयुः	देवाः असुराः	वाक्	इन्द्रः	महादेवः संवत्सरः प्रजापतिः कालपुरुषः उत्क्रान्तिकृत् इन्द्रसोमा-निमिस्त्यचरः	स्वः ३ भुवः २	रोदसी (१) अग्निमयी त्रिलोकी	द्यौः ३ अंतरिक्षम् २ पृथ्वी १	लोकसृष्टिरापोमयी सूर्य्यः ४
अन्नम्	वाक् गौः द्यौः	मनुष्याः गन्धर्वाः	अन्नादः	अग्निः		भूः १			प्राणासृष्टिर्वाङ्मयी पृथ्वी ३
आपः	श्रद्धा रेतः यशः	ग्राम्य पशवः आरण्य पशवः	अन्नम्	सोमः	अत्रैषईश्वरः स्वरूपतः संपन्नः			पृथ्वी १	देवसृष्टिरग्निमयी चन्द्रः ५

अथैतस्मिन् त्रैलोक्ये पुनः सप्त लोका अन्तर्धीयन्ते—१—पृथ्वी—चित्यग्निः त्रिवृत स्तोमः ९ । २—पृथ्वी—अमृताग्निः त्रिवृत् स्तोमः ९ । ३—द्यौः—यमः । ४—द्यौः—वायुः । ५ आपः—सोमः । ६—आपः—आपः । ७—दिक् —दिशः । इति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् श्वेताश्वतरोऽभिष्टौति

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम् ।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

अथ द्वितीयः शरीरावच्छिन्नः शारीरक आत्माऽभिष्टूयते

१—परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥ ऋ० १० । ८२ । ५
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यदत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ऋ० । १० । ८२ । ६
एषोऽह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ श्वेता० २ । १६

भगवान् याज्ञवल्क्योऽभिष्टौति

२—यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन् संदेह्ये गहने प्रविष्टः ।
स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥ बृ० ४ । ४ । १३
इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदीर्महती विनष्टिः ।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥ बृ० ४ । ४ । १४
यदैतमनुपश्यति आत्मानं देवमञ्जसा ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ बृ० ४ । ४ । १५

आश्वलायनाय परमेष्ठी प्राह

३—न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥ कैवल्योपनिषत्

श्वेताश्वतरः प्राह

४—ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कंचनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

याज्ञवल्क्यः प्राह

५—यस्मादर्वाक् संवत्सरोऽहोभिः परिवर्तते ।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥ बृ० ४ । ४ । १६
अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुरा क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ मुंडक १ । २ । ९
इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति । मु० १ । २ । १०
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यं चरन्तः ।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ मु० १ । २ । ११

अथ तृतीयो महिमावच्छिन्नो विश्वात्माभिष्टूयते—

१—सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । श्वेता० ३ । १६
य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति ।
विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ श्वेता० ४ । १
ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ श्वेता० ४ । ८
एष देवो विश्वकर्म्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ श्वेता० ३ । १७
२—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ऋ० १० । ९७ । १
ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥ श्वेता० ३ । ७
यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥ श्वेता० २ । १७
प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः ।
ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम् ॥ बृ० ४ । ४ । १८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् ।
विरजः पर आकाशादज आत्मा महान् ध्रुवः ॥ बृहदा० ४ । ४ २०
तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ बृ० ४ । ४ । २१

३—न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ मु० २ । २ । १०
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ मु० २ । २ ११
यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथा अमृतस्यैष सेतुः ॥ मु० २ । २ । ५

४—यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ श्वेता० ३ । ९

५—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ॥ श्वेता० ४ । २
यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मा मृतोऽमृतम् ॥ बृह० ४ । ४ । १७
मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ बृ० ४ । ४ । १९

आत्मा चतुःसंस्थ उदीर्य्यते ततो विशुद्ध शारीरकविश्ववैकृताः ।
आत्मान उक्ताः क्रमशोऽञ्जनोद्धृतौ निरञ्जनः शुद्ध उदेति केवलः ॥

× .....

शरीरभेदा महिमान एवं वित्तानि चैतानि तदञ्जनानि ।
एषोऽखिलोऽर्थः पृथगात्मचक्रं नभ्योऽयमक्षः प्रधिरत्र वित्तम् ।
ये कर्म्मजन्यातिशयास्त आत्मन्याप्तास्ततो वित्ततया धृताः स्युः ।
आत्मांशुनोत्सृष्टविधा मलास्तेऽनात्मीयभेदा अपि वित्तवर्ग्याः ॥

देवासुरमतविरोधः

१—परोरजा इन्द्रबृहस्पती तथेत्येते त्रयः सन्ति न दृष्टियोगिनः ।
आथर्वणास्तान्मततोऽभिमन्वते बृहस्पतीन्द्रौ न न वा परोरजाः ॥

---

* अत्र कश्चिदंशस्त्रुटित आदर्शपुस्तके ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आथर्वणा गोपथ इत्थमाहुर्ब्रह्मैकमासीत् परमेष्ठि पूर्वम् ।
ततोऽखिलाः सृष्टय इद्वभूवुर्मतं तदेवासुरलोक आसीत् ॥
२—एतद्विरुद्धं मतमस्ति दैवं न चैष राजा वरुणः स्वतन्त्रः ।
बृहस्पतीन्द्रस्य वशे स नेयस्तत्राप्यधीष्टे भगवान् स्वयंभूः ॥
३—वरुणस्य राजधान्यां सुखवासपुरेऽथवास्य वाह्लीके ।
भृगुपर्षद्यमासीदिन्द्रानभ्युपगमे वादः ॥
सौत्रामण्यामिष्टाविन्द्रसुरादानकल्पमुपलक्ष्य ।
ब्राह्मणकुले विवादोऽवर्द्धत वरुणेन्द्रपूज्यताविषये ॥
४—ऐन्द्रा ऊचुः पवते धाम न किञ्चिद्विनेन्द्रमिमम् ।
मदिरा तु वारुणीयं वरुणः पाशी स बन्धनं कुरुते ॥
इन्द्रो रूपं विविधं जनयन् सर्वं विकासयति ।
वरुणस्त्वावृणुते तद्रूपं निशि वा दिवाऽभिभवन् ॥
रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम् ।

त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ।—(ऋ० ३ । ५३ । २० । ८)
"इन्द्रो रूपाणि करिक्रदचरत्"—तै०
"अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ॥
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति"—(ऋ० १ । २४ । १०)
❀ त्रिवृतस्त्रयस्तु लोका अथवाऽमी सप्त लोकाः स्युः ।
सर्वेषां लोकानां लोकातीतोस्त्यधिष्ठाता ॥

अथाध्यात्मं त्रिवृतस्त्रयो लोकाः

गुहात्—हृदयान्ता—रोदसी
नाभेः—कण्ठान्ता—क्रन्दसी
हृदयाद्—हृत्यन्ता—संयती
१—गुदान्नाभिः—पृथ्वी
२—नाभेः हृदयमन्तरिक्षम्
३—हृदयात्कण्ठः द्यौः
४—कण्ठाद्—हृत्तिरापः

२—जिह्वा—नासा अं०
३—नासा—चक्षुः द्यौः
४—चक्षुः—हृतिरापः
पृथ्वी अन्तरिक्षं द्यौः
ब्रह्मग्रन्थिः १ नाभिः २ हृदयम् ३
नाभिः २ हृदयं ३ कण्ठः ४
हृदयं ३ कण्ठः ४ जिह्वा ५

१—कण्ठाद्—जिह्वान्ता पृ०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५ ये वारुणास्त ऊचुर्नेन्द्रो देवः क चापि मन्तव्यः ।
वरुणस्त्वसुरो राध्यः सोऽद्भ्यः सृष्टिं तनोति निःशेषाम् ॥
चत्वार एव लोका अग्नित्रयतस्त्रिलोकी प्राक् ।
आपश्चतुर्थं लोकस्तस्मिन्नुदितास्त्रयो लोकाः ॥
अत्र विरोधे ब्रह्मा देशविभागेन शान्तिमातेने ।
ऐन्द्रान् विवास्य चैन्द्र्यां वारुण्यां वारुणानदधात् ॥
सिन्धोः प्राच्यामार्य्यावर्ते न्यूषुस्तदेन्द्रभक्तास्ते ।
सिन्धोः पश्चिमभारतमार्य्यायणमासुरा जगृहुः ॥
पञ्च चत्वारिंशच्चांशाः प्राक् सिन्धुतो नदाद्वैवम् ।
भारतमंशैरेभिः पश्चिमतस्त्वासुरं सिन्धोः ॥
पारस्थानं जगदुः पौरस्त्या आसुरं देशम् ।
पाश्चात्त्याः पुनरैन्द्रं सिन्धुस्थानं वदन्ति देशमिमम् ॥
एष विरोधः क्रमतः प्रवर्द्धितः कालमासाद्य ।
देवासुरसमराणां हेतुरभूदवीरनाशाय ॥
दीर्घतमाश्च महर्षिस्तं देवासुरविरोधमुपलक्ष्य ।
असुराणां हिंसकतामग्न्यभिवादेऽभिदर्शयति ॥

"बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठमंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ।" (ऋ १। १४७ । २)

"नेमे देवा नेमेऽसुराः" इति वाजपेये मैत्रायणीयब्राह्मणवाक्यमप्यमुमर्थमभिदर्शयति ॥

२६—बृहस्पत्यादिनानात्वम्

१—बृहस्पतिस्तु द्विविधः परस्तात्प्रभाकरादाङ्गिरसः समुद्रे ।
आनन्दगं ब्राह्मणमेतमन्यं वेदाख्यमाहुर्वरुणात्परस्तात् ॥
ब्रह्माणं बृहस्पतिं तं भगवान् वरुणः परिक्रमते ।
आङ्गिरसः पुनरन्यो बृहस्पतिर्वरुणमेव परिचरति ॥
२—सोमस्त्रिविधः प्रथमः परमाकाशे परः समुद्रे सः ।
रोदस्यामयमन्यो मेधातिथिराह हि त्रित्वम् ॥

"त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः" । ऋ० ८।२।७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईश्वरानुवाकः

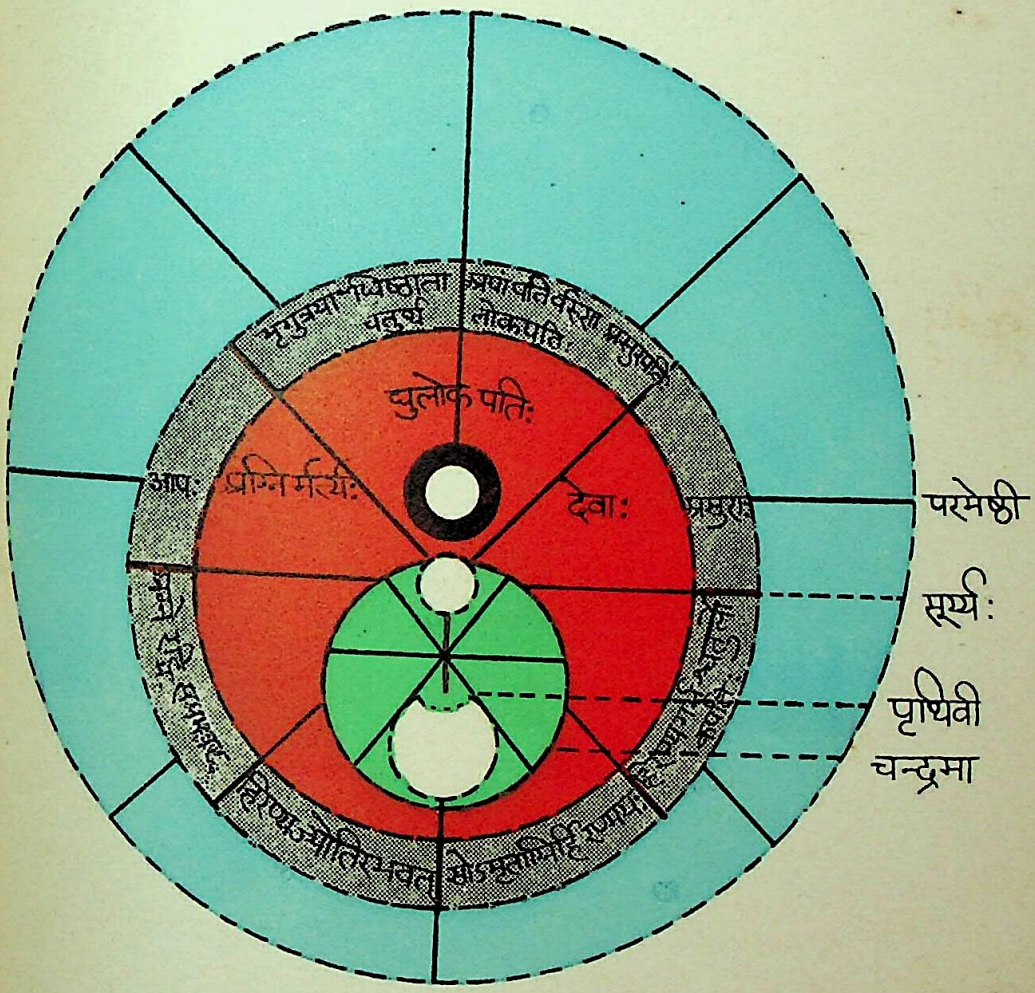

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईश्वरशरीरस्य सहस्रतमोऽयमंश :—सप्तलोकमयी

सहस्रबल्शस्य अश्वत्थवृक्षस्य एका बल्शा पञ्चपुण्डीरा

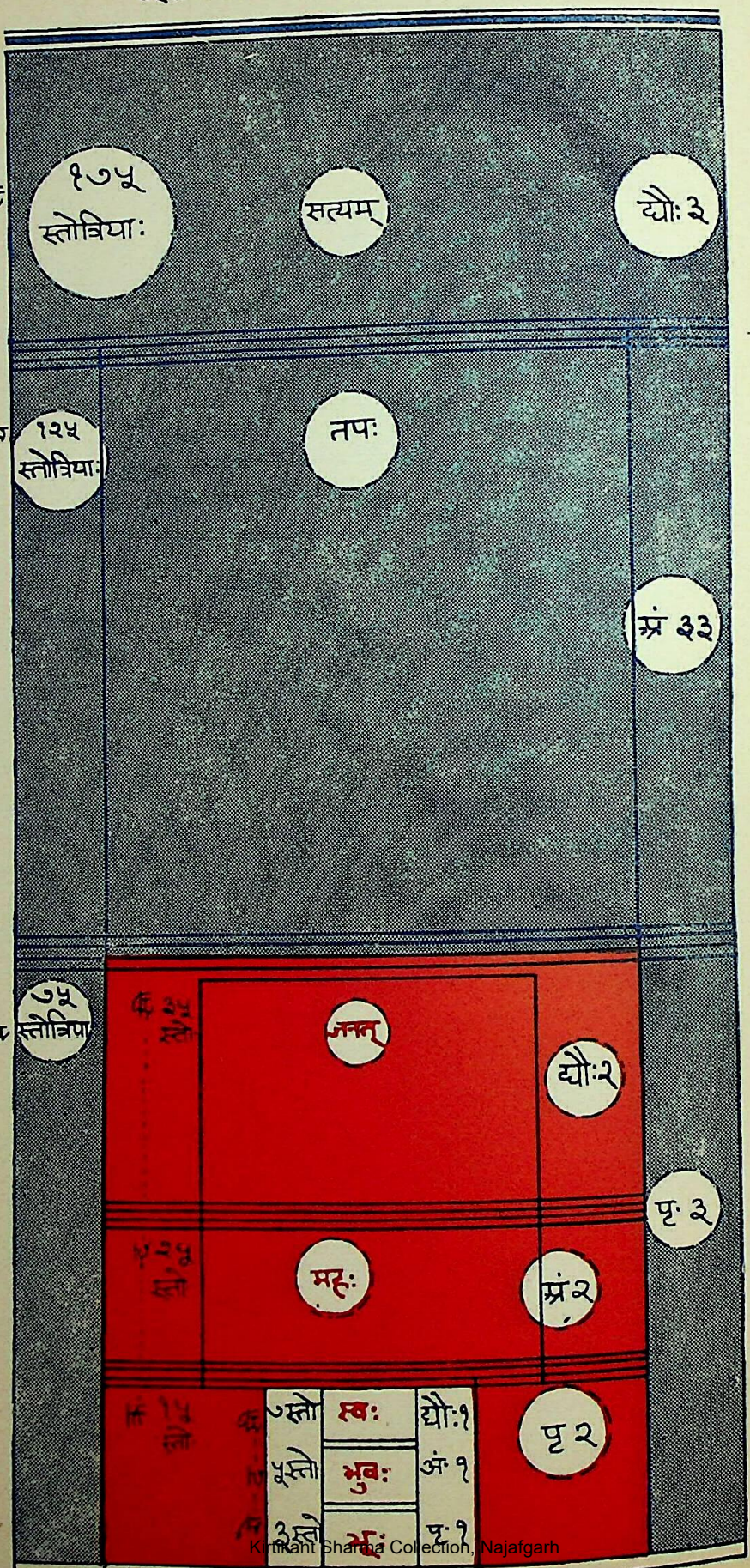

३७५-स्तोत्रियाभिः कूप्तम् ईश्वरशरीरम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२७—सर्वसमन्वयः

१—ये दीपानां द्वादशानां मयूखा भिन्नारम्भाः संहिताः संततास्ते ।
ये ह्याकाशस्यैकमेकं प्रदेशं पर्य्याक्राम्यन्त्यद्रुहः किन्त्वमिश्राः ॥
पृथ्वीपृष्ठेऽप्येवमेवान्तरिक्षे चिद्वेदेन्द्राविष्णुविद्युद्भृगूणाम् ।
सोमोष्णांश्वोरङ्गिरोज्ञाच्छभूनां प्राणा व्याप्ता अद्रुहो भिन्नमूलाः ॥

२—यद्वा सर्वास्तारकाः खे प्रदृष्टाः स्वं स्वं रश्मिं तन्वते तैरशेषैः ।
मिश्रामिश्रैरूपमुत्पन्नमेकं वायुं प्राहुश्चिन्मये तत्र हि स्मः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—आधिकारिकेश्वरनिरूपणम्

	आधिकारिकेश्वराः	अमृतम्	ब्रह्म	शुक्रम्	तन्त्रम्	अधिकाराः	अधिकृतं त्रैलोक्यम्	आत्मायतनम्	ब्रह्मपुरम्
१	ब्रह्मा	ब्रह्मा	प्राणः	वाक् सरस्वती	ज्ञानमय-विश्वाधिष्ठानतन्त्रायी	प्राणनाथः लोकपतिः	सत्यम् ७ द्यौः तपः ६ अं० जनत् ५ पृ०	शिरोगुहाधिष्ठाता ज्ञानमयः ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारपद्मे शिवयोगे	स्वयंभूः
२	विष्णुः	विष्णुः इन्द्रः	आपः वाक्	आपसमुद्रजाः	कर्ममय—विश्वाधिष्ठानतन्त्रायी	देवनाथः यज्ञपतिः	जनत् ५ द्यौः महः४अं० स्वः३पृ०	उरोगुहा—धिष्ठाता कर्ममयः	हिरण्यगर्भः
३	महादेव	इन्द्रः अग्निः सोमः	वाक् अन्नादः अन्नम्	अग्निः गिरिजा	अर्थमय-विश्वाधिष्ठानतन्त्रायी	भूतनाथः पशुपतिः	स्वः ३ द्यौः भुवः २ अं० भूः१पृ०	उदरगुहा—धिष्ठाता अन्नमयः मूलाधारे त्रिकोणे ब्रह्मग्रन्थौ	प्राजापत्याग्निः संवत्सरः

त्रयाणमेषां ब्रह्मविष्णुशिवानामविनाभूतानामन्योन्यपरिग्रहेणावस्थानं भवति अधस्तनो महादेवस्तावदूर्ध्वं गतः शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारपद्मे तिष्ठति। अथ चोर्ध्वतनोऽसौ ब्रह्मा गुदमेढ्रान्तरे ब्रह्मग्रन्थौ ग्रथितस्तिष्ठति। अथ पुनर्हृदये विष्णुस्थाने चोभयोस्तयो र्ब्रह्मशिवयोः संयोगः शाश्वतिकः सिद्धः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१—ईश्वरशारीराग्निविवर्तभूतं सुदर्शनं चक्रम्

अत्रेदमपरं बोध्यम् । नारायणस्याग्नेर्भूपतिः, भुवनपतिः, भूतानां पतिरिति त्रयो भ्रातरो भवन्ति । पिण्डेऽन्तर्भूपतिः । पिण्डाद्बहिः पृष्ठान्तो भुवनपतिः । प्राणिशरीरे भूतानां पतिः । तत्र भूपतिरेवायं बहिर्भवन् भुवनपतिर्भवति । अधस्तादयमग्निः पृथ्वीहृदयस्थः प्रज्वलन् परित ऊर्ध्वं गच्छति । स पृथिव्याः पारावतपृष्ठमष्टाचत्वारिंशस्तोमान्तमनुसंचरति नातः परं गच्छति । स भुवनपतिः ।

"अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत् । तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत् ।

यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाग् ।" इति सिद्धान्तात् एतावदस्याभिव्याप्तिस्थानम् । तत्रैकत्रिंशस्तोमान्तमग्नेः स्वं रूपं तिष्ठति । तदूर्ध्वं सोऽग्निः सोमो भवँस्त्रयस्त्रिंशस्तोमं यावदवतिष्ठते । तदूर्ध्वं पुनरग्नीषोमसाधारणमनुष्णाशीतं वाग्लक्षणं ब्रह्मरूपमष्टाचत्वारिंशस्तोमान्तं भवति । वाग्—आपः—अग्निः—इत्येतदेव त्रितयं विश्वस्योक्थम् । तत्र वागिति वेदानाम् आप इति लोकानाम् अग्निरिति देवभूतादिभेदभिन्नानां प्रजानामुक्थमस्तीति विज्ञेयम् । सर्वाः प्रजाः सर्वे प्राणिनो लोकस्थाश्छन्दोभिश्छन्दिता एवोपपद्यन्ते । छन्दांसि वेदाः । ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि । तानीमानि वयोनाधाः प्राणाः । तैश्छन्दितानि हीमानि वयांसि प्रजापतयः । मान्तरेण वेदं प्रजापतयः । वाङ्मयो वेदः । वाङ्मयः प्रजापतिः । अग्नीषोमयोः प्रभवो वाक् । सोऽष्टाचत्वारिंशस्तोमं गत्वा पुनरधस्तादवतारायोपकल्पते । तत् त्रयस्त्रिंशादधः सोमरूपाय कल्पते । अथ सप्तदशे स्तोमे स सोमो भुवनपतिनाऽग्निना संयुज्यमानस्तत्राहुतो यज्ञोऽभवन्नग्निरूपो भवति । सोऽग्निः पृथ्वीहृदयात्पुनरूर्ध्वं क्रममाणोऽन्तःपृष्ठाद्बहिः पृष्ठं गतः सोमो भवति । अथैष सोमोऽन्तर्मुखतास्वाभाव्यादस्माद्बहिःपृष्ठादन्तरतोऽवक्रममाणः पृथ्वीहृदयं गत्वा पुनरग्निर्भवति । एवं प्रवर्तमानं यज्ञलक्षणस्य विष्णोर्विश्वस्थितिकृद्वागापोऽग्न्यारब्धं सुदर्शनं चक्रम् । एतावदग्नीषोममयं त्रैलोक्यम् ।

२—ईश्वरस्याश्वत्थैकबल्शाशरीरस्य रूपभेदा आधिकारिकेश्वराः

अथ पञ्चपुण्डीराश्वत्थैकबल्शाकृतशरीरस्येश्वरस्याधिकारभेदादाधिकारिकाणि त्रीणि रूपाणि ब्रह्मा—विष्णुः—महादेवः—इति ॥

ईश्वरमूर्द्धा स्वयंभूः ब्रह्मा । स प्राणानाथो लोकपतिः

तत्र तावदिह विश्वमण्डले सर्वस्मादुपरिष्टाद्दिवः पृष्ठे आत्मज्योतिर्मये लोके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाक्प्राणमनोमयं ब्राह्मं प्रथमं त्रैलोक्यम्। तदिदं सर्वहृद्यज्ञात्मकं सत्यमयं मनोविज्ञानानन्दरूपममृतम्। तत्र प्राणाग्निर्ब्रह्म परा प्रकृतिः। वाक् शुक्रमपरा प्रकृतिः। परा प्रकृतिः स्वभावः। अपरा प्रकृतिः सहधर्म्मिणी। स एष वेदमयः प्रजापतिर्ब्रह्मा स्वयंभूर्नाम। स एष ज्ञानतन्त्रायतनशिरोमण्डलान्तर्गतसहस्रारपद्मयोनिरानन्दविज्ञानमनोलक्षणज्ञानतन्त्राध्यक्षः शिरोगुहात्मा द्रष्टव्यः। तदिदं वाक्प्राणमयं ब्रह्मसंज्ञकैकाक्षरमयं त्रैलोक्यम्। सोऽयं विज्ञानप्रधानो ब्रह्मा प्रथमः खल्वीश्वरः पुरुषः। सोऽयमीश्वरस्य शिरोभागो द्रष्टव्यः। ब्रह्मैकाक्षरः स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रथमो देवोऽधिकारतो लोकपतिः प्राणनाथः। सोऽयं ज्ञानमयविश्वाधिष्ठानतन्त्रायी। तस्य वाङ्नामैषा ब्रह्माणी सहधर्म्मिणी सरस्वती॥

ईश्वरहृदयं हिरण्यगर्भो विष्णुः। स देवनाथो यज्ञपतिः।

अथैवमस्यां मध्यमायां दिवि आपो वाङ्मयं वैष्णवं द्वितीयं त्रैलोक्यम्। तदिदममृतयज्ञात्मकं वेदमयं त्रिविक्रमरूपम्। तत्र वागग्निर्ब्रह्म परा प्रकृतिः स्वभावः। आपः शुक्रमपरा प्रकृतिः सहधर्म्मिणी। परमेष्ठी हि ता आपो वायुमयः समुद्रः। तमेवैतं समुद्रं पश्यामो यमेतमाकाशं पश्यन्तः सर्वतो नीलिमानं पश्यामः। तस्यैतस्य गर्भेऽग्निरयं हिरण्मयः पुरुषः। "तस्यैतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्"—स एष यज्ञमयो हिरण्यगर्भोऽग्निरयं विष्णुर्नारायणः परमेष्ठी नाम। स एष कर्म्मतन्त्रायतनहृदयमण्डलान्तर्गतप्राणाग्निर्यज्ञवेदयोनिर्मनःप्राणवाग्लक्षणकर्म्मतन्त्राध्यक्ष उरोगुहात्मा द्रष्टव्यः। तदिदमापोऽग्निलक्षणेन्द्राविष्णुसंज्ञकद्व्यक्षरमयं त्रैलोक्यम्। सोऽयं कर्म्मप्रधानो विष्णुर्यज्ञो द्वितीयः खल्वीश्वरपुरुषः। सोऽयमीश्वरस्य हृदयप्राणो द्रष्टव्यः। इन्द्राविष्णुभ्यां द्व्यक्षरो हिरण्यगर्भः परमेष्ठी विष्णुर्मध्यमो देवोऽधिकारतो यज्ञपतिर्देवनाथः। सोऽयं कर्म्ममयविश्वाधिष्ठानतन्त्रायी। तस्य आपो नाम समुद्रजा सहधर्म्मिणी लक्ष्मीः॥

ईश्वरनाभिर्महादेवः शिवः। स भूतनाथः पशुपतिः।

अथ पुनरेवमेवेदं दिवोऽधस्ताद् भूतज्योतिर्मये लोके इन्द्राग्निसोममयं रौद्रं तृतीयं त्रैलोक्यम्। तदिदं मर्त्ययज्ञात्मकं भूतमयं भूतभावनारूपम्। अन्नपूर्णालक्षणसोमयुगन्नादाग्निब्रह्म परा प्रकृतिः स्वभावः। अग्निः शुक्रमपरा प्रकृतिः सहधर्म्मिणी। स एष भूतनाथः पशुपतिः मृत्युञ्जयः शिवो महादेवो नाम। स एष शरीरजनकभूतनाथतन्त्रायतननाभिमण्डलान्तर्गतसोमाश्मगिरियोनिर्बाह्यमापोऽग्निलक्षणभूतार्थतन्त्राऽध्यक्षो नाभिगुहात्मा द्रष्टव्यः। तदिदमिन्द्राक्षरसहकृताभ्यामग्नीषोमाभ्यां

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्र्यक्षरमयं त्रैलोक्यम्। सोऽयं भूतप्रधानो महादेवो ब्रह्मोदनप्रवर्ग्यलक्षणान्नभोक्ता तृतीयः खल्वीश्वरपुरुषः। सोऽयमीश्वरस्योदरभागप्राणो द्रष्टव्यः। इन्द्राग्निसोमैस्त्र्यक्षरो द्यावापृथिव्योऽग्निर्महादेवोऽधिकारतः पशुपतिर्भूतनाथः अर्थमयविश्वाधिष्ठानतन्त्रायी। तस्याग्निर्नाम सोमलक्षणान्नपूर्णाकृतिः सहधर्म्मिणी दुर्गा॥

३—मनोधर्माश्रयो दिव्याग्निर्दक्षिणामूर्तिः—ज्ञानतन्त्रोद्बोधकवायुमयः।

अवाची दिग् दक्षिणा। एष खलु दक्षिणामूर्तिः प्रजापतिरस्याश्वत्थवृक्षस्याधोभागे रोदसीत्रैलोक्येऽभिव्याप्नुवानोऽग्निवाय्विन्द्रलक्षणानि त्रीणि ज्योतींषि समवर्तयन् सर्वप्रकाशलक्षणं विज्ञानं प्रवर्तयति। अत एवैष प्रजापतिर्दक्षिणामूर्तिः शुद्धबुद्धिप्रवर्तकः स्तूयते यथा—

यस्मादन्यो न परो अस्ति जातो य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥ सामसं०

व्याख्या मुद्राक्षमाले कलशसुलिखिते बाहुभिर्वामपादं
बिभ्राणो जानुमूर्ध्ना पदतलनिहितापस्मृतिर्द्युद्रुमाधः॥
सौवर्णे योगपीठे लिपिमयकमले सूपविष्टस्त्रिनेत्रः
क्षीराभश्चन्द्रमौलिर्वितरतु विपुलां शुद्धबुद्धिं शिवो नः॥ इति॥

अत्र—अग्निर्भूतज्योतिः पृथिव्याम्। अथ विद्युद्दिव्यज्योतिरन्तरिक्षे। अथ विज्ञानं ज्ञानज्योतिर्द्यवि इत्येवमेतैस्त्रिभिर्ज्योतिर्भिः सचमानोऽयमष्टमूर्तिः प्रजापतिर्महादेवस्त्रिनेत्र आख्यायते। स एष द्युद्रुमस्याश्वत्थस्याधस्ताद् भागे सूपविष्टो ज्योतिषा त्रैलोक्यं प्रकाशयतीति ज्योतिर्लिङ्गात्मा परिष्टूयते॥

तदित्थं वायुजातीयाग्निमूर्ते रुद्रस्य लोकत्रयभेदादग्निसोमेन्द्रसयुजः प्रतिलोकमेकादशविधत्वमाख्यातम्।

तत्रायमभिसन्धिर्भवति—

"इमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे" इति प्रतिज्ञाय

"तिस्रो वा इमाः पृथिव्यः—इयमहैका द्वे अस्याः परे"।

इति श्रुत्या सिद्धानां तिसृणां त्रिलोकीनामुत्तमाया ज्योतिर्मय्याः संयतीनाम्न्यास्त्रिलोक्या अध्यक्षोऽन्तर्य्याम्यक्षरो ब्रह्मा। द्वितीयस्या यज्ञमय्या मध्यमायाः क्रन्दसीनाम्न्यास्त्रिलोक्या अध्यक्षो अक्षरो विष्णुरिन्द्रसयुक्। अथा-

---

* पृथ्वी मृत् ८। २ जलम् आपः ७। ३ तेजः अग्निः ६। ४ वायुः वायुः ५। ५ आकाशः शब्दः ४। ६ चन्द्रः मनः २। ७ सूर्य्यः प्राणः ३। ८ आत्मा सत्यम् १।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धस्तादस्या रोदसीनाम्न्यास्त्रिलोक्या अध्यक्षः पुनरिन्द्रः सोमाग्निमयोऽक्षरो महादेवः। सोऽस्यां त्रिलोक्यां प्रतिलोकमेकादशविधत्वात् त्रयस्त्रिंशद्विधः। यथोक्तम्-

"त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंश इति।

अतएव चाह—"द्यावापृथिव्योर्वा इमे सर्वे देवाः"— इति।

तथा च एष खलु भगवान् महेश्वरो रुद्रवायुप्राणो मर्त्यलोकत्रयैकाधिष्ठातृतया त्रयस्त्रिंशद्देवतास्थानो भवति। मर्त्यलोकत्रयाधिवासिनोऽग्निवाय्वादित्यैतद्देवत्रयस्य अष्टाभिर्वसुभिरेकादशभी रुद्रैर्द्वादशभिरादित्यैर्द्वाभ्यामश्विभ्यां च त्रयस्त्रिंशदधिदेवताकत्वात् साम्येन तु सर्वत्रानुवर्त्तनादेष प्रतिलोकमेकादशधा निष्पद्यते। तथा च श्रूयतेऽथर्वश्रुतौ—

"त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्य्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः।

अस्मिंश्चन्द्रेऽधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्य्याणि॥ १९। ४।

ये देवा दिव्येकादशस्थ ये देवा अन्तरिक्षे एकादशस्थ।

ये देवाः पृथिव्यामेकादशस्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्"॥ १९। १३।

तैत्तिरीयकाश्चामनन्ति--त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः।

बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। इति।

ऋग्वेदेपि श्रूयते—

"ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।

अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥ इति ऋ० १। १३९। ११

अत्रायमग्निसयुग्वायुमूर्तिरेकादशधा पृथिव्याम् सोमसयुग्वायुमूर्तिरेकादशधाऽन्तरिक्षे आदित्य सयुग्वायुमूर्तिरेकादशधा दिवीति व्याख्येयम्। अन्तरिक्षाधिष्ठातुर्वायुरूपस्य रुद्रस्यैवेत्थं रोदसीपरिव्याप्तावग्निसोमादित्यसायुज्येन त्रयस्त्रिंशद्विग्रहत्वोपपत्तेः।

यजुःश्रुतौ च श्रूयते—

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येन्तऽरिक्षे येषां वात इषवः।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः"॥ इति॥

"तेषां वा उभयतो नमस्कारा अन्ये अन्यतरतो नमस्कारा अन्ये।

ते ह ते घोरतरा अशान्ततरा य उभयतो नमस्काराः।" इति। १३

परे त्वत्र किञ्चिद्वैलक्षण्यमाहुः तथा हि-द्विविधा देवाः श्रूयन्ते—सोमपा अन्ये, असोमपा अन्ये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवगणावपि ॥
प्रजापतिवषट्कारौ वाश्विनौ वेति सोमपाः ॥ १ ॥
प्रयाजाश्चानुयाजाश्चावयाजाश्चेत्यसोमपाः ॥
एकादशक्रमेणैते भूमौ मध्ये दिवि स्थिताः ॥ २ ॥

तत्रैते रुद्रा एकादशविधा अन्तरिक्षायतना एव सन्ति सोमपा देवाः। ऋग्यजुरथर्वश्रुत्युक्तास्तु प्रतिलोकमेकादशविधा देवाः श्रूयन्ते। न च प्रयाजादीनां देवभक्तीनां वीर्य्यवत्त्वमस्ति ऋतुच्छन्दसां प्रयाजानुयाजानां देवाङ्गत्वेन गृहीतत्वात्। आप्रीदेवानामग्निविशेषत्वाभ्युपगमे तु तेषां रुद्रत्वं नापवार्य्यते। अन्तरिक्षचारित्वादग्निविशेषत्वाच्च। तस्मादेषां रुद्राणां प्रतिलोकमेकादशरूपैः संचारित्वं नात्यन्तं विरुध्यते इति भाव्यम् ॥

१		२		३		४	५	१	२	३	४
स्वयंभूः		परमेष्ठी		सूर्य्यः		पृथ्वीः	चन्द्रः	स्वयंभूः	परमेष्ठी	सूर्य्यः	पृथ्वी
द्यौः		पृथ्वी		पृथ्वी		पृथ्वी		प्राणः	आपः	वाक्	अन्नादः
		द्यौः		द्यौः		द्यौः					
सत्यम्	तपः	जनत्	महः	स्वः	भुवः	भूः					
ऋषयः		पितरः		देवाः		मनुष्याः	पशवः ग्राम्याः				
राक्षसाः		पिशाचाः		सुअराः		गन्धर्वाः	पशवः आरण्याः				

प्राणः १

स्वयंभूः द्यौः परमेष्ठी पृथिवी इमे द्यावापृथिव्यौ सहान्तरिक्षेण तपसा संयती नाम त्रिलोकी भवति। तद्विज्ञानं ब्रह्मनिःश्वसितवेदविद्या भवति। तत्र ब्रह्माक्षरस्था ब्रह्मविकाराः प्राणाः सृष्टिहेतवः। असज्जातीया इमे प्राणा ऋषयो नाम ते सात्त्विकाः। तत्प्रतिपन्थिनो राक्षसाः प्राणास्तामसाः सयुजः। अथ परमेष्ठि-

१ पृथिव्याम्—अग्निः—वायुः—११ वसुरुद्रादित्यप्रजापतिवषट्कारौ
८ ११ १२ १ १

२—अन्तरिक्षे—सोमः—वायुः— ११
३—दिवि—आदित्यः—वायुः— ११

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्षणायां पृथिव्यामृषिप्राणजाताः पितरः प्राणाः सात्त्विकाः। तत्प्रतिपन्थिनः पिशाचाः प्राणास्तामसाः सयुजः।

आपः = भृगुः

परमेष्ठी द्यौः। सूर्य्यः पृथिवी। इमे द्यावापृथिव्यौ सहान्तरिक्षेण महसा क्रन्दसी नाम त्रिलोकी भवति। तद्विज्ञानं सुवेदविद्या भवति। तत्र विष्ण्वक्षरस्था विष्णुविकारा आपः सृष्टिहेतवः। वरुणाक्षरस्था भृगुविकारा अन्नानि सृष्टिहेतवः।

वाग् = अङ्गिराः अग्निः ३

सूर्य्यो द्यौः। पृथ्वी पृथिवी। इमे द्यावापृथिव्यौ सहान्तरिक्षेण भुवो-नाम्ना रोदसी नाम त्रिलोकी भवति। तद्विज्ञानं गायत्रीमातृकवेदविद्या भवति। तत्रेन्द्राक्षरस्था इन्द्रविकारा वाचः सृष्टिहेतवः। सोमाक्षरस्था अङ्गिरोविकारा अन्नानि सृष्टिहेतवः। अपि चाग्न्यक्षरस्था अग्निविकारा अन्नादास्त्रयः सृष्टिहेतवः। तत्र ऋषिप्राणजाताः पितरः प्राणाः सात्त्विकाः। तत्प्रतिपन्थिनः पिशाचाः प्राणास्तामसाः।

इत्थं त्रिमूर्तिरेकः पुरुषः सर्वभूतान्तरात्मा

एष एव खलु त्रिमूर्तिरेकः पुरुषो द्यावापृथिवीपर्य्याप्त ईश्वरः स्थाणुः सर्वभूतान्त-रात्मा नाम। यथा—

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥ इति॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठतीति च। एष एव त्रैलोक्यव्यापी जीवात्मा प्रत्यगात्मा नाम॥

इत्थं त्रेधा विभक्तोऽयमेकः पुरुषस्त्रिपादूर्ध्व उदितोऽस्तीति कृत्वाश्ववत् तिष्ठ-तीति हेतोरश्वत्थवृक्षनाम्नोपासितो भवति इत्येकम्। अश्वः सूर्य्यः। "असौ वा आदित्य एषोऽश्वः" इति वाजिश्रुतेः। ७। २। ४। स मध्यमः। तत्रायमूर्ध्वाधर-भागाभ्यां संनद्धस्तिष्ठति तेनाऽयं बल्शाभागोऽश्वत्थो नाम—इति द्वितीयम्॥

सोऽयमश्वत्थः श्रूयते—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।
अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः॥ १॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ २॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

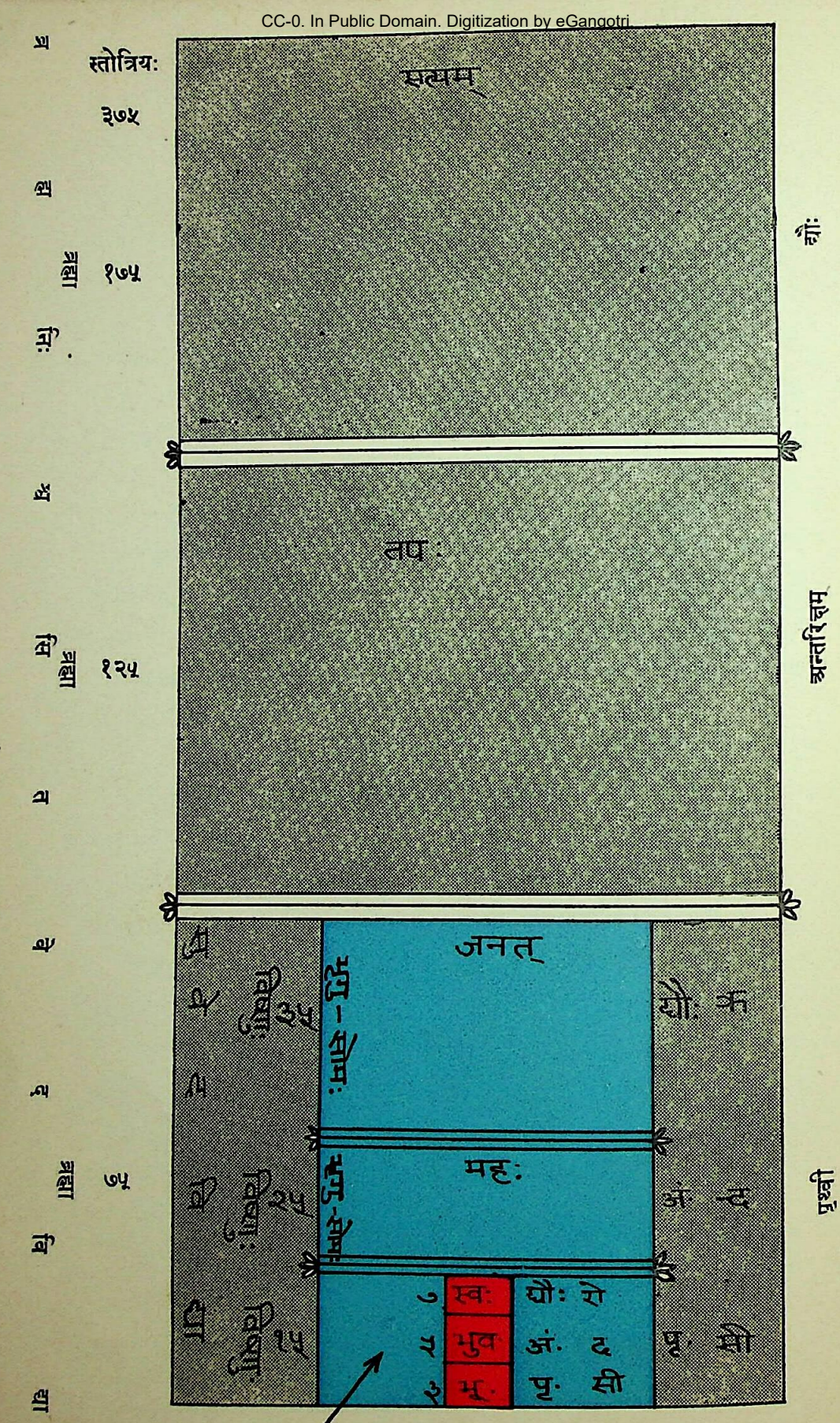

इन्द्रः इन्द्रः इन्द्रः भृगुः—सोमः अंतरिक्षम् अधं सोमः सोमः सोमः आदित्यः
वायुः अग्निः अग्निः अग्निः अग्निः गायत्रीमातृकवेदविद्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सं	स्वयंभूः	७ प्राणः	आकाशः	ऋषयः	सूत्रम्	ब्रह्म निश्वसितम्	सत्या	विश्वसृजः भूतानि देवाः नाड्यः वेदाः वाक्
य	चं	६ नभस्वान् समुद्रम् आपः सूत्रात्मा वायुः सोमः						
ती	परमेष्ठी	५ आपः	वायुः	पितरः	अर्क	सुवेदः	आर्भणी	
	चं	४ सरस्वान् समुद्र आपः साम्बशिवः वायुः ब्रह्मणस्पतिः सोमः						
	सूर्यो	३ वाक्	तेजः	देवाः	सुषुम्णा	गायत्री	बृहती	
	चं	२ यमः	सोमः					
	पृथ्वी	१ अन्नाद.	पृथ्वी	असुराः	•	•	अनुष्टुप्	

आपः

अग्नेः

मरः मरीचिः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ ३ ॥ इत्यादि

संवत्सराग्निः स्थाणुः पुरुष ईश्वरो द्रष्टव्यः

एष भगवान् ईश्वरः साक्षात्कुर्वतामर्थे रूपतो व्याख्यातः । एकत्रैवासौ विष्टब्धः स्थाणुवदस्तीति हेतोर्वृक्षरूपेणोपास्यते । तथा च श्रूयते—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किंचित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ इति ॥

ईश्वरसाक्षात्कारे विप्रतिपत्तिनिरासः

ननु नास्तीश्वररूपं—यथाह श्रुतिः

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ इति ।

तथा च कथमयमीश्वरो रूपेण साक्षात्कर्तुमिष्यते—इति चेत्तत्रोच्यते—द्वेधा ह्ययमीश्वरः शारीरकमीमांसायां विनिर्णीतो—धर्म्मरूपेण च धर्म्मिरूपेण चेति । तत्र धर्म्मरूपोऽयं विश्वस्यात्मा निर्धर्म्मक इष्यते । गुणानां च परार्थत्वादसंबन्धः समत्वात् स्यादिति न्यायेन धर्म्मे धर्म्मान्तरायोगात् ॥ निर्धर्म्मकश्चायमात्मा द्रष्टुं न शक्यते केवलानामतीन्द्रियत्वादिति युक्तं वक्तुम् ॥ किं त्वेष धर्म्मी सर्वधर्म्मोपपन्न आत्मन्वी विश्वमयः । तत्र च निर्धर्म्मकात्मपरिग्रहलक्षण्यः माया कला गुणो विकार आवरणम् अञ्जनमित्येवं षोढा विभक्ताः सर्वे धर्म्मा आत्मन्युपपद्यन्ते । तदुक्तं शारीरकसूत्रे सर्वधर्म्मोपपत्तेश्चेति । निर्विशेषोऽखण्डात्मा सर्वैरेतैर्धर्मैरुपपन्नो ज्ञानकर्म्मार्थतन्त्रे विश्वरूपाय कल्पते । स एष विश्वशरीरो भगवानीश्वरः प्रतिपत्तव्यः । तत्रैष ज्ञानकर्म्मार्थतन्त्रैस्त्रितन्त्रैः सर्वधर्म्माऽयमात्मन्वी विश्वरूप ईश्वरोऽर्थतन्त्रावच्छेदेनाऽद्धा शक्यते साक्षात्कर्तुम् । तस्याऽयमश्वत्थो रूपं भवति ॥

तत्रापीदमपरं बोध्यम् । सहस्रबल्शोऽयमश्वत्थः प्रतिपत्तव्यः । अनिर्णीतसंख्याभिप्रायोऽयमत्र सहस्रशब्दः प्रयुज्यते । सोऽयं सहस्रबल्शोऽश्वत्थोऽव्ययपुरुषोऽस्तीति मायामितत्वान्महेश्वरशब्देन व्यपदिश्यते । यस्तु मायाबलोदयात् प्रागयमसीमोऽत्यनपिनद्धः परात्परः कश्चिदर्थः स परमेश्वरशब्देनाख्यायते । अक्षरात्परतः पर इति श्रुतेरक्षरात्परत्वनिबन्धनोऽयं अव्ययपुरुषे परशब्दः । ततोऽप्येष परोऽस्तीति परात्परेऽस्मिन् पुरावच्छिन्नत्वनिबन्धनस्य पुरुषशब्दस्य प्रयोगायोग्यत्वात् । असीमे त्वमुष्मिन् परमेश्वरे महामायामितोऽयं प्रथमोऽव्ययपुरुषः सहस्रबल्शोऽयमश्वत्थो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महेश्वरो नाम। "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।"—इति श्रवणात्। तस्य च महेश्वरस्यानन्दविज्ञानघनमनोमयप्राणगर्भितया वाचा कृतरूपस्य या तावदेकैका बल्शा तत्तदवच्छिन्नः खल्वयमेकैकोऽव्ययपुरुष एकैक ईश्वरोऽनुध्यातव्यः। स षोडशी प्रजापतिः तच्छरीरभूतेयमेकैका बल्शा पञ्चपुण्डीरा प्रतिपत्तव्या। ऊर्ध्वमूलेयमश्वत्थबल्शा। तत्र सर्वत्र ऊर्ध्वं तावत्।

१—प्राणमयः स्वयंभूः प्रथमः। ततोऽधस्ताद्—

२—आपोमयः परमेष्ठी द्वितीयः। ततोऽधस्ताद्

३—वाङ्मयः सूर्य्यस्तृतीयः। ततोऽधस्ताद्

४—अन्नादाग्निमयः पृथ्वीपिण्डश्चतुर्थः। ततोऽधस्ताद्

५—अन्नमयश्चन्द्रमाः पञ्चमः। इत्येवं पञ्चपुण्डीरयैकबल्शया कृतविग्रहोऽयं भगवानीश्वरो भवति। सोऽन्वेष्टव्यः, सोऽनुध्यातव्यः, स विजिज्ञासितव्यः, स उपासितव्यः। तेनैवोपासितेन महेश्वरः परमेश्वरश्चोपासितो भवति अन्योन्याविनाभूतानामेषां त्रयाणामेकेनान्यस्य परस्पराङ्गाङ्गिभूतस्य परिग्रहोपपत्तेः॥

तत्रैतस्मिन् पञ्चपुण्डीरबल्शामये खल्वीश्वरशरीरे—आनन्दविज्ञानघनमनोमयप्राणगर्भितवागारब्धे मायामयाऽव्ययपुरुषे—ब्रह्मा—इन्द्राविष्णू—इन्द्राग्निसोमा—इति पञ्चाक्षरास्त्रेधा विभज्य रूपाणि धारयमाणाः संनिविशन्ते। तत्र तावदसौ ब्रह्मा केवलः। अथेन्द्राविष्णू सयुजौ। अथेन्द्राग्निसोमाः सयुजः। तथा च त्रेधा विभक्ता हीमेऽक्षरा आत्मानो विश्वमेतदनुगृह्णन्ति। प्रतिविभागममृतं ब्रह्म शुक्रं च पार्थक्येन रूपाणि धारयन्ति।

१—शीर्षण्यं ब्रह्माक्षरमनु महामात्रमव्ययं प्रथमं, तदालम्बनममृतम्। अथ परोरजाः प्राणोग्निर्ब्रह्म। वाक्शुक्रम्। तदमृतम्। विश्वव्यापीन्द्रोऽयमाकाशो ज्ञानप्रकाशोऽनाहतनादश्चेति त्रिविधा वाक् शुक्रम्॥

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी॥ इतिश्रुतिः॥

वाक्प्राणमनोमयश्चायं सत्यलोकस्यात्मा योऽयं स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजापतिः। सोऽयमत्र ब्रह्माक्षरपुरुषस्त्रेधा द्रष्टव्यः—अग्निविधः, अर्कविधः, उक्थविधश्च। उक्थं वाक्। अर्कं आपः। अग्निस्तेजः। यावदेतं प्राणमनु वागापोऽग्निस्तावदयं लोको ब्रह्मणः शरीरं भवति सत्यात्मा। स एष ब्रह्मा ऋषीणां प्रजानां पतिः॥ १॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपासनायामीश्वर अश्वत्थ प्रति मयोपास्यते वृक्ष इवस्तब्धो दिवितिष्ठत्येक अनुकरणं प्रकृतिवद् भवति न भवति च।

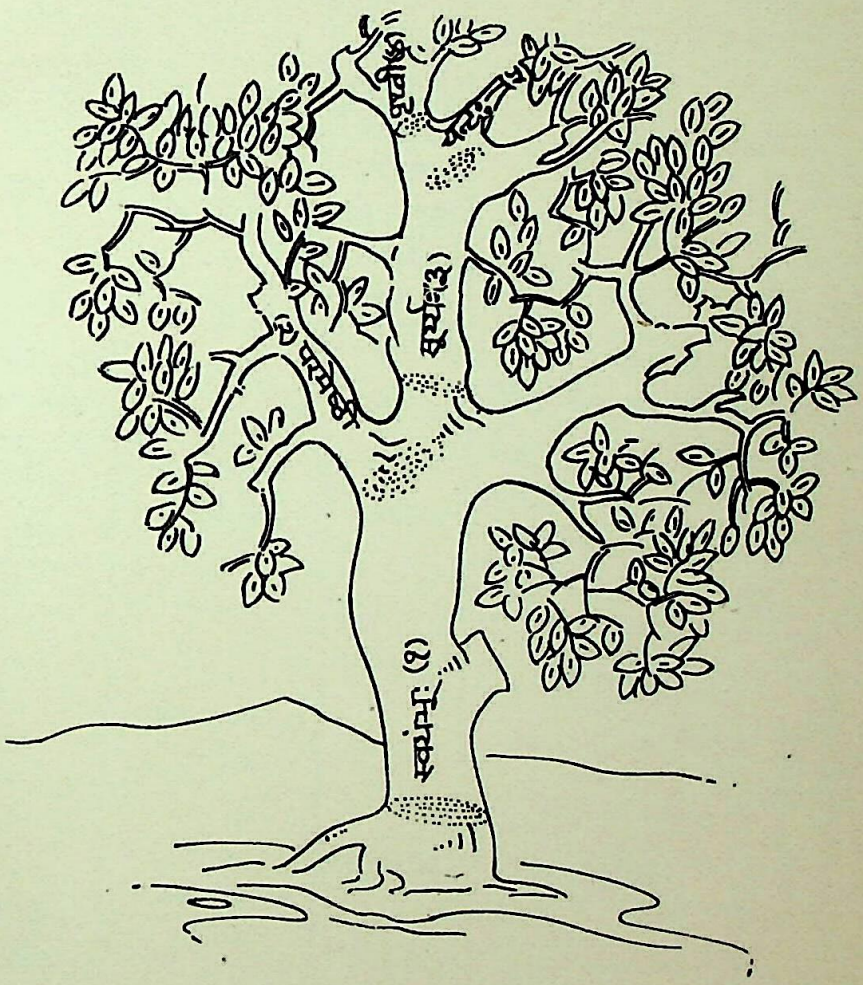

ईश्वरप्रतिमा-अनुकरणम्।

प्रतिमाधर्मेणेश्वर प्रतिरूपम्,
वस्तुधर्मेणेश्वर प्रतिमा कृसिः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्थाः	अमृतम्	ब्रह्म	शुक्रम्		
१ महामायाव्ययः ब्रह्मा योगमाया-व्ययो ब्रह्मा (१)	१ योगमायाऽव्ययः १ ब्रह्माऽक्षरः ऋषीणां पतिः	प्राणोऽग्निः सत्यलोकः	आकाशेन्द्रो वाक्	ब्रह्मा शिरः स्वयंभूः—पूर्वः शीर्षण्यः सर्वहृदयज्ञः	अक्षरमूलम्
१	१ योगमायाऽव्ययः १ विष्णुरक्षरः पितॄणां पतिः	आपः सोमः वायुः समुद्रः तपोलोक आपः जन-ल्लोकः वायुः महर्लोकः सोमः	भृगुत्रयमापः	विष्णुः हृदयम् परमेष्ठीहिरण्यगर्भेद्यः	अक्षरमध्यम्
२ २ महामायाऽव्ययः विष्णुः हिरण्य-गर्भो विष्णुः प्रजा-पतिः योगमाया-ऽव्ययो विष्णुः (२)	२ योगमायाऽव्ययः २ इन्द्रोऽक्षरः देवानां पतिः	त्रयीविद्या वागग्निः स्वर्लोकः	अङ्गिरस्त्रयमग्निः त्रिणाचिकेतः स्वर्ग्योऽग्निरनूर्म्मिः । स्थितिः, गतिः, विकासः, सृष्टि-रित्यग्निरूपाणि । मूर्तिः ।···तेजः ।····· ऋक् । यजुः । साम । ब्रह्म ।		
१	१ योगमायाऽव्ययः १ इन्द्रोऽक्षरः	अन्नं सोमः भुवर्लोकः	अग्निर्मर्त्यः	शिवोऽयमन्नकोशः नाभिजन्मा पद्मयोनिः कमलासनः	अक्षरान्तम्
२ ३ महामाया-ऽव्ययः शिवः	२ योगमायाऽव्ययः २ अग्निरक्षरः	अन्नादोऽग्निः भूर्लोकः	आपो मर्त्याः		
३ योगमाया-ऽव्ययः शिवः (३)	३ योगमायाऽव्ययः सोमोऽक्षरः	अन्नं सोमः	वाग् मर्त्या		

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—अथ हृद्यमिन्द्राविष्णूरूपाक्षरद्वयमनुमध्यमात्रमव्ययं मध्यमं तदमृतम् । तत्र विष्णुमक्षरमन्वापः सोमो ब्रह्म । वायुसमुद्रो हीमा आपो ब्रह्म । अथान्या आपः शुक्रम् । तदमृतम् । आपो वायुः सोम इति भृगवः । अग्निः यम आदित्यः अङ्गिरसः । भृग्वङ्गिरसौ हीमौ स्नेहतेजसी संकोचविकासधर्म्माणौ । आपः शुक्रम् ।

आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापो भृग्वङ्गिरोमयम् ।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः ॥ इति श्रुतिः ॥

भृग्वङ्गिरोभ्यां षड्ब्रह्ममयश्चायं जनल्लोकस्यात्मा योऽयं परमेष्ठी विष्णुप्रजापतिः । सोमसधर्म्मा चायं विष्णुः । "यो वै विष्णुः सोमः सः ।" इति वाजिश्रवणात् । आपो हीमा अम्बाजनयः । सोऽयं जनल्लोकः पृथिवी । तस्याः सत्यलोको द्यौः । इमे द्यावापृथिव्यावन्तरा यदन्तरिक्षं स तपोलोकः । सेयं त्रिलोकी संयती नाम उत्तमा भवति ।

३—अथेन्द्रमक्षरमनुवागग्निर्ब्रह्म । ऋग्यजुःसामानीति त्रयीविद्या वागग्निर्ब्रह्म । अग्निः शुक्रम् । तदमृतम् । त्रिणाचिकेतो नामायमग्निः । स्थितिगती विकासो मूर्तिरित्यग्निरूपाणि । स्थितिगतिमयः पुरुषो यजुः । विकारास्तेजः साम । ऋग् इत्यग्निगर्भितसोममयी मूर्तिः ॥

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत् ।
सर्वं तेजः सामरूपं हि शश्वत् सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् ॥ श्रु० ॥

त्रिणाचिकेताग्निमयश्चायमनूर्मिः स्वर्लोकः ।

प्र ते ब्रवीमि तदु निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम् ॥ १ ॥
स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वा अशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ कठ० ।

सोऽयं स्वर्गलोकः पृथिवी । तस्या जनल्लोको द्यौः । इमे द्यावापृथिव्यावन्तरा यदन्तरिक्षं स महर्लोकः । सेयं त्रिलोकी क्रन्दसी नाम मध्यमा भवति ।

स योऽयमिन्द्रो यश्चासौ विष्णुः तावुभौ सयुजावेकं रूपं हिरण्यगर्भो विष्णुः । तस्यैतस्य विष्णोर्बहिरापोमयः समुद्रो नीलाकाशलक्षणं शरीरं भवति । गर्भे चाऽयं हिरण्मयः पुरुष आत्मा । स एष हिरण्यगर्भो विष्णुरापोमयविष्ण्ववच्छेदेन पितॄणां प्रजानां पतिरथाग्निमयेन्द्रावच्छेदेन देवानां प्रजानां पतिर्द्रष्टव्यः ॥

॥ इतीश्वरप्रतिपत्तिः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अमृतम् ब्रह्मयोनिः शुक्रम्

इतः

ब्रह्मा	ब्रह्माक्षरः सप्तलोकी महामायाव्ययः	सत्य लोकः ७			सत्यम् ७	संयती
ब्रह्मा	ब्रह्माक्षरः तपोलोकी योगमायाव्ययः	६- तपो लोकः	प्राणाः अग्निः	वाक् शुक्रम् अमृतम्	तपः ६	संयती
ब्रह्मा	विष्णुः विष्णुक्षरः	५- जनलोकः	आपः सोमः	आपः शुक्रम् अमृतम्	क्रन्दसी जनत् ५	संयती
विष्णुः	इन्द्राविष्णू अक्षरौ	४ महर्लोकः	आपो वाक् अग्नीषोमौ	अग्निः शुक्रम् अमृतम्	क्रन्दसी महः ४	
शिवः	विष्णुः इन्द्रोऽक्षरः	३-स्वर्लोकः	वाक् अग्निः	अग्नि शुक्रम् मर्त्यम्	क्रन्दसी स्वः ३	रोदसी
शिवः	सोमोक्षरः	२-भुवर्लोकः	अन्नम् सोमः	आपः शुक्रम् मर्त्यम्	भुवः २	रोदसी
शिवः	अग्निरक्षरः	१ भूर्लोकः	अन्नादः अग्निः	वाक् शुक्रम् मर्त्यम्	भूः १	रोदसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ जीवात्मप्रतिपत्तिः

शारीरकजीवात्मा प्रत्यगात्मा

इदं विश्वं भावयतां द्वे तत्त्वे विज्ञानादुपपद्येते—अमृतं च मृत्युश्चेति। चिदमृतमचिन्मृत्युः। यदिदं ज्ञानलक्षणं किञ्चिज्ज्योतिर्विज्ञायते तच्चित्। तदमृतम्। तद्विरोधेन यदिदं स्थानावरोधकं किञ्चिदावरणलक्षणमज्योतिः ज्योतिर्गृहीतं प्रतीयते तदचित् स मृत्युः। ताभ्यामुभाभ्यां कृतरूपमिदं विश्वं पश्यामः॥ तत्रेदं चित्त्रेधा विगृह्यते १ चिदात्मा, २ चिदंशः, ३ चिदाभासश्चेति।

चिदात्मा

अत्यनपिनद्धं रूपं चिदात्मा। दिग्देशकालसंख्यानवच्छेदादाकाशवदसीमं यद्रूपं भाव्यते यस्य च सीमा कथमपि नैवोपपद्यते तस्य रूपस्येदं व्यवहारार्थं संज्ञाकरणम् अत्यनपिनद्धमिति। दिग्देशकालावच्छेदपरिग्रहोऽपिनाहः। आत्यन्तिकस्तु तत्प्रतिषेधोऽत्यनपिनाहः॥ नेदं रूपं विश्वरूपतया विज्ञायते—अपदार्थत्वात्। पदनिष्ठशक्तिनिरूपकत्वं हि पदार्थत्वम्। न च तद्वाङ्मनसागोचरे तस्मिन्नत्यनपिनद्धे संभवति। मनसः परिच्छिन्नभावग्राहित्वस्वाभाव्यात् वाचश्च मनसः कृतानुकरत्वात्। व्यावृत्य व्यावृत्य तु किञ्चिद् रूपमिमे वाङ्मनसे किञ्चिद्रूपं ग्राहयतः। अव्यावृत्तस्वरूपस्त्वेष चिदात्मा। तस्मादवाङ्मनसगोचरस्वरूपलक्षणधर्म्मपरिग्रहणं हीदं वाङ्मनसाभ्यां प्रत्याख्यायते। तटस्थलक्षणधर्म्मस्तु मनसाऽवश्यमभ्युपगम्यते वाचा च। अत्यनपिनद्धपरात्परचिदात्मादिशब्दानां तत्र तत्रामृतभावविज्ञानायोपयोगदर्शनात्॥

चिदंशः

अथ मृत्युस्त्वेष खण्डखण्डः परिच्छिन्नो भावः। तदनुभावादेव च प्रतिद्वन्द्विविधयैतस्मिन्नवाङ्मनसगोचरेऽप्यमृते भावे नामरूपकर्म्माणि कल्पन्ते व्यवहारार्थम्। तैश्च मृत्युभिः स्वल्पखण्डैर्वा महाखण्डैर्वा यावदेष चिदात्मा क्वचिदवच्छिद्यते स तस्यायमौपाधिकः परिच्छेदोऽवकल्पते। घटाकाशपरिच्छेदवत्। तेनायमौपाधिकेन मिथ्यापरिच्छेदेन परिच्छिन्नतया यावानंशोऽनुभाव्यते स चिदंशः। पृथिव्यर्द्धमण्डलावच्छिन्नस्य दिवाप्रकाशस्य विश्वव्यापिसूर्य्यप्रकाशांशत्ववत्। विश्वव्यापकश्चिदात्मैवायं मिथ्यापरिच्छेदेनानुभूयमानश्चिदंश इत्युपपद्यते। स एष चिदंशो द्विविधः—प्रत्यगात्मा च शारीरकश्चेति। निचाय्यकेवलो व्योमवत् प्रत्यगात्मा। प्रवर्ग्यानुबन्धी वरुणाग्निवज्जलकाचादिनिगूहितसूर्य्यादिप्रतिबिम्बवच्च शारीरकः। तयोश्च शारीरकस्यास्ति भोगो न परस्परप्रत्यगात्मनः। तथा हि—शारीरकप्रथमाध्याये द्वितीयपादे संभोगः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्तिरितिचेन्न वैशेष्यादिति सूत्रे एकस्य भोगो नेतरस्येति व्याख्यातं द्रष्टव्यम्। श्रूयते च—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ इति ॥

प्रत्यगात्मा चिदंशः

परिच्छिन्नभूतं शरीरं प्रति पूर्णादीश्वरादेष चिद्भावो यावतांशेन पूर्णमुदच्यते स प्रत्यगात्मा। स एक एवायमात्मा नानाशरीरेषूपपद्यते न स शरीरभेदाद् भिद्यते। आकीटपतङ्गमनुष्यदैवतं चेतनासाम्येनोपपत्तेः। शालग्रामे हरिर्द्रष्टव्य इति निचाय्यो द्रष्टव्य इत्युपदिश्यते। यथा समस्तवसुधाधिपतिरपि हि सन्नयोध्याधिपतिरिति व्यपदिश्यते। तत्र ग्राहकस्य बुद्धिविज्ञानस्यायं परिच्छेदो न तु हरेः परिच्छेदः क्रियते। परिच्छेदासम्बन्धाच्च हरेर्नानात्वं नापद्यते। एवमिह तत्तच्छरीरे निचाय्योऽयं चिदंशः परिच्छिद्य गृहीतोऽपि नाना नोपपद्यते। एक एवायं चिदात्मा शरीरे निचाय्यो गृह्यते। सर्वशरीराभिव्याप्तोऽयमेक एवात्मा निष्कृष्यते॥ तथा चोक्तम्—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥

शारीरकात्मा चिदाभासः

अथैष प्रत्यगात्मैव पुनः सूर्य्यादुपपन्ने विज्ञानात्मनि उपहितोऽवच्छिद्यते। यथा वरुणो नामाग्निर्जलद्रवणकर्म्मा जलेऽन्तर्यामसम्बन्धेन परिच्छिन्नः प्रवर्ग्यो ध्रियते न तु संतप्तजलवदयमग्निर्बहिर्यामसम्बन्धादनुबन्धिमात्रो भवति एवमयं चिदंशस्तत्तच्छरीरमनुप्रविष्टः प्रवर्ग्यो भूत्वा तेन तेन शरीरेणानुगृहीतस्तच्छरीरमात्मभक्तिं करोति। स तावता प्रतिशरीरं भेदेन प्रतीयते। जीवनमरणयोर्हर्षविषादयोर्विद्याजाड्ययोः प्रतिव्यक्ति वैचित्र्यदर्शनात्। स एतावानेष आत्मा शारीरको भाव्यते। शरीरोपाधेर्भेदस्य भेदकत्वोपगमात्। काचखण्डे प्रत्याघातवशात् प्रतिफलितसूर्य्यरश्मिवदयं हृदयस्थे विज्ञानात्मन्युपपन्नो हृदयादिन्द्रियस्थानमुपसंक्रममाणो मुख्यप्राणमयः प्रतिशरीरं विज्ञानभेदाद् भिन्नः सँश्चिदाभासो नामाख्यायते॥

जीवेश्वरयोर्भेदाभेदव्यवस्था

इत्थं खलु चिदात्मा, चिदंशः, चिदाभास—इति त्रिधा प्रतिपन्नेषु आत्मसु विश्वव्यापी सर्वोपाधिपरिच्छेदानपेक्षो महापरिमाणश्चिदात्मा स ईश्वरो नामाख्यायते। स स्थाणुरेकत्रैव संस्तब्धो निष्प्रतिबन्धो विश्वमधिष्ठाय प्रतितिष्ठति। आकाशवद् व्यापकत्वान्न संचरति॥ १॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथाल्पपरिमाणश्चिदंशो जीव इति वक्तव्यः । तत्राप्येष प्रत्यगात्मा शरीरहृदयाद्यर्भकौकस्त्वेन प्रतिपित्सितोऽपि निरुपाधिकत्वाच्छरीराद्युपाधिभेदेनागृहीतत्वादैकात्म्यं प्रतिपन्नः शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वादीश्वररूपसिद्धः सन्नीश्वरवदेको विश्वव्यापी जीवात्मा विज्ञायते । तस्य गतिर्नास्ति । अव्यावृतस्वरूपतया सर्वत्रैवोपपन्नत्वात् ॥ २ ॥

अथैष चिदंश एव शरीरोपाधिकत्वविवक्षायां चिदाभासो भूत्वा शारीरकः संपद्यते । शरीरावच्छिन्नस्य तस्येदं शरीरं भक्तिर्भवति । शरीरधर्म्माक्रान्तोऽयं पाप्मना संयुज्यते । उक्तं च—

"स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः पाप्मभिः संसृज्यते । स उत्क्रामन् म्रियमाणः पाप्मनो विजहाति"—इति ।

तथा चैष चिदंशः प्रवर्ग्यो भूत्वा शरीरोपाधिको भवति । अतश्चैष शरीरभेदाद् विभिन्नविज्ञानो विभिन्नप्रज्ञानो विभिन्नप्राणो विभिन्नसंस्कारः संसारी जीवात्मा विज्ञायते । नाना चायमुपपद्यते । स एष संसारी जीवात्मा विद्याकर्म्मभ्यामुपाधीयमानो लोकाल्लोकान्तरं परिभ्रमति । पितृलोकं वा देवलोकं वा जीवलोकं वा गतः एतेष्वेव त्रिषु स्थानेषु क्वचिदन्यतमस्थाने सोऽवश्यं प्रत्यासन्न उपपद्यते । विद्यानिरपेक्षकर्म्मत्रयान्यतमेन पितृलोकत्रयान्यतमे*, विद्यासमुच्चितकर्म्मत्रयान्यतमेन देवलोकसप्तकान्यतमे† अथ लोकान्तरोपभोगोपक्षीणावशेषकर्म्मणा जीवलोकगतचतुर्दशयोनिविशेषान्यतमे‡ चतुरशीतियोनिपरिक्लृप्तशरीरः पारतन्त्र्येणोपस्थितः प्रतितिष्ठति ।

---

* पितृलोके—३

१—उदन्वती, २—पीलुमती, ३—प्रद्यौः —इत्येवं त्रयः पितृलोकाः ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते—इति श्रुतेः ॥ ३ ॥

† देवलोके—७

१—अपोदकः, २—ऋतधामा, ३—अपराजितः, ४—ब्रध्नस्य विष्टपम्, ५—अधिद्यौः, ६—प्रद्यौः, ७—रोचनः—इत्येते देवलोकाः सप्त ॥ ७ ॥

‡ जीवलोके—१४

८—अष्टविधः सत्वविशालः—१—ब्रह्मा, २—देवाः, ३—पितरः, ४—यक्षाः, ५—गंधर्वाः, ६—सिद्धाः, ७—किन्नराः, ८—राक्षसाः ।

१—एकविधः रजो विशालः —मनुष्याः, पिशाचाः, विद्याधराः अप्सरसः, गुह्यकाः ।

५—पञ्चविधः तमोविशालः —१—पशवः, २—पक्षिणः, ३—कीटाः, ४—कृमयः, ५—स्थावराः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्यायमामुक्ति संसारचक्रपरिभ्रमो न कदाचिद्विरम्यते । निवृत्तिकर्म्मप्रभावादुपरतशेषकर्म्मणः स्वयमात्मज्ञानोदये तु विमुक्त एष शारीरकात्मा शारीरकत्वोपपादकसर्वोपाधिविगमाद् विशुद्धः सन् स्वेनैव रूपेण कैवल्यमागतः प्रत्यगात्मा भवन्नमुष्मिन्नीश्वरे विश्वव्यापिन्येकीभूय विलीयते लोकयात्रोपयोगिशरीरसंस्थानाभावान्न पुनः स यातायातं कर्तुं क्षमते । तदिदमेतावदुपपन्नं शारीरकं विज्ञानम् । एतावदेव चेदं शारीरकं शास्त्रमनुव्याख्यातं विजानीयात् ॥

शारीरकजीवात्मा चिदाभासः

अथ प्रकारान्तरेण शारीरक आत्मा निरूप्यते—

आभु चाभ्वं चेति द्वे तत्त्वे । पूर्णमाभु । शून्यमभ्वम् । तुच्छं शून्यम् । शून्यस्थानं यत आपूर्य्यते तत्पूर्णम् । पूर्णं च शून्येनापिहितं नोद्रिच्यते । उभयोर्योगेनैकमेव रूपं निष्पद्यते । तदाह श्रुतिः—

"तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपस्तन्महिनाऽजायतैकम्"—

"सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतिष्ठं कवयो मनीषा"—इति ॥

सदसतोरन्योन्यबंधनान्निष्पन्नमेकं रूपं ब्रह्म । एकं वा इदं विबभूव सर्वम् । ब्रह्मैवेदं सर्वमिति विज्ञानम् । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति ज्ञानम् । अनेकेषामेकत्वप्रतिपत्तिर्ज्ञानम् । एकस्यानेकत्वप्रतिपत्तिर्विज्ञानम् ।

"ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥"

ब्रह्मणो विवर्तश्चतुर्धा—एकधा, त्रेधा, पञ्चधा, दशधा चेति । यदेकधा तदसङ्गरूपं ब्रह्म । यत्त्रेधा तत्त्रयः सयुजः सन्त एकं रूपं सत्यं ब्रह्म । यत्पञ्चधा तत्पाङ्क्तमेकं रूपं यज्ञो ब्रह्म । यद्दशधा तद्दशावयवमेकं रूपं विराड् ब्रह्म । चतुष्टयं वा इदं सर्वम् । अनेकेषामेतेषामुपकार्य्योपकारकभावतारतम्यादङ्गाङ्गिभावो व्यवतिष्ठते । तत्र योऽङ्गी स आत्मा । तत्राहितमङ्गं प्राणः । उपाहितं तूपाङ्गं पशुः । आत्मा प्राणाः पशव इत्येते सयुज एकं रूपं सत्यं ब्रह्म । आत्मन्याहितोपाहिता भावा आत्मग्रहणेन गृह्यन्त—इत्यतः सत्यमात्मा । एवमेव यज्ञ आत्मा । विराडात्मा । अथ यदसङ्गं ब्रह्म तदेषां सत्ययज्ञविराजामात्मा भवति । तथा चायमात्मा चतुर्विधः संपद्यते - १—अखण्डात्मा । २—सत्यात्मा । ३—यज्ञात्मा । ४—विराडात्मा चेति ॥

तत्रायं सत्यात्मा त्रिविधः—गूढोत्माऽन्तरतमः क्षराक्षरपुरुषमयोऽव्ययपुरुषः । सोऽमृतमयः प्रथमः ॥ १ ॥ अथ अन्तरात्माऽधियज्ञात्मा मध्यमः । सोऽयं प्राणा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पोवागन्नादान्नलक्षणपञ्चप्रकृतिब्रह्ममयो द्वितीयः ॥ २ ॥ अथ मर्त्यामृताग्निमयशरीर-लक्षणबाह्यात्मा भूतात्मा भोक्ता । सोऽयं शुक्रमयस्तृतीयः ॥ ३ ॥

"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्—" इति श्रूयते । पुरुषोऽयमव्ययः सत्य-प्रजापतेरात्मा । आनन्दो विज्ञानं मनः प्राणो वागिति पञ्चकलोऽयमव्ययः । तत्रा-नन्दो विज्ञानं मन इत्येतत्त्रयं ज्योतिः । सा विद्या चित् । तज्ज्ञानम् । विद्यावच्छेदेन ज्ञानमयोऽयमव्ययश्चिदात्मा । अथ मनः प्राणो वागिति त्रितयमविद्या क्रिया कर्म्म । तदवच्छेदेन कर्म्ममयोऽयमव्ययः कर्म्मात्मा । इत्थं च ज्ञानकर्म्मणी आत्मनो रूप-मित्यनवरतमेष आत्मा किञ्चिज्जानात्येव किञ्चित्करोत्येव । सम्यग्ज्ञानं मिथ्याज्ञानमज्ञानं वा, सत्कर्म्म विकर्म्माकर्म्म वाऽन्तरेणायमात्मा नावतिष्ठते । अत एव तु ज्ञानेन्द्रियेण कर्म्मेन्द्रियेण चायमात्मा कृतरूपो दृश्यते । आनन्दमयो विज्ञानमयो मनोमयश्चायं चिदात्मा । अथ वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः कर्म्मात्मा । ततोऽयं मनसा कामयते, प्राणेन तपस्तप्यति, वाचा शरीरेण श्राम्यति—अथ सर्वं सृजति ॥

तत्रायं चिदात्मा द्विविधः—चिद्घन ईश्वरस्यात्मा । चिदंशो जीवस्यात्मा ।

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ॥
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनु पश्यति ॥ (ब्रह्मोपनिषत्)

ईश्वरस्यैवायं चिद्घन उदञ्चनाच्चिदंशो जीवशरीरं प्रत्यारूढो द्वेधोपपद्यते—प्रत्यगात्मा च शारीरकात्मा चेति । विश्वव्यापितया सर्वशरीराण्यनुप्रत्यासन्नोऽपि शरीरैरनवच्छिन्नो भेदमप्राप्तः सन्नेक एवावतिष्ठते । स एक एव सन् प्रत्येकशरीरोप-हितस्तस्य तस्य शरीरस्य प्रत्यगात्मा । अथैष प्रवर्ग्यो भूत्वा प्रतिशरीरमन्तराहित-स्तदवच्छिन्नो भवतीति तत्तच्छरीरावच्छेदाद् विभिद्यते । अत एव जन्ममरणसुख-दुःखस्वास्थ्यरोगादिभावानां प्रतिशरीरं भेदेनोपलब्धिः । सोऽयं तत्तच्छरीरोपाधिकतया शारीरकात्मा नामाख्यायते । जलाशयदर्पणाद्यवच्छेदावच्छिन्न इवैष सूर्य्यरश्मिः क्षेत्रज्ञो भूत्वा क्षेत्रानुसारेण प्रतिबिम्बतामादधानः क्षेत्रानुबन्धिनानाविकारानाधत्ते प्रत्याशयं च भिद्यते ।

इत्थं चैतयोर्द्वयोरप्यात्मनोर्मध्ये यः खल्वनवच्छिन्नः सूर्य्यरश्मिः प्रतिबिम्बोपरि विभवन्नपि न प्रतिबिम्बत्वमेति नापि क्षेत्रविकारनिबन्धनं विकारं गृह्णाति सोऽयमेक एवानन्तशरीरव्यापी प्रत्यगात्मा नाम चिदात्मा जीवो वेदान्तशास्त्रार्थः । अथायं प्रतिशरीरं भिन्नः शारीरकात्मा नाम चिदाभासो जीवः सांख्यशास्त्रार्थः । तत्रैतस्यात्मनः शारीरकस्य चिदाभासस्यायमौपाधिको भेदोः न वास्तविक इत्यावेदयितुमयं शारीरक-मीमांसानिबन्धः प्रवर्तते । स यथा जले प्रतिबिम्बितोऽयं सूर्य्याभासः प्रतिबिम्बोपर्य्य-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेषेणाभिव्याप्तात् सूर्य्यप्रकाशान्नातिरिच्यते एवमेवेह शरीरे क्षेत्रानुसारेणोपपन्नः प्रतिबिम्बलक्षणश्चिदाभासो विश्वव्यापकसूर्य्यप्रकाशवद् विश्वव्यापकादेकस्माच्चिदात्मन ईश्वरान्नातिरिच्यते—इति शारीरकमीमांसासिद्धान्तः। तेनेश्वरवदयमीश्वरांशो जीवलक्षणोऽव्ययपुरुषोऽप्येक एवास्तीति प्रतिपत्तव्यमिति ब्रह्ममीमांसाशास्त्रतात्पर्य्यं विज्ञेयम् ॥

॥ इति शारीरकात्मनिरुक्तिः द्वितीया ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शारीरकात्मनो गतिहेतौ कर्मणि स्वातन्त्र्यम्

इदमत्रापरं बोध्यमात्मा शारीरको यथा।
संचालयति तन्त्रं स्वं ये च तस्यानुवर्तिनः ॥ १ ॥
शारीरकश्चिदाभासस्त्रिभिर्लोक्यात्मभिर्धृतः।
क्षेत्रज्ञात्मा मतो दिव्य आन्तरिक्षो महानिति ॥ २ ॥
भूतात्मा पार्थिवः प्राणस्त्रयस्ते संहितास्तनौ।
सूर्य्यचन्द्राग्निमार्गेण चिदात्माऽऽभासते त्रिषु ॥ ३ ॥
क्षेत्रज्ञो बुद्धिकृत्सूर्य्यश्चन्द्रमूलो महान्मनः।
शारीराग्निस्तु भूतात्मा प्राणा हीमेऽमृतास्त्रयः ॥ ४ ॥※

तत्र भगवान् मनुराह—चतुर्भिः श्लोकैः—
योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोति तु कर्म्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥ ५ ॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ ६ ॥
तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान् क्षेत्रज्ञ एव च।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ ७ ॥
तौ धर्म्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥ ८ ॥

※१—पुरुषः अव्ययः परोरजाः
२—अव्यक्तम् अक्षरम् प्राणाग्निः—
३—महान् क्षरम्··· पवित्रसोमः—
४—विज्ञानम् अहंकारः बुद्धिः वागग्निः—
५—प्रज्ञानम् ····· मनः सोमः—
६—प्राणाः ····· प्राणाग्निः—
७—भूतात्मा ····· भूताग्निः—
शान्तात्मा

१—क्षेत्रज्ञ आत्मा—विज्ञानात्मा – दिव्यः = सूर्य्यरसमयः ॥ १ ॥ प्राणाग्निः—
२—महान् आत्मा—गुणात्मा—आन्तरीक्ष्यः = चन्द्ररसमयः ॥ २ ॥ वागग्निः—
३—भूतात्मा—पृथ्वीप्राणात्मा—पार्थिवः = अग्निरसमयः ॥ ३ ॥ सोमः
हंसात्मा—आन्तरीक्ष्यात्मा अन्नादाग्निः—
वायुः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मा बुद्धिर्मनोऽथाग्निर्वायुः पञ्चेति पूरुषाः ।
तन्त्रायिणः शरीरेऽस्मिन् तन्त्रं निर्वाहयन्ति ते ॥ ९ ॥
आत्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थान् मनो युंक्ते चिकीर्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ १० ॥
वायुर्मनोऽग्निर्निर्देशानुसारेणाविलम्बितम् ।
स्थानात्स्थानान्तरं गच्छन् विधत्ते विविधां स्थितिम् ॥ ११ ॥
पूर्वपूर्वनियुक्तास्ता उत्तरोत्तरदेवताः ।
अप्रमादं चरन्त्यत्र ततः सर्वाः प्रवृत्तयः* ॥ १२ ॥
कर्म्मजन्यात्तु संस्कारात् क्षेत्रं भवति संस्कृतम् ।
यथा यथा तथा तस्मिन् आत्मादीनां प्रवृत्तयः ॥ १३ ॥
उदासीनवदासीनाः सर्वेऽप्यात्मादयः स्वया ।
नियत्यैव प्रवर्तन्ते स्थाने प्रकृतिमास्थिताः ॥ १४ ॥
ममैवात्मादयस्तेन ममैव च हिताहिते ।
प्रवर्तन्ते कर्म्मजन्यसंस्कारकृतमार्गतः ॥ १५ ॥
नेच्छया तेऽन्यथा वृत्तिं कुर्वतेऽभ्यर्थिता अपि ।
क्षेत्रस्थित्यनुसारेण वर्तन्ते नियतिं स्थिताः ॥ १६ ॥
कर्म्मणैव तु कर्म्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ।
ज्ञानाधीनं तु तत्कर्म्म ज्ञानं श्रेयः परं ततः ॥ १७ ॥
विद्वान् विद्याप्रभावेण गतिं कर्तव्यकर्म्मणः ।
निश्चित्य कर्म्म कुर्वीत यत्पश्येद्धितमात्मनः ॥ १८ ॥
क्वचित्तु कर्म्मणो दोषाद् बुद्धिर्भवति दूषिता ।
न विद्यां साधु गृह्णाति सोऽहितं हितमीक्षते ॥ १९ ॥
तत्र निष्कामविदुषां विरक्तानां यशस्विनाम् ।
सत्योपदेशतः कर्म्म कृत्वा दोषान्निवर्तयेत् ॥ २० ॥
अज्ञानमन्यथा ज्ञानं सत्यज्ञानं च सर्वतः ।
विकर्म्माकर्म सत्कर्म यथायोगं परीक्षयेत् ॥ २१ ॥
विद्यया कर्म्मणः शुद्धिर्विद्याशुद्धिश्च कर्म्मणा ।
सद्विद्यया हितं कर्म्म परीक्ष्यैवानुशीलयेत् ॥ २२ ॥

---

* (१) आत्मा कर्म्मात्मा—(२) बुद्धिः विज्ञानात्मा —(३) मनः प्रज्ञानात्मा कामः—(४) अग्निः मुख्यप्राणः तपः—(५) वायुः अनूचीनप्राणः श्रमः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्म्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्म्मणः ।
अकर्मणोऽपि बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ २३ ॥
सत्यानृतसमायोगे सत्यं जयति नानृतम् ।
बलं तु सत्यादोजीयो बलं सत्याविरोधि चेत् ॥ २४ ॥
क्षत्रं कर्म्म ब्रह्मविद्या तयोरन्योन्यसंश्रयात् ।
निश्चिताऽस्त्यर्थसंसिद्धिर्वैकल्यमहितं तयोः ॥ २५ ॥
विद्यामयः कर्म्ममयः सर्वस्यात्मायमव्ययः ।
विद्याकर्म्मवशे शश्वद्वेत्ति शश्वत्करोति च ॥ २६ ॥
आत्मविद्या बुद्धिविद्यानुयोगादन्यथान्यथा ।
आत्मकर्म्म च संस्कारकर्म्मानुगतिमर्हति ॥ २७ ॥
ततः संस्कारकर्माणि बुद्धिविद्यां च युक्तितः ।
आत्मनो वशमानीय स्वाच्छन्द्ये शान्तिमश्नुते ॥ २८ ॥

इति शारीरकात्मनो गतिहेतौ कर्मणि स्वातन्त्र्यविज्ञानम् ।

इति जीवात्मप्रतिपत्तिः ।

आत्मैष एतद्विश्वं च चतुष्पादवधीयते ।
विद्या च कर्म्म चान्नं च त्रयाणां साधनानि च ॥ १ ॥
चतुर्भिः संहतैरेतैरेकैकः पुरुषः पृथक् ।
प्रत्येकं तस्य भिद्यन्ते श्रद्धाकृत्यार्थयुक्तयः ॥ २ ॥
विद्यायोनिर्गुणः सत्वं कर्मयोनिर्गुणो रजः ।
अर्थयोनिस्तमः सत्वे त्रैगुण्यं सर्वकारणम् ॥ ३ ॥
न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४ ॥
सत्वमेवैष पुरुषः सत्वदोषोरजस्तमः ।
रजस्तमोविशेषेभ्यः सत्वं भात्यन्यथान्यथा ॥ ५ ॥

॥ इति शारीरकमीमांसाविमर्शः समाप्तः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
३	१४	प्राप्नुवन्	आप्नुवन्
,,	१५	तिष्ठन्	तिष्ठत्
४	१	जल्पा	जल्प्या
,,	१	शास्वश्चरन्ति	शासश्चरन्ति
,,	६	सामधत्ते	सामधीयते
,,	२५	पितापुत्रवत्	पितापुत्रमिव
,,	२६	दधिवदा	दधीवा
,,	२६	प्रजापति	प्रजाति
६	११	प्रजापतिमधत्त	प्रजातिमधत्त
,,	१५	त्वदेतानन्यो	त्वदेतान्यन्यो
७	१६	प्रतिपादयित्र्या	प्रतिपादयन्त्या
६	५	इत्यन्तरक्षणे	इत्यन्तरक्षणो
,,	८	परोवर्य्य	पारोवर्य्य
,,	६	मत	मत्त
११	१	प्रारभ्यत	प्रारभ्यते
,,	१६	ज्ञानोदयो	ज्ञानोदयौ
,,	२०	संचय	संचयौ
,,	में	अन्तिम पंक्ति में "सशौद्रं वर्णमसृजत्" के पूर्व यह पाठ और विशेष होना चाहिये "स विशमसृजत् यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा वसवो आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति । स नैव व्यभवत्	
१३	११	विय्ये	वीर्य्य
१५	२३	प्रजापति	प्रजाति
,,	२७	वय	त्वय
१६	१	वागापोऽग्नि	वागबग्नि
,,	४	परमाकाशभूताकाशा	परमाकाशपुराणाकाशभूताकाशा
,,	२०	बाह्याकाशौ	वाय्वाकाशौ
२०	१२	सत्वान्	सत्त्वान्
२१	१६	वानात्मको	वचनात्मको
२३	१०	प्रतिमूर्तिर्हीदं	प्रतिमूर्तिहीदं
२४	६	सोमप्राण	सोमप्राणः
२५	१५	वेंद	वेंदे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
79	3	Philosohy	Philosophy
,,	6	But (के आगे)	That
,,	24	Aneient	Ancient
80	5	Over	Ever
त्रुटिपाठः ८१	२३	के बाद यह श्लोक होना चाहिये :—	
		श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।	
		ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥	
८१	२६	के बाद यह श्लोक होना चाहिये :—	
		यल्लाभान्नापरो लाभः यत्सुखान्नापरं सुखम् ।	
		यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥	
82	33	Atmosophere	Atmosphere
83	3	Empraces	Embraces
,,	5	Metaphysians	Metaphysicians
८४	१७	तस्मिन्	एतस्मिन्
कोष्ठे ८६	२	अथर्वशिरा	अथर्वशिराः
,,	२	नृसिंहपूर्वतपन	नृसिंहपूर्वतापनी
८७	४	वृहदारण्य	बृहदारण्यक
८९	२३	देवस्य	वेदस्य
,,	२३	स	म
,,	२४	न	न्
,,	२६	तन्मावतु	तन्मामवतु
९०	२०	सव	सर्वं
,,	२०	ब्रह्मौपनिषदम्	ब्रह्मोपनिषदम्
९२	३	प्रलीयमानेषु	प्रतीयमानेषु
कोष्ठे ९३	११	काणाद औलुक्यम्	काणादम्, ओलुक्यम्
,, ,,	१०	इत्यागमकानि	इत्यागमिकानि
९५	१	पष्टम्भमाना	पष्टभ्यचलन्तो
,,	७	अथेते	अथैते
९६	१	प्रामाणण्यापत्तौ	प्रामाण्यापत्तौ
,,	६	यथेच्छसविचाण	यथेच्छमविचार्य
,,	७	निःश्रेयसा	निःश्रेयसात्
,,	२४	तदेतद्द्वितीय	तदेतद्द्वितीयं
९७	३०	चाक्षषं	चाक्षुषं
९८	१	शाब्दस्तर्को	शाब्दस्तर्कः
९९	२०	भिनीत	भिनीता
१००	१९	केषांचिदपिसिद्धान्तः	केषांचिदपसिद्धान्तः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१०३	२	विरुद्धनि	विरुद्धानि
,,	३१	संज्ञामूर्तिक्लप्तिः	संज्ञामूर्तिक्लृप्तिः
१०४	१९	देवलोकत्पितलोकाद्वा	देवलोकात्पितृलोकाद्वा
,,	२३	कर्म्मयज्ञः	कर्मयज्ञः
टिप्पण्याम् १०५	६	तमोविशाले	तमोविशालेवा
१०६	३	भत्योपपद्यन्ते	भज्योपपाद्यन्ते
,,	२३	निविशेषत्वम्	निर्विशेषत्वम्
,,	२३	निविशेषैकानन्ते	निर्विशेषैकानन्ते
,,	२८	५	६
१०७	३	द्विविधं	विविधं
,,	७	कर्म्मणामुपनिषदीभवन्ति	कर्म्मणामुपनिषद्रूपा भवन्ति
१०८	८	विशेष विद्यै कत्वं	विशेषे विद्यै कत्वं
,,	११	भेद्यभेदाच्च	वेद्यभेदाच्च
,,	१७	देशो	देशे
,,	२३	सत्वे	सत्त्वे
१०९	२८	विद्यायां (के आगे)	वेदे लोके सहाभूतविविधा
,,	२९	प्रतिषेधयति	प्रतिषेधति
११०	२७	अर्चिरादि	अर्चिरादी
१११	६	भावो	भवो
११३	१४	प्रचुरमसूर्यं	प्रचुरमसुर्यं
,,	१४	प्रकार	प्रकारं
११५	१४	जनयते	जनयति
,,	१९	जनयते	जनयति
११६	१५	बीजादुत्पत्तिर्बृंहणं	बीजादुत्पत्तिस्तदिदं बृंहणं
११७	६	वृत	वृत्त
,,	२४	यावदेवेयं	यावत्येवेयं
,,	३०	प्रत्यभिज्ञा (के आगे)	यन्निबन्धना, तद
११८	१६	रूप	रूपं
	१८	धर्म्म	धर्मा
११९	२०	तस्माते	तस्मात्ते
,,	९	जीवस्यात्माभूत्वा	जीवोभूत्वा
,,	१६	सत्वेप्या	सत्त्वेप्या
कोष्ठे १२०	५	निरावरणम्	विरावरणः
१२१	१६	ऽव्ययस्य (के आगे)	सुस्फुटं
,,	२९	विज्ञानयोगाद्	विज्ञानायोगाद्
शीर्षके १२२	१	सामञ्जस्म्	सामञ्जस्यम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१२२	१२	कात्मत्वनिरूपणं	कात्मनिरूपणं
त्रुटिपाठः १२३	१०	न तस्य कार्य्य करणं च……ज्ञानबलक्रिया च ॥ इस श्लोक के बाद में एतामुपनिषद मालम्ब्य प्रवृत्ता—'न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते' 'तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्' इत्यादि।	(भगवद्गीता)
१२३	१३	प्रत्यात्म	प्रत्यगात्मत्व
टिप्पण्याम् „	१	आदर्श	आदर्शपु
१२४	४	यदुक्थं च (के आगे)	ब्रह्म च
„	५	सामच (के आगे)	तन
„	११	वृत	वृत्त
„	१२	चतुविर्धो	चतुर्विधो
„	१८	पन्नै	पनै
१२५	६	विज्ञातम विजानात विज्ञातं विजानताम् (केनोपनिषद्)	अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् (केनोपनिषद्)
„	२९	कर्म्मात्मा	परमात्मा
१२६	१५	पुरु ध्यास्यति	पुरुधास्यति
„	१९	तस्मामवान्तरा	तस्यामवान्तराः
१२७	२	चोत	चेति
„	११	वाग् (के आगे)	इत्येतद्
„	११	आपो	अव्
„	१४	गूढोत्मा	गुढोत्मा
„	२९	भाव	भूत
१२८	५	पुरञ्जननि	पुरञ्जनानि
„	१३	इत्यं	इत्थं
„	१६	सत्वं	सत्त्वं
„	१८	अर्थश्चान्यदिति	अर्थश्चान्य इति
१२९	१०	अग्नि	अग्नी
„	१७	मंग	मङ्ग
„	१८	तदंगमेषां	तदङ्गमेषां
„	१८	पांगं	पाङ्गं
„	१९	पशून	पशून्
„	२३	परोरजा	परोरजाः
१३०	२७	स्वातन्ये	स्वातन्त्र्ये
१३३	३०	नश्यंनीति	नश्यन्तीति
१३४	२	ज्योतिर्म्मयो	ज्योतिर्म्मपो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१३४	२	क्षीणपापाः	क्षीणदोषाः
,,	१४	सर्वज्ञ	सर्वज्ञः
,,	२४	हिरण्मयः	हिरण्मये
१३५	२४	मंगांगि	मङ्गाङ्गि
,,	२४	बंधन	बन्धन
,,	२४	बंधनं	बन्धनं
१३६	३	मंतरेण	मन्तरेण
,,	६	तत्वरूपं	तत्त्वरूपं
,,	१०	कस्मिंश्चिद्	कस्मिंश्चिद
१३७	२	सिद्धांत	सिद्धान्त
१३८	२७	भाव्यम	भाव्यम्
१३९	६	रसोदञ्छ	रसोदञ्च
,,	१९	वृत	वृत्त
,,	२४	वैलक्ष्यण्याद्	वैलक्षण्याद्
१४२	७	न न	न
कोष्ठे १४३	३	ब्रह्मा	ब्रह्म
टिप्पण्याम् ,,	१	ऋतानिः	ऋतग्निः
१४५	९	परिचरन्तीन्द्र	परिचरतीन्द्र
१४६	१०	क्रमादुदैतौ	क्रमादुदेतौ
,,	१२	संकोचकं वैश्वदेव्यं	संकोचक वैश्वदेव्यं
,,	२८	एषामूध्वे	एषामूर्ध्वे
१४७	४	चातुर्थक	चातुर्थिक
१४८	२१	मूर्ति	मूर्त्तिं
१४९		परेऽस्माद्भुवः	परेऽस्या भुवः
१५०	६	विद्यद्	विद्युत्
,,	१८	तरे वादिविज्ञा	तरेयादिविज्ञा
कोष्ठे ,,	४	आपस्तनुः	अप्तनुः
१५३	१६	आवृण्वतो	आवृण्वते
१५४	७	स्पर्शः	स्पर्श
,,	८	कात्स्न्र्ये	कात्स्र्ये
,,	१५	प्राज्यापत्याः	प्राजापत्याः
,,	१७	ऽशिति	ऽशितिः
टिप्पण्याम् ,,	१	पृथ्वी अग्निः चन्द्रः सोमः	चन्द्रः सोमः पृथ्वी अग्निः
,, ,,	४	ज्योतिर्मर	ज्योतिर्मरः
,, ,,	४	देवजनमन्न	देवयजनम्
१५५	२६	मदाह्वयाः	मृ दाह्वयाः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१५५	२७	संपत्यै	संपत्त्यै
१५६	१०	मैन्द्रो	मेन्द्रो
१५७	१९	लोकमनु सयुजः	वाग्लोक मनु स युजः
,,	२५	व्याप्नोत्यत्र	व्याप्नोत्रापि
,,	२६	धारयाति	धारयति
,,	२६	स स्नेहः	सस्नेह
१५८	२२,२३	आप्यमापोमयं ब्रह्मा.....सत्ता न तु स्वकीया यह पाठ चौथे श्लोक की टिप्पणी है।	
१५९	३	मायैक्यं मूलकं	मायैक्यमूलकं
,,	१४	दशमं चतुर्थस्य	दशमचतुर्थस्य
१६०	३	जन्मवत्वं	जन्मवत्त्वं
,,	४	सर्गवत्वं	सर्गवत्त्वं
१६२	२	गोरसात्यिबन्ति	गोरसान् पिबन्ति
,,	१०	अध्यासतस्ता	अध्यास्ततस्ता
,,	२३	लोकादयः	लोकादपः
,,	२८	आपोऽभिरेतसो	आपोरेतसि
१६३	२	वाऽथर्वाङ्	वाऽप्यर्वाक्
,,	४	त्रया	त्रयो
१६४	११	हिरण्यशृंगाद्रौ	हिरण्यशृङ्गाद्रौ
,,	२९	प्रेंख	प्रेङ्ख
१६५	२	अन्तरास्मिन्तिस्रो	अन्तरस्मिन्तिस्रो
,,	५	भूमीर्धारयंस्त्रींरुत	भूमीर्धारयन् त्रींरुत
,,	६	महिवो	महि वो
,,	६	तदर्य्यमन्	तदर्यमन्
,,	९	मृताऽधि	मृताधि
,,	११	सूर्य्याय	सूर्याय
,,	११	पन्था मन्वेत वा	पन्थामन्वेतवा
,,	१२	पादां	पादा
१६७	२	वदम्	वेदम्
,,	३१	ध्रव	ध्रुव
१६८	१९	वच्छिन्ने	वच्छिन्नः
कोष्ठे	१६९	७	प्राणासृष्टिर्वाङ्मयी	प्रणासृष्टिर्वाङ्मयी
टिप्पण्याम्	,,	९	चित्यग्निः	चित्याग्निः
१७०	८	पूर्वे	विश्वे
,,	९	यदत्र	यत्र
,,	१०	विश्वा	विश्वानि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१७०	११	एषोऽह्	एषोह्
,,	११	प्रदिशोऽनु	प्रतिशोऽनु
,,	११	पूर्वोह्	पूर्वो ह्
१७१	८	वर्तमाना	वर्त्तमाना
,,	८	वालाः	बालाः
,,	१०	इष्टापूर्तं	इष्टापूर्त्तं
,,	१०	नान्यच्छे्यो	नान्येच्छे्यो
,,	११	सुकृतेऽनुभूत्वा इमं	सुकृतेऽनुभूत्वेमं
,,	११	हीनतरं वा विशन्ति	हीनतरञ्चविशन्ति
,,	१२	भैक्षचर्य्यं	भैक्षचर्य्यां
शीर्षके ,,	१४	ष्ट्यते	ष्ट्र्यते
,,	१५	शिरो मुखम्	शिरोमुखम्
,,	२३	विश्वतो मुखो	विश्वतोमुख
,,	,,	विश्वतो बाहुरुत	विश्वतोबाहुरुत
,,	२४	१०।९७।१	ऋ० १०।८३।३
,,	२५	यथानिकायं	यथा निकायं
,,	२६	ज्ञात्वाऽमृता	ज्ञात्वामृत
१७२	२७	आथर्वणास्तान्मततो	आथर्वणास्तान्न ततो
१७३	१५	करिकृद	करिक्रद
टिप्पण्याम् ,,	२	गुहात्	गुदात्
,, ,,	४	चक्षः	चक्षुः
,, ,,	८	दृत्तिरापः	दृतिरापः
१७४	१४	हेतुरभूद	हेतुरभूद्
,,	१७	यविष्ठमंहिष्ठस्य	यविष्ठ मंहिष्ठस्य
,,	२३	ब्रह्माणं बृहस्पतिं	बृहस्पतिं ब्रह्माणं
कोष्ठे १७६	५	महादेव	महादेवः
,,	४	गुदमेढ्रन्तरे	गुदमेढ्रान्तरे
१७७	२३	वागापोऽग्न्यारब्धं	वागाबग्न्यारब्धं
,,	२८	प्राणानाथो	प्राणनाथो
१७८	११	आपो	अब्
,,	१८	तदिदमापो	तदिदमब
,,	२८	बाह्यमापोऽग्नि	बाह्याबग्नि
१७९	१	ब्रह्मो	ब्रह्मौ
,,	२	दरभाग	दरभाग
,,	७	रोदसी	रोदस्याख्य
,,	७	समवर्तयन्	समावर्तयन्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धपाठाः	शुद्धपाठाः
१७९	१३	स्मृतिर्द्युर्द्र माधः	स्मृतिर्द्युद्रुमाधः
,,	१८	द्यु द्र मस्या	द्युद्रुमस्या
१८०	१	पुनरिन्द्रः सोमाग्निमयो	पुनरिन्द्रसोमाग्निमपो
,,	२२	ज्यन्	ज्येन
,,	२९	सामपा	सोमपा
१८१	७	वत्व	वत्त्व
कोष्ठे ,,	६	सुअराः	असुराः
१८३	९	रूपं	रूपम्
,,	१६	शक्यते (के आगे)	धर्माणां
,,	१७	लक्षण्यः	लक्षणाः
,,	१९	रेतैर्धर्मैपरूपपन्नो	रेतैर्धर्मैरुपपन्नो
,,	२०	तन्त्रे	तन्त्रैः
,,	२१	तन्त्रैः	तन्त्रः
,,	२१	सर्वधर्म्माऽयमात्मन्वी	सर्वधर्मात्मन्वी
,,	२७	बन्धनोऽयं	बन्धनोऽयम्
,,	२९	सहस्रबल्शोऽयमश्वत्थो	सहस्रबल्शोश्वत्थो
१८५	३	ब्रह्मा	ब्रह्म
कोष्ठे ,,	७	पितृणां	पितॄणां
१८६	३	आदित्याः	आदित्या—
१८७	६	तत्रेदं	तत्रेयं
१८८	२९	परस्पर	परात्पर
,,	८	चेतनासाम्ये	चेतनायाः साम्ये
,,	१७	सूर्य्यादुपपन्ने	सूर्य्यादुत्पन्ने
१८९	४	घृत	वृत्त
,,	१६	कम्म	कर्म्म
१९१	१	प्राणपोवाग	प्राणाब्वाग्
१९५	१९	सत्वं	सत्त्वं
,,	२०	सत्वे	सत्त्वे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh